इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BHDLA-138
हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ

खंड

2

हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ

इकाई 7
डायरी 197

इकाई 8
पत्र-साहित्य 213

इकाई 9
रिपोर्ताज 232

इकाई 10
यात्रा-वृत्तांत 257

इकाई 11
जीवनी 283

इकाई 12
संस्मरण 307

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

खंड 2 का परिचय

'हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ' पाठ्यक्रम का यह दूसरा खंड है। इस खंड में भी छह इकाइयाँ शामिल हैं। प्रत्येक विधा के परिचय हेतु एक संपूर्ण इकाई दी गई है, जिससे एक विशिष्ट विधा की अंतररचना और विशिष्टता को आप समझ सकेंगे। प्रत्येक इकाई साहित्य की विशिष्ट विधा की स्वतंत्र लेखन शैली को समझने में आपकी सहायता करेगी। इकाई 7 'डायरी' नामक साहित्यिक विधा पर केंद्रित है। इसके अंतर्गत डायरी विधा की विशेषताएँ और डायरी लेखन का संस्मरण, यात्रा–वृत्तांत और आत्मकथा से अंतर स्पष्ट किया गया है। इकाई 8 में 'पत्र-साहित्य' की विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए अन्य गद्य विधाओं से पत्र-साहित्य का अंतर विश्लेषित किया गया है। 'रिपोर्ताज' विधा पर केंद्रित इकाई संख्या 9 में रिपोर्ताज की विशेषताएँ बताई गई हैं जिसका अध्ययन करने के पश्चात आप यह स्पष्ट कर सकेंगे कि रिपोर्ताज किसे कहते हैं। इकाई संख्या 10 में हिंदी के प्रमुख यात्रा-वृत्तांतों का परिचय देने के साथ ही, उसकी विशेषताएँ और अन्य गद्यविधाओं से उसका अंतर बताया गया है। इकाई 11 में जीवनी विधा के रचनागत तत्वों की व्याख्या करते हुए उसके संरचना-शिल्प का विवेचन किया गया है। इकाई-12 में आप 'संस्मरण' लेखन का उद्देश्य, उसकी विशिष्टता, संरचना, भाषा, शिल्प आदि का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। प्रत्येक इकाई में विविध विधा में उपलब्ध प्रसिद्ध लेखकों की महत्वपूर्ण रचनाओं का मूलपाठ जोड़ दिया गया है, जिसे आप अवश्य पढ़ें और विभिन्न लेखन शैलियों को समझने का प्रयास करें।

हमने इन खंडों में दिये गये अंशों को पढ़ने वालों की दृष्टि से संशोधित और संक्षिप्त किया है। गद्यांश के साथ दी गई शब्दावली से आपको पढ़ने में सुविधा होगी। पूरा अंश पढ़ने के बाद बोध प्रश्नों के उत्तर लिखिए। अगर आप ठीक से उत्तर दे सकें, तो आप अंश को समझ पा रहे हैं।

इकाई में दिये गये बोध प्रश्न आपको अपनी प्रगति को जाँचने का अवसर देंगे। बोध प्रश्नों के उत्तर लिखने के बाद आप अंत में दिये गये उत्तरों या उत्तरों के संकेतों से अपने कार्य का मिलान करें।

इस खंड के अध्ययन के बाद आप अपनी ओर से संस्मरण, यात्रा–वृत्तांत, जीवनी आदि का अध्ययन करें और उसकी विशेषताओं का आकलन करें।

इकाई 7 डायरी (मोहन राकेश की डायरी)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 डायरी : एक साहित्यिक विधा

7.3 डायरी और अन्य विधाएँ

7.3.1 डायरी और आत्मकथा

7.3.2 डायरी और संस्मरण

7.3.3 डायरी और यात्रा-वृत्तांत

7.4 मोहन राकेश की डायरी का पठन

7.5 डायरी का सार

7.6 डायरी की प्रमुख विशेषताएँ

7.7 भाषा-शैली

7.8 सारांश

7.9 शब्दावली

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में मोहन राकेश की डायरी का अंश प्रस्तुत किया जा रहा है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- डायरी नामक साहित्यिक विधा की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- डायरी और संस्मरण, डायरी और यात्रा-वृत्तांत तथा डायरी और आत्मकथा का अंतर बता सकेंगे और
- मोहन राकेश की डायरी की विषय-वस्तु एवं भाषा-शैली की विशेषताएँ स्पष्ट कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

पहले खंड में आपने साहित्य की विविध विधाओं का अध्ययन किया। इस खंड में हम कुछ और साहित्यिक विधाओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस खंड की पहली इकाई और पाठ्यक्रम की सातवीं इकाई में आप डायरी नामक विधा का अध्ययन करेंगे। इसके लिए हमने मोहन राकेश की डायरी का चयन किया है। इकाई में आप पाठ के लिए निर्धारित अंशों को भी पढ़ेंगे।

डायरी लिखना कई लोगों की आदत होती है। समाज को तरह-तरह से प्रभावित करने वाले लोग जब डायरी लिखते हैं तो उनको पढ़ने से हमें नयी दृष्टि मिलती है। मोहन राकेश 'नयी कहानी' दौर के प्रमुख कथाकार हैं। आपने कहानियाँ, उपन्यास और नाटक लिखे हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' और 'आधे अधूरे' नाटक साहित्यिक और रंगमंचीय दोनों दृष्टियों से

कालजयी कृतियाँ मानी जाती हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास की गणना भी हिंदी के श्रेष्ठ उपन्यासों में की जाती है। मोहन राकेश द्वारा लिखी गई डायरी उनकी असामयिक मृत्यु के बाद प्रकाशित हुई थी। इस डायरी को पढ़ने से मोहन राकेश के व्यक्तित्व के कई अनजाने पहलू उजागर हुए। एक लेखक और एक व्यक्ति के रूप में उनका आत्मसंघर्ष का चित्र पाठकों के सामने उपस्थित हुआ। वैसे तो यह पूरी डायरी ही पठनीय है लेकिन यहाँ हम उसमें से बहुत छोटा अंश पाठ के रूप में शामिल कर रहे हैं।

इस इकाई में हम आपको डायरी विधा के बारे में बताएँगे। उसके महत्व और उसकी विशेषताओं का उल्लेख करेंगे ताकि आप यह समझ सकें कि डायरी एक साहित्यिक विधा कैसे है। इकाई में डायरी की तुलना हम संस्मरण, आत्मकथा और यात्रा-वृत्तांत से भी करेंगे। ये विधाएँ डायरी के काफी निकट हैं क्योंकि इन सभी में व्यक्ति अपने अनुभवों के बारे में लिखता है, लेकिन इन विधाओं में अंतर भी है जिन्हें जानना भी जरूरी है।

इकाई में हमने मोहन राकेश की डायरी के दिये गये अंश पर भी विचार किया है और उसकी प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया है। साथ ही, हमने डायरी लेखन की उपयोगिता को भी रेखांकित किया है।

7.2 डायरी : एक साहित्यिक विधा

डायरी गद्य साहित्य की एक विशेष विधा है। इसमें लेखक आत्मसाक्षात्कार करता है। वह अपने आप से संप्रेषण की स्थिति में होता है। वह स्वयं ही लेखक होता है और स्वयं ही पाठक होता है। इसमें उसके नितांत निजी अनुभव प्रकट होते हैं।

आधुनिक काल में गद्य की अनेक विधाओं का जन्म और विकास हुआ है इन विधाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है : (i) कथात्मक गद्य विधाएँ, और (ii) कथेतर गद्य विधाएँ। कहानी, उपन्यास, नाटक आदि कथात्मक गद्य विधाएँ हैं। इनके मूल में एक कथानक होता है। पूरी विधा उस कथानक के इर्द-गिर्द घूमती है। आमतौर से ये विधाएँ कल्पना से निर्मित होती हैं। लेखक अपने अनुभव संसार में रहते हुए इनकी कल्पना करता है और उसी के सहारे इन्हें लिखता है। आधुनिक काल में कुछ ऐसी गद्य-विधाएँ विकसित हुई हैं, जिनकी रचना का आधार कल्पना नहीं, वरन् वास्तविक अनुभव होते हैं। लेखक वास्तविक, तथ्यात्मक घटना का वर्णन करता है। तब भी इनमें साहित्यिक सौंदर्य अभिव्यक्त हो जाता है। डायरी, पत्र, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, आत्मकथा, जीवनी, रिपोर्ताज आदि विधाएँ कथेतर गद्य-विधाएँ कहलाती हैं। इनमें वर्णित की गई घटनाएं लेखक की कल्पना की उपज नहीं होतीं, वरन् उसके जीवन में सचमुच घटित हुई होती हैं और तब भी उनमें साहित्यिक सौंदर्य हो सकता है।

डायरी कोई भी लिख सकता है। डायरी लिखने का मतलब है, अपने रोजमर्रा के अनुभवों को लिपिबद्ध करना। डायरी को रोजनामचा भी कहा जाता है जिसका मतलब है, रोज यानी प्रत्येक दिन की घटनाओं का लेखा-जोखा। लेकिन यह कोई अनिवार्य शर्त नहीं है कि व्यक्ति रोजाना डायरी लिखे ही। इसमें दिनों, सप्ताहों और कई बार महीनों का भी अंतराल हो सकता है। डायरी व्यक्ति प्रकाशन के लिए नहीं लिखता। यह और बात है कि बाद में डायरी का प्रकाशन हो। लेकिन डायरी एक नितांत निजी लेखन है। जब व्यक्ति डायरी लिख रहा होता है तब यही सोचता है कि यह लिखना सिर्फ उसके अपने लिए है।

यहाँ आपके मन में यह सवाल पैदा हो सकता है कि व्यक्ति स्वयं अपने लिए क्यों लिखता है? क्या डायरी का लिखना 'स्वांतः सुखाय' लेखन है? डायरी लेखन आत्मावलोकन का एक

तरीका है। डायरी में व्यक्ति महज घटनाओं और अनुभवों का वर्णन नहीं करता। वह उनके माध्यम से आत्मविश्लेषण करता है। वह उनसे अपने लिए सबक लेता है। डायरी का लेखन लेखक सिर्फ अपने लिए करता है इसलिए वह डायरी में अपने और दूसरों के बारे में ज्यादा बेबाकी और निर्ममता से लिख सकता है।

आमतौर पर डायरी लिखने वाले से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उसमें सब कुछ ईमानदारी से लिखेगा। ईमानदारी से लिखना डायरी की बुनियादी शर्त है। इसके लिए लेखक में आत्मबल का होना जरूरी है। यदि डायरी लिखते हुए भी व्यक्ति सत्य पर आवरण डालने की कोशिश करता है तो डायरी लिखने का उद्देश्य ही परास्त हो जाता है।

सत्य लिखने के साहस का यह मतलब नहीं है कि डायरी में जो कुछ लिखा जाता है वह सही होता है। सही और गलत का संबंध सत्य और असत्य से सदैव हो, यह जरूरी नहीं है। डायरी में बातें लेखक अपनी दृष्टि के अनुसार ही लिखता है और यहाँ उसकी दृष्टि अनुभवों के विश्लेषण में पूरी ईमानदारी से व्यक्त हो रही होती है इसलिए डायरी उस लेखक के दृष्टिकोण को समझने में सबसे ज्यादा मददगार हो सकती है।

डायरी लेखन में यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि कौन-सी बातें डायरी में लिखी जानी चाहिए और कौन-सी नहीं? वैसे तो इसका फैसला लेखक स्वयं करता है। लेकिन आमतौर पर उन घटनाओं और अनुभवों को डायरी में लिखने के लिए लेखक चुनता है जिन्हें वह अपने लिए महत्वपूर्ण समझता है। यह कोई साधारण सा अनुभव भी हो सकता है, लेकिन उस साधारण से अनुभव में लेखक संभव है किसी गहरे सत्य का आलोक देख रहा हो। इसलिए डायरी में घटना या अनुभव महत्वपूर्ण नहीं होता। महत्वपूर्ण होती है, लेखक की अंतर्दृष्टि जिसके माध्यम से वह घटना या अनुभव डायरी में दर्ज होता है।

डायरी निजी लेखन है और वह प्रकाशन के लिए नहीं होता इसलिए उसमें शिल्प का उतना महत्व नजर नहीं आता। लेकिन ऐसा नहीं है। एक रचनाकार के लिए तो डायरी का लेखन भी रचनात्मक चुनौती के रूप में उपस्थित होता है। कथ्य की दृष्टि से भी और शिल्प की दृष्टि से भी। डायरी के लेखन की सबसे बड़ी शक्ति यह होती है कि उसमें लेखक अपनी बात को मनचाहे ढंग से रख सकता है। लेकिन सत्य से बँधा होने के कारण उसे बँधकर भी रहना पड़ता है। वह सत्य को उजागर करने के लिए भाषा में निहित संभावनाओं का पूरा उपयोग करता है। वह अपनी बात और अपने भावों तथा विचारों के अनुसार भाषा और शैली को ढाल सकता है। ऐसा करते हुए उसे अपनी रचनात्मक क्षमता का अत्यंत सावधानी से उपयोग करना होता है।

अंत में, डायरी के बारे में यह भी समझना जरूरी है कि कोई भी पाठक किसी भी लेखक की डायरी को शिल्प की उत्कर्षता के लिए नहीं पढ़ता, वह उसमें लेखक के उस 'रूप' को खोजना चाहता है जो अब तक उससे छुपा रहा है। लेखकीय व्यक्तित्व का यह प्रकाशन भी डायरी में भाषा के माध्यम से होता है इसलिए डायरी में भाषा के रचनात्मक उपयोग का केंद्रीय महत्व है।

7.3 डायरी और अन्य विधाएँ

कथेतर गद्य विधाओं का तुलनात्मक अध्ययन हमें डायरी को समझने में सहायता प्रदान करेगा इसलिए हम डायरी और अन्य समान विधाओं की तुलना करेंगे। डायरी, आत्मकथा, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत और पत्र- इन सभी गद्य विधाओं में लेखक के वास्तविक अनुभवों और उसके जीवन की तथ्यात्मक घटनाओं का वर्णन मिलता है। इन सभी विधाओं के केंद्र में

लेखक का स्वयं का जीवन होता है। इन सभी विधाओं में तथ्यात्मक सूचनाओं का संप्रेषण होता है, लेकिन यह लेखक का उद्देश्य नहीं होता। यदि उसने मात्र सूचनाओं को संप्रेषित करने के लिए इन विधाओं का उपयोग किया है तो इनकी व्यावहारिक उपयोगिता तो रह सकती है, परंतु साहित्यिक या कलात्मक उपयोगिता नहीं रहती। ऐसी किसी सामग्री को हम साहित्यिक रचना की श्रेणी में नहीं रखेंगे।

7.3.1 डायरी और आत्मकथा

डायरी आत्मकथा का ही एक रूप है। आत्मकथा में भी लेखक अपने जीवन की कहानी कहता है और डायरी के पन्नों में भी लेखक अपने बारे में ही लिखता है। जब आत्मकथा का लेखक अपने जीवन की कहानी दूसरों को सुनाना चाहता है तो उसका श्रोता या पाठक उससे अलग होता है। उसका एक उद्देश्य होता है। अच्छी आत्मकथा आत्मसाक्षात्कार का एक रूप होती है, लेकिन वह इसके लिए आत्मकथा नहीं लिखता। उसके जीवन में कुछ ऐसा है, जिसे वह दूसरों को सुनाना चाहता है और यही कामना उसे आत्मकथा लिखने के लिए प्रेरित करती है। इसलिए हर आत्मकथा का एक अंतर्निहित उद्देश्य होता है। वह पूरी रचना उस उद्देश्य से बँधी हुई चलती है।

डायरी में ऐसा कुछ भी नहीं होता। डायरी अपने शुद्ध रूप में स्वयं को संबोधित रचना है। उसका लेखक ही उसका पाठक होता है। वह आत्मसाक्षात्कार का शुद्ध रूप है। उसे किसी अन्य को कुछ नहीं सुनाना। उसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं होता। अपने आप से संवाद ही उसका उद्देश्य होता है। इसलिए डायरी में कई संकेत अनकहे रह जाते हैं। कई बड़े प्रकरण संकेत में सिमट कर रह जाते हैं। जबकि आत्मकथा में लेखक उस पूरे प्रकरण को विस्तार से पृष्ठभूमि सहित लिखता है। आत्मकथा प्रकाशित होने के लिए ही लिखी जाती है। जबकि डायरी प्रकाशित होने के लिए नहीं लिखी जाती। इसलिए आत्मकथा में लेखक तथ्यों और घटनाओं को तोड़-मरोड़कर अपने हित में, या अपनी दृष्टि से भी प्रस्तुत कर सकता है। उसे 'आत्म औचित्य' की स्थापना करने की भी चिंता होती है। डायरी लेखक के सामने यह मजबूरी नहीं होती। उसे अपने आपसे छल करने की कोई जरूरत नहीं होती। वह तो वास्तविक तथ्यों का भोक्ता है। वह सत्य को जानता है। इसलिए वह अपनी तरफ से उसमें कोई असत्य तथ्य प्रकट नहीं करता। वह अपनी गलतियों और कमजोरियों को स्वीकार करता चलता है। आत्मकथा लेखक अपनी गलतियों के लिए कुछ बाह्य कारण ढूँढकर उन्हें मानवीय कमजोरी के रूप में प्रस्तुत करके पाठक की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है। आत्मकथा लेखक अपनी पैरवी करता है, डायरी का लेखक अपने आप से जिरह करता है। वह स्वयं के विरुद्ध फैसला करता जाता है। डायरी लेखक उसी समय या उस दिन या दिन भर की घटनाओं का लेख-जोखा डायरी में करता है। इसलिए डायरी की विषय वस्तु एक दिन की होती है। जबकि 'आत्मकथा' में लेखक अपने संपूर्ण जीवन का पुनरावलोकन करता है। 'आत्मकथा' लिखने का निर्णय लगभग मंजिल के पास पहुँचने पर किया जाता है। जीवन के किसी निर्णायक मोड़ पर पहुँचने के बाद उसमें आत्माभिव्यक्ति की भावना का उदय होता है। जीवन के अनुभवों के बारे में लेखक की राय स्पष्ट होती है। वह जब पीछे मुड़कर अपने 'जीवन' को देखता है तो उसका सारा जीवन स्मृति में आ जाता है। इसलिए आत्मकथा स्मृति पर निर्भर रचना है। स्मृति आधारित होने के कारण अनेक तथ्य और घटनाएं 'विस्मृति' में चली जाती हैं। समय के अंतराल में कुछ बातों को हम भूल जाते हैं, कुछ बातें हमें महत्वहीन लगने लगती हैं। वे सब चीजें आत्मकथा में छूट जाती हैं। उन सबका एक सम्मिलित प्रभाव याद रहता है। उस प्रभाव के माध्यम से लेखक उन महत्वपूर्ण क्षणों की पुनर्रचना करने की कोशिश करता है। जिस क्षण हम उन अनुभवों से

गुजर रहे होते हैं उस क्षण हम क्या सोच रहे होते हैं यह डायरी का कथ्य है। उन क्षणों के बीत जाने के बाद नये अनुभवों के आलोक में अब हम क्या सोचते हैं? यह आत्मकथा का कथ्य है।

डायरी में तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है। ऐसी बातें हो सकती हैं, जिन्हें आगे चलकर स्वयं लेखक ही नकार दे। डायरी के लेखन में एक निरंतरता होती है। इस निरंतरता के कारण 'डायरी' के कथ्य में अंतर्विरोध हो सकता है। डायरी लेखन के दौरान लेखक विकसित होता रहता है। उसके विचार विकसित होते हैं। वह पुराने विचारों को त्याग कर नये विचार ग्रहण करता है। यह वैचारिक यात्रा लेखक को समझने में सहायक होती है। आत्मकथा में जो लेखक अपने अंतिम निष्कर्ष देता है। वे उसके प्रतिनिधि विचार होते हैं। इसलिए डायरी में व्यक्त विचारों को हम लेखक की अंतिम प्रामाणिक या प्रतिनिधि राय नहीं मान सकते।

7.3.2 डायरी और संस्मरण

जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में किसी तीसरे व्यक्ति को कुछ बताना चाहता है, तब वह 'सस्मरण' लेखन की विधा को अपनाता है। डायरी में लेखक और पाठक एक ही व्यक्ति होता है। वह अपने लिए ही लिखता है, जबकि संस्मरण का कोई पाठक होता है। लेखक अपने से इतर किसी अन्य व्यक्ति को कुछ कहना चाहता है। इस स्तर पर संस्मरण आत्मकथा के करीब होता है। संस्मरण का उद्देश्य होता है। प्रायः वह सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण व्यक्ति के जीवन के बारे में कुछ नयी बातें कहना चाहता है। संस्मरण का नायक (विषय) सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण या लोकप्रिय व्यक्ति होता है। आमतौर पर अति सामान्य व्यक्ति का संस्मरण नहीं लिखा जाता। लेकिन ऐसा अनिवार्य भी नहीं है। हाँ, वह व्यक्ति ऐसा होना चाहिए, जिसे तीसरा व्यक्ति (पाठक) भी जानना चाह सकता है। पंडित जवाहरलाल नेहरू, प्रेमचंद, अल्बर्ट आइन्सटाईन, बिरजू महाराज जैसे लोगों पर अनेक संस्मरण मिल सकते हैं। पाठक इनको जानता है, वह इनके बारे में और भी बहुत कुछ जानना चाहता है। इसलिए एक सामान्य आदमी भी इनके बारे में अपने संस्मरण सुना सकता है।

संस्मरण में लेखक, संस्मरण जिस व्यक्ति के बारे में है और पाठक- ये तीन बिंदु होते हैं। डायरी में लेखक ही पाठक होता है। लेखक अपने बारे में भी डायरी लिख सकता है। इस तरह यह संभव है कि डायरी का विषय भी लेखक स्वयं हो सकता है, पाठक और लेखक तो वह होता ही है।

'संस्मरण' में लेखक से इतर किसी 'व्यक्ति' (नायक) का होना आवश्यक है। सिर्फ अपने बारे में कही गयी बातें संस्मरण की श्रेणी में नहीं आतीं। संस्मरण का 'विषय' होना अनिवार्य है। 'संस्मरण' में भी आत्माभिव्यक्ति की संभावना होती है। लेखक अपने बारे में भी बीच-बीच में कुछ-कुछ बातें कहता जाता है। दरअसल संस्मरण का विषय दो व्यक्तियों का साझा अनुभव होता है। लेखक और विषय (नायक) जिस बिंदु पर आकर मिलते हैं - उसका वर्णन संस्मरण का 'कथ्य' होता है। लेखक अपने बारे में जो भी कहता है, उसका संबंध प्रस्तुत व्यक्ति से कुछ-न-कुछ होना चाहिए इसी तरह प्रस्तुत व्यक्ति का कुछ-न-कुछ संबंध लेखक से होना चाहिए। जिस व्यक्ति को आप नहीं जानते, उसका संस्मरण लिखने का आपको अधिकार नहीं है। इसी तरह उस व्यक्ति के बारे में आप वही बातें लिख सकते हैं, जिनको आपने स्वयं देखा और महसूस किया है। आप सुनी-सुनायी बातों को संस्मरण में नहीं लिख सकते। आप संस्मरण के द्वारा उस व्यक्ति के बारे में अपनी गवाही देते हैं। समाज में पूर्व में प्रचलित बातों को पुष्ट करते हुए भी, आप संस्मरण लिख सकते हैं या उस व्यक्ति के बारे में आप नयी बातें भी कह सकते हैं। आपका संस्मरण ऐसा तो होना ही चाहिए, जैसा कोई और नहीं लिख

सकता। आपकी डायरी आप ही लिख सकते हैं। इसी तरह आपके संस्मरण भी आप ही लिख सकते हैं, कोई दूसरा नहीं लिख सकता। यह निजता संस्मरण और डायरी की अपनी विशेषता है

संस्मरण में आप कोई गोपनीय रहस्य उद्‌घाटित करें, ऐसा आवश्यक नहीं है। संस्मरण प्रकाशन के लिए लिखा जाता है। इसलिए उसमें लेखक 'आत्म औचित्य' का ध्यान रख सकता है। किसी मार्मिक प्रकरण में वह अपनी भूमिका के लिए सफाई दे सकता है। इस दृष्टि से संस्मरण डायरी से दूर तथा 'आत्मकथा' के करीब पहुँच जाता है। संस्मरण भी 'आत्मकथा' की तरह स्मृति से लिखा जाता है। इसमें भी कुछ बातें छूट जाती हैं। कुछ बातों को गैर जरूरी मानकर लेखक छोड़ देता है। प्रासंगिक दृष्टि से मूल्यवान बातों को ही वह कहता है। इसलिए इसमें भी अतीत और वतर्मान दोनों काल उपस्थित रहते हैं। लेखक नये जीवन के आलोक में प्राचीन घटनाओं का पुनः स्मरण करता है। तभी तो वह 'स्मरण' है। इसके लिए वह 'डायरी' का सहारा ले सकता है। परंतु उसका कथ्य डायरी से अलग हट जाता है। 'डायरी' का लेखक भी अपनी डायरी में 'संस्मरण' का उपयोग कर सकता है। परंतु उसके कथ्य का उद्‌देश्य अलग होता है।

7.3.3 डायरी और यात्रा-वृत्तांत

'यात्रा-वृत्तांत' में लेखक किसी स्थान विशेष का वर्णन सुनाता है। जाहिर है कि ऐसा वर्णन उन स्थानों का होता है, जहाँ लेखक स्वयं गया है और जिन्हें लेखक पसंद करता है। सुनी-सुनायी बातों के आधार पर यात्रा-वृत्तांत लिखना संभव नहीं है। यात्रा-वृत्तांत में उस स्थान विशेष का संपूर्ण विवरण देना आवश्यक नहीं है। यदि आप उस स्थान विशेष पर जायें तो किस होटल में रुके, किस स्थान से चप्पल खरीदे, कहाँ पान खाया आदि बातें यात्रा-वृत्तांत में आए ही यह आवश्यक नहीं है।

एक अच्छे यात्रा-वृत्तांत में तथ्य और कल्पना का मिश्रण होना चाहिए। उदहारण के लिए किसी शहर में पुराना किला या घंटाघर बना हुआ है। यह तथ्य है। लेखक यदि यात्रा-वृत्तांत लिखेगा तो उसमें इसका उल्लेख होगा। यह उल्लेख पर्यटक-निर्देशिका में भी होगा। दोनों तरह की पुस्तकों में वहाँ की चहल-पहल, आवा-जाही, दूकानदार-ग्राहकों के व्यवहार, मौसम आदि का जिक्र होगा। अब उस घंटाघर या पुराने किले को देखकर लेखक के मन में जो भावनाएँ जाग्रत होंगी, या लेखक की कल्पना सक्रिय होगी - उन सबका वर्णन पर्यटक-निर्देशिका में नहीं होगा। यह कल्पनाशीलता और भावुकता यात्रा-वृत्तांत की अपनी विशेषता है और इसी कारण 'यात्रा-वृत्तांत' को हम सर्जनात्मक साहित्य की श्रेणी में गिनते हैं तथा पर्यटक-निर्देशिका के लेखक को व्यावसायिक लेखक मानते हैं।

यात्रा-वृत्तांत को डायरी के रूप में लिखा जा सकता है और संस्मरण के रूप में भी लिखा जा सकता है। इसको इस रूप में समझा जा सकता है। डायरी का लेखन उसी दिन होता है। उस एक दिन यदि आप किसी विशेष स्थान पर गये हैं तो, उसमें आप उसका वर्णन लिख सकते हैं। डायरी का यह हिस्सा यात्रा-वृत्तांत का एक रूप हो सकता है। यह भी हो सकता है कि आप अपनी यात्रा सम्पन्न करने के बाद उसका वर्णन करने बैठें। जाहिर है कि ऐसा आप स्मृति के आधार पर करेंगे। भले ही यात्रा-वृत्तांत डायरी की तरह उसी दिन लिखें या न लिखें परंतु उसे उसी दौरान लिख लिया जाता है। जब तक कि यात्रा का अनुभव आपको याद हो। इसलिए यात्रा के दस-पंद्रह दिनों के भीतर उसे लिख लिया जाता है। इस तरह यह सजीव स्मृति का लेखन है।

यात्रा-वृत्तांत का एक लक्ष्यीभूत पाठक होता है। यह पाठक डायरी के पाठक से भिन्न होता है। जहाँ रचना किसी और व्यक्ति को संबोधित होती है, वहाँ लेखक में औपचारिकता आ

जाती है। आप ठीक से वाक्य बनाते हैं, पूरी बात भूमिका सहित लिखते हैं, अस्पष्टता से बचते हैं। प्रत्येक संकेत को समझाने की कोशिश करते हैं। लिखते हुए संप्रेषण के नियमों को ध्यान में रखते हैं। यह रचना कौशल डायरी से उसको अलग करते हैं।

यात्रा-वृत्तांत का कोई-न-कोई उद्देश्य होता है। आमतौर पर किसी स्थान विशेष के सौंदर्य से या वहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक जिंदगी से प्रेरित होकर ही लेखक यात्रा करता है। वह चाहता है कि पाठक भी उस अनुभव के साझीदार बनें। उसकी भीतरी आकांक्षा होती है कि आप उस स्थान विशेष पर जायें तो उसे उस लेखक की दृष्टि से भी एक बार देखें। वह पाठक के साथ संप्रेषण की इस स्थिति में आना चाहता है। हिंदी में अज्ञेय और निर्मल वर्मा ने बहुत उत्कृष्ट यात्रा-वृत्तांत लिखे हैं। जब भी अवसर मिले आपको उनका अध्ययन करना चाहिए।

बोध प्रश्न 1

1. निम्नलिखित में से कौन-सी कथात्मक गद्य विधा नहीं है:
   क) जीवनी
   ख) उपन्यास
   ग) नाटक
   घ) कहानी ( )
2. निम्नलिखित में से कौन-सी विशेषता डायरी पर लागू नहीं होती।
   क) अपने अनुभवों के बारे में लिखना
   ख) प्रकाशन के लिए नहीं लिखना
   ग) कल्पना के सहारे लिखना
   घ) आत्मावलोकन करना ( )
3. किसी लेखक की डायरी पढ़ने का केंद्रीय महत्व क्या है?

   .....

   .....
4. कौन-सी विधा डायरी के नजदीक नहीं है?
   क) संस्मरण
   ख) आत्मकथा
   ग) यात्रा-वृत्तांत
   घ) निबंध ( )

7.4 मोहन राकेश की डायरी का पठन

जालंधर : 26.1.58

हवा में वासन्ती स्पर्श है - समय अच्छा-अच्छा लगता है। ऐसे में अनायास मन होता है कि हल्के-हल्के स्वर में किसी से बात करें। अपने चारों ओर घर की मिठास, घर की उष्णता हो। किसी के हाथ चाय की प्याली लाकर दें, और प्याली के साथ वह हाथ भी थाम ले। हल्का-सा खिंचाव हो और ओंठ मदिर मुस्कराहट से फैल जाएँ। परंतु यह सब कैसे हो?.

.... जिससे इस सबकी आशा की थी, उसने तो उस दिन रेखा खींच दी। जिससे वस्तुतः आशा की पूर्ति संभव है, उसके अपने बन्धन हैं, अपने दायित्व हैं, एक भरा पूरा घर है, जहाँ उसे अपना एक निश्चित रोल अदा करना होता है।

और मैं इस एकान्त से, इस वीरानगी से समझौता करने के प्रयत्न में हूँ जिससे किसी रूप में तो जीवन की धुरी बैठ जाए।

लिखने-पढ़ने में अपने को पूरी तरह खो लिया जा सकता है, क्यों न उस aspect को मन से निकाल देने का ही प्रयत्न किया जाए? परंतु प्रयत्न मात्र से ही तो परिणाम नहीं निकल आता।

वस्तुतः जो ट्रेजेडी हुई है, उसमें मेरा ढुलमुलपन ही तो कारण है।

शिमले में उन दिनों एक बार मनोरमा साहनी ने कहा था, 'क्यों करते हैं ब्याह? मना क्यों नहीं कर देते? जब मन नहीं है, तो क्यों व्यर्थ में.....?'

कितनी बार साहस संचित किया था कि लिख दें, नहीं, हमारी मर्जी नहीं है। मगर फिर-फिर वही बात सामने आ जाती थी.....उनसे कह जो चुके हैं।

जब भी मन उखड़ने लगता है, चाह होती है वीणा को एक पत्र लिख दें। उसे बुरा लगे या अच्छा, लिख दें। सच में, उसकी आत्मीयता किस तरह छा लेती है? कैसे मानूं कि वह मेरे लिए पराई है और किसी और के लिए अपनी है।

कुत्ते भौंकते हैं, गाड़ी फक-फक करती है, रात चिलचिला बोलती है - और हम खामोश हैं। लिख रहे हैं कि किसी तरह थक जाएँ, जिससे नींद आ जाए, मगर विडम्बना यह है कि कितना ही थकने की कोशिश करें, पूरा थकते नहीं। और थक जाते हैं तो नींद नहीं आती। और नींद आती है तो थकान दूर नहीं होती। ऐसे सुबह उठते हैं जैसे दस घण्टे दफ्तर में काम करके आए हों।

Must work, work, and work-Must not waste myself—

इरादा था, सोने से पहले उपन्यास के एक अध्याय का खाका बनाएंगे। अब खाक बनाएंगे?

जालंधरः 27.1.58

एक और पत्र -

वीणा,

बाद दोपहर घर से निकलते हुए लैटर बाक्स देखा। तुम्हारा पत्र निकला। सड़क पर चलते हुए पढ़ा - 'एक प्रातः यहाँ आ जाओ। सप्ताह भर रहना घूमना। बात करना। चित्त सुस्थिर हो जाएगा।'

जल्दबाजी की आदत तो है ही। आज निश्चय कर लिया कि फरवरी के पहले या दूसरे सप्ताह चला जाऊँगा, कुछ काम साथ ले जाऊँगा। घूमूँगा, पढ़ूँगा-लिखूँगा।

सारा शहर घूम लिया। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिससे जी भरकर बात की जाए। कभी भी नहीं मिलता। रोज इसी तरह घूमकर लौट आता हूं। हर मिलने वाले से उसका चेहरा लगाकर भेंट करता हूं..... फिर शाम गहरी हो जाती है। घर लौटता हूं - और.....

यहीं आकर मन उलझने लगता है।

.....तो घूमते हुए प्लाजा में जा बैठा। तुम्हारा पत्र फिर निकाला। फिर पढ़ा -- 'माँ आ सकें तो.....'

पत्र बंद करके रख दिया। कार्यक्रम जितनी आसानी से बनाया था, उतनी ही आसानी से ढह गया।

तुम्हें पहले भी बता चुका हूँ शायद कि माँ बस का सफर नहीं कर सकतीं। वे मील भर बस में जाती हैं तो पीली पड़ जाती हैं। एक बार शिमला से कालका तक भेज दिया था। वरुन साथ में था उसकी रिपोर्ट थी कि न जाने किस तरह वहां तक जीवित पहुँच गयीं। इस बार डलहौजी ले जाना चाहता था। सोचा था कि कोई डोली मिल जाए तो ले जाऊं। पर उसके लिए माँ नहीं मानी। बताओ, उन्हें कैसे लाऊं?

इसका अर्थ है कि आप भी न आऊं। यही शायद ठीक भी है। मन को इतना भटकने नहीं देना चाहिए। एक बार हो आया हूं, फिर हो आऊंगा तो क्या प्रमाण है कि मन सुस्थिर हो जाएगा? यह एक दिन की भूख तो नहीं है।

इन दिनों कागजों से प्यार बढ़ाने के प्रयत्न में हूं। अभी कुछ बेगार का काम कर रहा हूं। दो तीन दिन में पूरा हो जाएगा। फिर किसी तरह ठीक से मन को जुटाऊंगा।..... अच्छा, तुम यह नहीं कर सकतीं कि रोज सोने से पहले मुझे एक पत्र लिख दिया करो, जैसे किसी को चाय की प्याली बनाकर देते हैं, या किसी के सिर में मालिश कर देते हैं, या पान का बीड़ा पकड़ा देते हैं। कर सको तो कठिन तो नहीं है। मैं तो खैर, कर सकता हूं ही। मेरे पास रोज कहने को बात नहीं होती - लेकिन केवल कुछ कहने के लिए ही तो नहीं लिखा जाता। बहुत कुछ ऐसा भी संप्रेषण होता है, जिसे बात के रूप में देखें तो कुछ भी नहीं होता, पर होता वह बहुत कुछ है। मैं रोज सोने से पहले अपने अंदर उमड़ते हुए उस 'कुछ' को सम्प्रेषित करने के लिए व्याकुल होता हूं। निःसंदेह वह 'कुछ' वह नहीं है, जिसके दोष से मैं लांछित हूं। वह 'कुछ ' 'कुछ' भी हो, शारीरिकता से छुआ नहीं होता - यद्यपि उससे कहीं बलवान होता है।

कमरे की सब खिड़कियाँ खुलवाई हैं, जिससे ठंडी हवा अंदर आए। महसूस करना चाहता हूं कि सर्दी चली गई है और निरभ्र आकाश में मंडराती हुई हवा बही है, जो पुलक और विश्वास लेकर आती है। न जाने क्यों मौसम बदलने से पहले चाहने लगता हूं कि मौसम बदल जाए, यह बात हर अनागत क्षण को लेकर होती है। धैर्य से उसकी प्रतीक्षा मैं नहीं कर पाता।

कभी-कभी यह भी अनुभव करना चाहता हूं कि आकृति न सही, एक भावना यहीं कहीं पास में है, अभी मेरी ओर देखकर मुस्करा देगी, खिलखिला उठेगी। अभी मेरे तकिये के पीछे आ खड़ी होगी और मेरे बालों को सहला देगी। अभी मेरा टेबल लैंप बुझा देगी और कहेगी, थको नहीं, सो जाओ। लेकिन, भावना इतनी मूर्त क्योंकर हो सकती है? अपनी छलना पर स्वयं मुस्करा देता हूं। हटाओ जी, यह सब बात। पढ़े-लिखे समझदार आदमी हो, तुम्हें यह सब शोभा नहीं देता। कोई और बात सोचो, या कोई उपन्यास पढ़ो। या रेडियो लगाकर किसी अपरिचित देश का संगीत सुनो। या बत्ती बुझाकर अंधेरे में जुगनुओं की कल्पना करो। या बाहर सड़क पर घूमो। या कल से हर रोज दस बजे एक नींद की टिकिया खाया करो।

सोचना, एक टी.बी. की तरह का मर्ज है, जिसका एकमात्र इलाज है खुली हवा।

अच्छा, तो मैं दो-चार छः रोज में दिल्ली जाऊँगा। जितने दिन मन करेगा, वहां रहूंगा। फिर एक दिन लौट आऊंगा और मेज कुर्सी पर डट जाऊँगा। जिस दिन फिर मन उखड़ेगा, फिर भाग जाऊँगा।

अच्छा, पत्र लिखना - एक पंक्ति का पतंजलि सूत्र नहीं।

-- राकेश

मन को स्थिर करने की कोई प्रक्रिया सोचो पण्डित। इस तरह उलझे-बिखरे रहोगे तो जिंदगी यूं ही पूरी कर दोगे। आखिर तुम्हीं अकेले तो नहीं हो जिस पर यह सूनापन छाया है। और तुम्हें तो भाई, जिंदगी में बहुत-कुछ मिला भी है, मिलता भी है। बल्कि जितना तुम करते हो, उससे अधिक पा लेते हो। फिर क्यों मचलते हो? काम करना चाहते हो, काम करो। खामखाह का रेशम कात कर उसमें उलझ जाने का कोई अर्थ नहीं।

- तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय।

बोध प्रश्न 2

1) 'क्यों करते हैं ब्याह?, मना क्यों नहीं कर देते?.....' ये वाक्य किसने और कहाँ कहे?

.....

.....

2) लेखक ने किसे 27 जनवरी 1958 को पत्र लिखा?

.....

.....

3) कागजों से प्यार बढ़ाने का क्या अर्थ है?

.....

.....

7.5 डायरी का सार

आपने मोहन राकेश की डायरी के इन अंशों को ध्यान से पढ़ा होगा। आइये सबसे पहले हम डायरी का सार जान लें।

यह डायरी मोहन राकेश ने जालंधर में रहते हुए 26 जनवरी, 1958 और 27 जनवरी, 1958 के दिन लिखी है। अपनी प्रसन्नचित मनःस्थिति का जिक्र करते हुए लेखक हवा के रूमानी प्रभाव का उल्लेख करता है। किसी से बात करने की मन में कामना जागती है। वह आश्वस्त, स्नेहिल और घरेलू संबंध की कामना करता है। वह चाहता है कि 'किसी के हाथ चाय की प्याली लाकर दें'। इसी सुखद कल्पना के बाद उसे पुनः निराशा घेर लेती है। उसे लगता है कि यह संभव नहीं है। जिस से उम्मीद की थी, उसने मनाकर दिया। जो कर सकता है (या कर सकती है) उसका अपना पारिवारिक दायित्व है।

लेखक अपने जीवन के इस खालीपन से परेशान है। वह चाहता है कि साहित्य की दुनिया में वह अपने अपको डुबा दे और भावनात्मक रिश्तों को मन से निकाल दे। क्या यह संभव है? इस सबके लिए वह कहीं अपने 'ढुलमुलपन' को ही दोषी मानता है। शिमला में किसी हितैषी महिला (मनोरमा साहनी) ने कहा भी था कि जब मन नहीं है तो ब्याह क्यों करते हो? मना कर दो? लेखक भी सोचता है कि वीणा को पत्र लिख ही दें।

रात के वातावरण का जिक्र करते हुए लेखक चाहने लगता है कि वह लिखते-लिखते थक जाए और सो जाए? परंतु थकते ही नहीं। थक भी गए तब भी नींद नहीं आती। नींद आ

भी जाए तो थकान नहीं मिटती। सुबह ऐसा लगता है मानो 'दस घंटे दफ्तर में काम करके आए हों।'

अगले दिन 27 जनवरी, 1958 की डायरी में लेखक ने वीणा को लिखा पत्र उद्धृत किया है। वीणा के पत्र का जबाव देते हुए राकेश लिखते हैं कि सारे शहर में कोई जी भरकर बात करने के लिए व्यक्ति नहीं मिला। सिर्फ उसका चेहरा मिलता है। मानवीय संप्रेषण की यह कमी लेखक को खलती है। फिर वीणा का पत्र पढ़ता है। कितनी बार 'बता चुका हूँ' कि माँ बस पर सफर नहीं कर सकती। मतलब यह कि माँ न आए तो लेखक भी नहीं आ सकता। लेखक सोचता है कि वहाँ जाने से भी मन स्थिर हो जाएगा, क्या यह तय है?

लेखक सूचित कर रहा है कि इन दिनों वह लिखने-पढ़ने के कार्यों में लगा हुआ है। फिर वह वीणा से आग्रह करता है कि वह 'रोज सोने से पहले मुझे एक पत्र लिख दिया करे' जैसे किसी को चाय की प्याली बनाकर देते हैं'। काम असंभव तो नहीं है परंतु कठिन है। मोहन राकेश यहां फिर डायरी लिखने की प्रेरणा का उल्लेख करते हुए कहते हैं 'बहुत कुछ ऐसा भी संप्रेषण होता है, जिसे बात के रूप में देखें तो कुछ भी नहीं होता, पर होता वह बहुत कुछ है।' लेखक सोने से पहले उमड़ने वाले उस 'कुछ' को संप्रेषित करने के लिए व्याकुल होता है। (उस 'कुछ' की अभिव्यक्ति का एक रूप यह डायरी है।)

लेखक अपने आपको अभिव्यक्त करते हुए आगे कहता है कि उसमें धैर्य नहीं है। वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता। जो होना है वह हो जाए। मौसम बदलना है तो तुरंत बदल जाए। परंतु ऐसा होता नहीं। इससे भी निराशा तो होती ही है।

अपने अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए लेखक कामना करता है कि उसके आस-पास 'व्यक्ति' न सही एक भावना रहे। उसके रहने का विश्वास रहे और उसे लगता रहे कि 'अभी वह मेरी ओर देखकर मुस्करा देगी। स्नेह-संबंधों की यह आकांक्षा लेखक को कल्पना में ले जाती है और वह स्वयं ही अपनी इस छलना पर मुस्करा देता है। इससे तो अच्छा है कि किसी अपरिचित देश का संगीत सुने या उपन्यास पढ़े या घूमे-फिरे या रोज नींद की एक गोली खा ले। लेखक को लगता है कि चिंतन सोचना-विचारना एक बीमारी है, जो अकेले में बढ़ती है। इससे मुक्ति पाने के लिए वह चार-छः रोज के लिए दिल्ली जाएगा। फिर वापिस आकर काम करेगा, इसकी सूचना वह पत्र में देता है।

पत्र समाप्त करने के उपरांत लेखक अपने-आप से संवाद की स्थिति में आता है और अपने मन को स्थिर करने के लिए अपने आपको सलाह देता है। काम करना चाहते हो तो काम करो। निरर्थक कल्पनाओं में, मीठे ख्यालों में क्यों उलझते हो।

7.6 डायरी की प्रमुख विशेषताएँ

दो दिन की इस डायरी में लेखक ने अपने अकेलेपन की पीड़ा या भावनात्मक रिक्तता (खालीपन) का वर्णन किया है। यदि इसे रचना के रूप में देखें तो हम पायेंगे कि इसमें तथ्यों का नितांत अभाव है। डायरी का उद्देश्य हम जान सकते हैं, परंतु उससे हमें कोई खास जानकारी मिलती हो - सो बात नहीं है। तथ्य नहीं हैं, तथ्यों के संकेत हैं, जिन्हें लेखक जानता है। उसे पता है। उन तथ्यों के प्रति मानसिक प्रतिक्रियाएँ लेखक ने व्यक्त की हैं। यदि उन्हें वह नहीं लिखता, तो स्वयं ही भूल जाता। इसलिए एक संकेत सूचक वाक्य लिखकर आगे बढ़ गया। उदाहरणार्थ - 'जिससे इस सबकी आशा की थी, उसने तो उस दिन रेखा खींच दी।' इस वाक्य का संपूर्ण अर्थ लेखक जानता है। हम नहीं जानते। लेखक ने हमें इस वाक्य का अर्थ नहीं समझाया। क्यों? क्योंकि लेखक ने हमारे लिए अर्थात्

पाठक के लिए इस डायरी को लिखा ही नहीं। उसने तो अपने लिये लिखा था और इस संकेत को वह कभी भी समझ सकता है। यह डायरी के लेखन की अपनी विशेषता है। यदि लेखक संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत या आत्मकथा लिखता तो इस प्रकरण पर अवश्य प्रकाश डालता।

डायरी में वर्णित इन मानसिक प्रतिक्रियाओं से हमारे सामने लेखक के रूप में एक ऐसे भावुक व्यक्ति की तस्वीर उभरती है जो रिश्तों की ऊष्मा में जीना चाहता है, रिश्तों पर निर्भर रहना चाहता है। वह चाहता है कि 'किसी का हाथ चाय की प्याली लाकर दे' आत्मीयता की कामना और इसके अभाव की पीड़ा एक ऐसा दर्द है जिसे किसी दुनियादार आदमी को नहीं समझाया जा सकता। दूसरे, लेखक स्वयं भी जानता है कि इस दर्द का इलाज संभव नहीं। इसे सहना ही है। फिर, काम करे और थक जाये। थक जाये और सो जाये। परंतु दर्द की सीमा यहाँ तक है कि 'नींद आती है तो थकान दूर नहीं होती।' दर्द की दवा की निरर्थकता का यह एहसास ही लेखक को डायरी जैसे निजी और आत्मीय लेखन की तरफ ले जाता है।

दो दिनों की इस डायरी में निरंतरता है। जो दर्द पहले दिन की डायरी में है, वही दूसरे दिन भी मौजूद है। इस दिन वीणा को पत्र लिखा गया है। इस पत्र में भी वही आत्मसाक्षात्कार है। अपना ही उतावलापन, अस्थिरता, दिवास्वप्न और आकांक्षा है। लेखक एक ऐसी भावना को अपने आस-पास देखना चाहता है जो 'मेरे तकिये के पीछे आ खड़ी होगी और मेरे बालों को सहला देगी'। जाहिर है कि यह दिवास्वप्न दैनिक जीवन में अनेक कष्टों को न्यौता देगा। ये पीड़ायें डायरी के इन अंशों में मौजूद हैं। आत्मसाक्षात्कार के रूप में लिखी गयी इस डायरी में किसी प्रकार की भूमिका नहीं है। लेखक किसी अन्य को संबोधित नहीं करता। इसलिए इसमें औपचारिक लेखन की दृष्टि से अनेक कमियां दिखायी देंगी। लेकिन उस एक दिन लेखक क्या महसूस करता रहा इसकी तस्वीर उस दिन डायरी में पूरी तरह से उपलब्ध है। और यही इस डायरी की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इस रूप में यह किसी भी डायरी की उपलब्धि हो सकती है।

डायरी आत्मसाक्षात्कार की विधा है। इसमें व्यक्ति अपने आप से संवाद करता है। मोहन राकेश की इस डायरी के अंश में दो दिन की लेखक की मनःस्थिति का चित्रण है। इस मनःस्थिति का विशेष संदर्भ है। इस संदर्भ का खुलासा डायरी में नहीं है लेकिन उसके प्रभाव का चित्र अत्यंत प्रभावशाली रूप में डायरी में अंकित हुआ है।

> ''जब भी मन उखड़ने लगता है, चाह होती है वीणा को एक पत्र लिख दें। उसे बुरा लगे या अच्छा, लिख दें। सच में, उसकी आत्मीयता किस तरह छा लेती है? कैसे मानूँ कि वह मेरे लिए पराई है और किसी और के लिए अपनी है।''

मोहन राकेश ने अपने मन की उलझन को भी डायरी में दर्ज किया है। मन में अगर बेचैनी है तो काम में अपने को लगाए रखने से भी बात नहीं बनती। काम में मन नहीं लगता और शरीर पर भी उसका अनुकूल असर नहीं पड़ता।

> ''लिख रहे हैं कि किसी तरह थक जाएँ, जिससे नींद आ जाए, मगर विडंबना यह है कि कितना ही थकने की कोशिश करें, पूरा थकते नहीं। और थक जाते हैं तो नींद नहीं आती। और नींद आती है तो थकान दूर नहीं होती। ऐसे सुबह उठते हैं जैसे दस घंटे दफ्तर में काम करके आए हों।''

7.7 भाषा-शैली

वैसे तो डायरी कई उद्देश्यों से प्रेरित होकर लिखी जा सकती है। उसमें रोज का हिसाब-किताब दर्ज किया जा सकता है। हर रोज डायरी लेखक के जीवन में घटने वाली घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है, लेकिन ऐसी डायरी को साहित्यिक विधा नहीं माना जा सकता। वही डायरी साहित्य रचना का दर्जा पा सकती है जिसमें डायरी लेखक की रचनात्मक ऊर्जा की अभिव्यक्ति हो। वहाँ घटनाओं और भावों का वर्णन पर्याप्त नहीं है। इस दृष्टि से देखने पर हम पाते हैं कि मोहन राकेश की डायरी में घटनाओं और भावों का वर्णन नहीं है।

26 जनवरी के दिन लिखी गई डायरी का आरंभ लेखक इस तरह करता है:

> ''हवा में वासंती स्पर्श है, समय अच्छा-अच्छा लगता है। ऐसे में अनायास मन होता है कि हल्के-हल्के स्वर में किसी से बात करें।''

इन दो वाक्यों में लेखक ने डायरी लिखने के क्षणों का वर्णन किया है, लेकिन यह वर्णन इस तरह से भी हो सकता था: ''वसंत की हवा चल रही है जो बहुत अच्छी लग रही है। किसी से बात करने का मन कर रहा है।'' बात कहने के इस ढंग की तुलना यदि मोहन राकेश के कथन से करें तो हमें उनके कथन की उत्कर्षता का एहसास आसानी से हो जाएगा। इन पहले दो वाक्यों में ही लेखक की मनःस्थिति का आभास हो जाता है। ''समय अच्छा-अच्छा लगता है'' में सिर्फ बाह्य स्थिति का वर्णन नहीं है वरन् लेखक की आंतरिक अनुभूति का संकेत भी है। ''हवा में वासंती स्पर्श है'' कहने से ही कथन में निहित सर्जनात्मक स्पर्श का संकेत मिल जाता है।

डायरी का लेखन प्रकाशन के लिए नहीं होता। लेकिन साहित्यिक डायरी में लेखक की भाषा का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। इस डायरी-अंश में भी हम पाते हैं कि लेखक शब्दों का प्रयोग अत्यंत सजग होकर करता है। उसकी भाषा में भावात्मक तरलता का आभास हमें बराबर मिलता है। जनवरी की ठंडी हवा का असर जो मन पर पड़ता है, उसके अनुरूप भाषा लिखी गई है। लेखक की भाषा में आत्मीय शीतलता का सहज आवेग हर कहीं है:

> ''कितनी बार साहस संचित किया था कि लिख दें, नहीं, हमारी मर्जी नहीं है। मगर फिर-फिर वही बात सामने आ जाती थी..... उनसे कह जो चुके हैं।''

या इन वाक्यों में अपने आप से बात करने के अंदाज को देखें:

> ''इरादा था, सोने से पहले उपन्यास के एक अध्याय का खाका बनायेंगे। अब खाक बनायेंगे?''

दूसरे दिन की डायरी में लेखक ने वीणा को लिखे पत्र को उद्धृत किया है। वीणा को पत्र लिखने की बात का जिक्र 26 जनवरी के अंश में है : ''जब भी मन उखड़ने लगता है, चाह होती है वीणा को एक पत्र लिख दें।'' लेखक अपने इस इरादे को पूरा करता है और वीणा को पत्र लिखता है। न तो पत्र से और न ही डायरी के अंश से यह ज्ञात होता है कि लेखक का वीणा के साथ क्या संबंध है। लेकिन पत्र और अन्य उल्लेख इस बात का आभास दे देते हैं कि वीणा लेखक की आत्मीय है। यही वजह है कि पत्र का संबोधन अत्यंत अनौपचारिक ढंग से होता है : 'वीणा'। आगे-पीछे किसी अन्य संबोधन का न होना यह बताने के लिए पर्याप्त है कि वीणा-लेखक के बीच गहरा आत्मीय रिश्ता है। यह आत्मीयता पूरे पत्र में

बराबर अभिव्यक्त हुई है। यही वजह है कि पत्र में लेखक अपने हृदय की बात कहने में संकोच नहीं करता।

> ''कभी-कभी यह भी अनुभव करना चाहता हूँ कि आकृति न सही, एक भावना यहीं कहीं पास में है, अभी मेरी ओर देखकर मुस्करा देगी, खिलखिला उठेगी। अभी मेरे तकिये के पीछे आ खड़ी होगी और मेरे बालों को सहला देगी।''

इन वाक्यों में लेखक का हृदय ही नहीं उसका रचनाकार मन भी हमारे सामने आता है। भावना को अपने आसपास एक सजीव आत्मीय की तरह महसूस करने को लेखक ने गतिशील बिंब में बाँध दिया है। यहाँ कवि की प्रिया ही भावना के रूप में साकार हो उठी है कि लेखक स्वयं अपने से प्रश्न करने लगता है:

> ''..... अभी मेरा टेबल लैंप बुझा देगी और कहेगी, थको नहीं, सो जाओ। लेकिन, भावना इतनी मूर्त क्योंकर हो सकती है? अपनी छलना पर स्वयं मुस्करा देता हूँ। हटाओ जी, यह सब बात। पढ़े-लिखे समझदार आदमी हो, तुम्हें यह सब शोभा नहीं देता।''

पत्र का यह अंश पढ़ने से हमें सहज ही यह आभास हो जाता है कि मोहन राकेश अपने मन की स्थिति का चित्रण करने में किसी तरह का संकोच नहीं कर रहे हैं। लेकिन यह सब कहते हुए, लेखक का अपनापन भी हमें महसूस होता है।

बड़े लेखक की यह पहचान होती है कि वह साधारण सी बात कहते हुए उसमें असाधारण मंतव्य, असाधारण ढंग से डाल देता है।

> ''मेरे पास रोज कहने को बात नहीं होती - लेकिन केवल कुछ कहने के लिए ही तो नहीं लिखा जाता, पर होता वह बहुत कुछ है। मैं रोज सोने से पहले अपने अंदर उमड़ते हुए उस 'कुछ' को संप्रेषित करने के लिए व्याकुल होता हूँ। निस्संदेह वह 'कुछ' वह नहीं है, जिसके दोष से मैं लांछित हूँ। वह 'कुछ' कुछ भी हो शारीरिकता से छुआ नहीं होता - यद्यपि उससे कहीं बलवान होता है।''

डायरी के इन दोनों अंशों को पढ़ने से हमें लेखक की भाषिक शक्ति का प्रमाण मिलता है। अपने मन की उलझनों को इतने खूबसूरत ढंग से कह सकना मोहन राकेश की भाषा की विशेषता रही है। भाषा के इस सौंदर्य को हम उनकी कहानियों और नाटकों में भी देख सकते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि लेखक के लिए डायरी लिखना भी रचनात्मक और कलात्मक अभिव्यक्ति है।

बोध प्रश्न 3

1) 'वस्तुतः जो ट्रेजेडी हुई है, उसमें मेरा ढुलमुलपन ही तो कारण है।' डायरी के इस कथन में लेखक के व्यक्तित्व की किस विशेषता का पता लगता है?

.....

.....

2) 'वीणा' को लिखे गये पत्र के अंत में लेखक ने 'अच्छा, पत्र लिखना - एक पंक्ति का पतंजलि सूत्र नहीं।' लिखने में लेखक की किस भावना का पता लगता है?

.....

.....

3) मोहन राकेश की डायरी के पठित अंश की कोई दो भाषागत विशेषताओं का उल्लेख करें।

.....

.....

अभ्यास

1) डायरी और आत्मकथा या डायरी और संस्मरण का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

2) मोहन राकेश के पठित डायरी अंश की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

3) उक्त अंश की भाषा-शैली संबंधी विशेषताएँ भी बताइए।

7.8 सारांश

- आपने इस इकाई में मोहन राकेश द्वारा लिखित डायरी के अंशों का वाचन किया और उसकी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप साहित्यिक डायरी की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।

- इकाई में आपने एक साहित्यिक विधा के रूप में डायरी की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया है। डायरी एक निजी विधा है। डायरी में लेखक अपने जीवन के अनुभवों और विचारों को दर्ज करता है, लेकिन किसी दूसरे के लिए नहीं अपने लिए। डायरी के माध्यम से वह अपने आप से साक्षात्कार करता है।

- डायरी, संस्मरण, आत्मकथा और यात्रा-वृत्तांत विधाओं के काफी नजदीक है। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है जबकि डायरी में सिर्फ उन दिनों का ही विवरण होता है, जिस दिन लेखक डायरी लिखता है। संस्मरण में लेखक अपने से संबंधित किसी अन्य व्यक्ति के साथ जुड़ी स्मृतियों को प्रस्तुत करता है जबकि डायरी में अतीत की स्मृतियाँ नहीं वर्तमान का सत्य प्रस्तुत होता है। यात्रा-वृत्तांत लेखक द्वारा की गई यात्रा का वर्णन होता है। यात्रा-वृत्तांत संस्मरण और डायरी दोनों रूपों में लिखा जा सकता है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इन विधाओं के पारस्परिक संबंध को समझ गए होंगे।

- डायरी के जिन अंशों का आपने अध्ययन किया है उसकी विषयवस्तु और भाषा-शैली की विशेषताओं पर भी इकाई में विचार किया गया है। अपने मन की उलझनों को, अपने आत्मीय जनों के साथ संबंधों को इस डायरी में लेखक ने दर्ज किया है जिसमें उसके मन की विभिन्न स्थितियों का परिचय मिलता है। डायरी में लेखक की भाषा का सौंदर्य और शैली की विशिष्टता का भी हमें परिचय मिलता है।

उपर्युक्त इकाई के अध्ययन से आप डायरी विधा की विशेषताएँ बता सकेंगे।

7.9 शब्दावली

स्वांतः सुखाय : अपने सुख के लिए

आत्म-औचित्य : अपने उचित होने को साबित करना

आत्मसाक्षात्कार : अपने आप को पहचानना

विस्मृति	:	भूलना
पर्यटक-निर्देशिका	:	जिसमें पर्यटन संबंधी जानकारी दी गई हो। आमतौर पर पर्यटन से संबंधित संस्थाएँ इसका प्रकाशन करती हैं।
वीरानगी	:	शून्य एकांत
ट्रेजेडी	:	त्रासदी
निरभ्र	:	बादलों से रहित
पतंजलि-सूत्र	:	पतंजलि ऋषि द्वारा लिखे सूत्र। ये अपनी संक्षिप्तता के कारण पहचाने जाते हैं।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय	:	गीता के एक श्लोक का अंश। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं : हे अर्जुन, उठ खड़े हो।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क
2) ग
3) लेखक के निजी अनुभवों की रचनात्मक अभिव्यक्ति को जानने के लिए।
4) घ

बोध प्रश्न 2

1) शिमला में, लेखक से मनोरमा साहनी ने।
2) वीणा को।
3) लेखन कार्य में प्रवृत्त होना।

बोध प्रश्न 3

1) आत्मस्वीकार का साहस
2) वह वीणा से लंबे उत्तर की आशा करता है।
3) आत्मीयता और भावात्मक तरलता से युक्त भाषा

अभ्यासों के उत्तर इकाई पढ़कर स्वयं लिखिए।

इकाई 8 पत्र-साहित्य

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 पत्र : एक साहित्यिक विधा

8.3 पत्र विधा की विशेषताएँ

- 8.3.1 लिखित संप्रेषण
- 8.3.2 निजता
- 8.3.3 आत्माभिव्यक्ति
- 8.3.4 तात्कालिकता
- 8.3.5 सहजता

8.4 पत्र और अन्य गद्य विधाएँ

- 8.4.1 पत्र और आत्मकथा
- 8.4.2 पत्र और संस्मरण
- 8.4.3 पत्र और डायरी

8.5 मुक्तिबोध के पत्रों का पठन

8.6 मुक्तिबोध के पत्रों का सार

8.7 मुक्तिबोध के पत्रों का विश्लेषण

- 8.7.1 कथ्य
- 8.7.2 भाषा शैली

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

पिछली इकाई में आप डायरी विधा से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में हम साहित्य की एक प्रमुख विधा 'पत्र' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इसे पढ़ने के बाद आप :

- साहित्यिक विधा के रूप में पत्र-साहित्य की विशेषताएँ बता सकेंगे;
- पत्र तथा अन्य गद्य विधाओं का अंतर स्पष्ट कर सकेंगे और
- मुक्तिबोध के पत्रों का विश्लेषण कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस खंड के अन्तर्गत हम डायरी, पत्र, रिपोर्ताज, यात्रा-वृत्तांत, जीवनी और संस्मरण जैसी गद्य विधाओं का अध्ययन कर रहे हैं। डायरी विधा का अध्ययन आप पिछली इकाई में कर चुके हैं। इस इकाई में आप पत्र-साहित्य की विशेषताओं से परिचित होंगे।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

लेखन कला के आविष्कार के साथ ही पत्र लेखन की भी शुरुआत हुई। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि अपने हर काम के लिए हम पत्र का सहारा लेते हैं। स्कूल, कॉलेज या दफ्तर से छुट्टी लेनी हो, किसी दफ्तर में अर्जी देनी हो, दूर बैठे प्रिय जन को कुछ लिखना हो तो हम पत्र माध्यम का ही सहारा लेते हैं। पत्रों के इन विभिन्न प्रकारों के कारण इन्हें औपचारिक और अनौपचारिक श्रेणी में विभाजित किया जाता है। यहाँ हम उन अनौपचारिक साहित्यिक पत्रों की चर्चा करने जा रहे हैं जो साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान हों।

सबसे पहले हमने यह स्पष्ट किया है कि पत्र क्या है और पत्र साहित्यिक विधा किस प्रकार है? हमने पत्र विधा की विशेषताओं पर विचार किया है। जैसे, यह लिखित संप्रेषण है। इसमें निजता होती है। इसमें व्यक्ति अपने आपको अभिव्यक्त करता है। तात्कालिकता भी पत्र की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसमें तुरंत सोचा हुआ लिखा जाता है। मन में जो बात आई लिख दो। इसीलिए पत्र के कथ्य और शिल्प में सहजता होती है। कभी-कभी आपको इसमें कलात्मकता की कमी भी महसूस हो सकती है।

पत्र साहित्य के इन गुणों पर विचार करने के बाद हमने मुक्तिबोध के दो पत्रों को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। ये दोनों पत्र मुक्तिबोध ने नेमिचन्द्र जैन को लिखे हैं। मुक्तिबोध और नेमिचन्द्र जैन हिंदी के ख्यातिलब्ध साहित्यकार हैं। दोनों ही 'तारसप्तक' काव्य संग्रह के कवि हैं। सन् 1943 में अज्ञेय के सम्पादन में तार-सप्तक का प्रकाशन हुआ। मुक्तिबोध और नेमिचन्द्र जैन दोनों ने ही आलोचनाएँ भी लिखी हैं। जो दो पत्र इस इकाई में बतौर पाठ प्रस्तुत किए गए हैं उन्हें पढ़ने से भी यह पता चलता है कि दोनों रचनाकार आपस में कितने जुड़े हुए थे और उनमें कितनी अंतरंगता थी। इन दोनों पत्रों में एक अच्छे साहित्यिक पत्र के गुण मौजूद हैं। आप इन्हें ध्यान से पढ़ें और समझने का प्रयास करें। हमने इन्हें विश्लेषित कर आपको समझाने का प्रयास किया है। फिर भी कुछ शंकाएँ आपके मन में रह जाएँ तो आप अपने अध्ययन केंद्र के परामर्शदाता से अपनी शंका का समाधान कर सकते हैं।

पाठ पढ़ने के लिए संकेत

पाठ का वाचन करते समय आप कठिन शब्दों का अर्थ शब्दावली (भाग 8.9) में देख सकते हैं। यदि कोई कठिन शब्द का अर्थ न मिले तो शब्दकोश की सहायता लीजिए।

8.2 पत्र : एक साहित्यिक विधा

'पत्र' गद्य साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। इसमें दो अलग-अलग जगह पर रहने वाले व्यक्ति लिखित भाषा के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। दो व्यक्तियों के संप्रेषण में वाचिक भाषा का प्रयोग होता है। यह वाचिक भाषा जब लिखित रूप में आ जाए, तो पत्र इसका सबसे समर्थ वाहक बनता है। दूसरे शब्दों में पत्र किसी के पास भेजा गया लिखित संदेश है। इस दृष्टि से देखा जाए तो हम देखते हैं कि पत्र में :

i) एक लेखक होता है और एक पाठक होता है।

ii) पाठक लेखक और लेखक पाठक बन जाता है। अर्थात् इसमें तीसरा कोई व्यक्ति नहीं होता।

iii) इस माध्यम में दोनों व्यक्तियों को एक भाषा का जानकार एवं साक्षर होना आवश्यक है। अर्थात् **पत्र साक्षर व्यक्तियों के संप्रेषण का माध्यम है।**

जैसा कि हम पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं कि कथेतर गद्य-विधाओं में कल्पना का सहारा नहीं लिया जाता, वरन् इनमें वास्तविक घटनाओं और अनुभवों का वर्णन किया जाता है। पत्र किसी काल्पनिक तथा अमूर्त व्यक्ति को संबोधित नहीं होता वरन् वास्तविक व्यक्ति को संबोधित होता है। पत्र पाने वाला जब पत्र का जवाब देता है तो वह भी पत्र लेखक बन जाता है। उसमें भी सर्जनात्मक सामर्थ्य होती है। पत्र की यह विशेषता किसी भी अन्य गद्य विधा में नहीं मिलती। पत्र-साहित्य के लेखक-पाठक में समानता का आधार होता है।

पत्र दो साक्षर व्यक्तियों का लिखित संवाद है। संवाद में दोनों व्यक्ति एक दूसरे को संप्रेषित कर रहे होते हैं। इस सामग्री को हम मोटे तौर पर तीन भागों में बाँट सकते हैं :

i) तथ्यों का संप्रेषण,

ii) तथ्यों पर व्यक्त की जा रही मानसिक प्रतिक्रियाओं का संप्रेषण और

iii) स्वयं का संप्रेषण अर्थात् आत्माभिव्यक्ति।

जिन पत्रों में हम एक-दूसरे को तथ्यों का संप्रेषण करते हैं उन्हें हम औपचारिक पत्रों की श्रेणी में रख सकते हैं। दूकानदार द्वारा अपने ग्राहक को किसी पुस्तक की कीमत की सूचना देने से लेकर सरकार को जनता की समस्याओं से अवगत कराने तक के सभी पत्रों को हम औपचारिक पत्रों की श्रेणी में गिनते हैं। इनका एक निश्चित विधान होता है। उसी के अनुरूप सभी लोग आवश्यकतानुसार पत्र व्यवहार करते हैं। इस इकाई में हम ऐसे पत्रों का अध्ययन नहीं करेंगे। ऐसे पत्र साहित्यिक पत्रों की श्रेणी में नहीं आते।

जिन पत्रों में पत्र-लेखक किसी तथ्य विशेष पर अपनी निजी मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, या अपने दुःख दर्द की कहानी सुनाता है, अपने आपको अभिव्यक्त करके प्रसन्न होता है, उन अनौपचारिक पत्रों का अध्ययन ही हम इस इकाई में करेंगे। औपचारिक और अनौपचारिक पत्रों को इस तरह से पहचान सकेंगेः

- औपचारिक पत्र निश्चित परिपाटी में लिखे हुए होते हैं, जबकि अनौपचारिक पत्रों की ऐसी कोई निश्चित परिपाटी नहीं होती।
- औपचारिक पत्र सोद्देश्य होते हैं। उनका उद्देश्य निश्चित तथ्यों और घटनाओं का संप्रेषण करना होता है।
- औपचारिक पत्र में पाने वाले व्यक्ति का निजी व्यक्तित्व महत्वपूर्ण नहीं होता। उस स्थान पर बैठे हुए किसी भी व्यक्ति के लिए यह पत्र हो सकता है। जबकि अनौपचापरिक पत्रों में वह व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है, जिसे पत्र लिखा जाना है। यदि उसके स्थान पर किसी और को पत्र लिखना है तो पत्र की सारी सामग्री बदल जायेगी। यह निजता ही उसे अनौपचारिक पत्र बनाती है और इसी से यह पत्र साहित्य की श्रेणी में आता है।

पत्र आत्माभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। हालांकि पत्र का आरंभ लेखन के आविष्कार के साथ ही हुआ परंतु विधा के रूप में साहित्य से यह आधुनिक काल में ही जुड़ा। साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान पत्र को ही साहित्यिक पत्र माना जाता है। इस प्रकार के पत्र से रचनाकार के व्यक्तित्व, उसकी रचना, रचना-प्रक्रिया आदि का उद्घाटन होता है। सामान्य सूचना देने वाले पत्र साहित्यिक पत्र की कोटि में नहीं आएंगे। साहित्यिक सवालों को उठाने वाले पत्र ही साहित्यिक पत्र कहे जाएंगे।

सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्तियों के बारे में सभी व्यक्तियों की जिज्ञासा रहती है। हम उनके बारे में ज्यादा से ज्यादा

जानना चाहते हैं। इन क्षेत्रों में उनके किये गये कार्यों को हम जानते हैं। उनके व्यक्तित्व का सार्वजनिक पक्ष हमारे सामने उद्घाटित हो चुका होता है। हम यह भी जानना चाहते हैं कि उनका निजी, एकांत, गोपनीय जीवन कैसा रहा है? किसी घटना विशेष पर उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया कैसी रही है? इसके लिए हम महापुरुषों के संस्मरण पढ़ते हैं, उनकी डायरी और आत्मकथा का अध्ययन करते हैं। इसी जिज्ञासा से हम उनका पत्र-व्यवहार भी पढ़ते हैं। इन पत्रों में उनका मानसिक व्यक्तित्व झांकता है। इसी कारण उनका पत्र-व्यवहार प्रकाशित होता है। महात्मा गांधी, अल्बर्ट आइंस्टाईन, प्रेमचंद और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पत्र बहुत चाव से पढ़े जाते हैं।

पत्र-साहित्य हिंदी गद्य की नवीनतम गद्य विधाओं में से एक है। जैसे-जैसे पत्र साहित्य का महत्व स्थापित हुआ वैसे-वैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों के पत्र प्रकाशित होने लगे। हिंदी साहित्य में कई हिंदी साहित्यकारों जैसे महावीर प्रसाद द्विवेदी, बनारसीदास चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, उग्र, बच्चन, यशपाल, दिनकर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन आदि रचनाकारों के पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। इन पत्रों से साहित्य और संपूर्ण जीवन के बारे में इनके दृष्टिकोण को समझने में मदद मिली है।

इस इकाई में हमने श्री नेमिचन्द्र जैन के नाम मुक्तिबोध के पत्र के जरिए पत्र साहित्य को समझने का प्रयास किया है। सर्वश्री नेमिचन्द्र जैन और मुक्तिबोध हिंदी के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। इन पत्रों में मुक्तिबोध ने साहित्य और जीवन के बारे में अपना दृष्टिकोण सामने रखा है। इसीलिए यह एक साहित्यिक पत्र है। इस पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।

8.3 पत्र विधा की विशेषताएँ

पत्र एक सोद्देश्य संप्रेषण है। हम जानबूझकर, एक योजना के अंतर्गत, कुछ बातों को संप्रेषित करने के लिए पत्र लिखते हैं। हम अनायास, निरुद्देश्य पत्र नहीं लिखते। हम किसी को 'कुछ' कहना चाहते हैं, कुछ 'बताना चाहते हैं। जिसे हमें बताना है, वह व्यक्ति हमारे पास नहीं है। वह हमसे दूर है। यदि वह पास है, तब भी हमको लगता है कि हम उसे अपनी बात अच्छी तरह से नहीं कह पायेंगे। सामने वाला व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करके हमारी एकाग्रता भंग कर देगा और इस कारण हमारा 'कथ्य' पूर्णतः संप्रेषित नहीं हो पायेगा। इसलिए हम दूरस्थ मित्र को मानसिक रूप से अपने सामने खड़ा करते हैं और तब उसे संबोधित करते हुए अपनी बात कहते हैं। यह एक विशेष प्रकार का संप्रेषण है। आइये हम एक-एक करके इस विधा की बारीकियों को समझने का प्रयास करें।

8.3.1 लिखित संप्रेषण

पत्र लिखित संप्रेषण का माध्यम है। यह साक्षर व्यक्तियों के संप्रेषण का माध्यम है। निरक्षर व्यक्ति पत्र व्यवहार नहीं कर सकते। पत्र लिखने वाला और पाने वाला दोनों एक ही समान भाषा के जानकार होने चाहिए। यदि मुझे फ्रेंच नहीं आती तो कोई व्यक्ति फ्रेंच में पत्र लिखकर मुझसे संवाद नहीं कर सकता। दोनों के पत्र-व्यवहार की भाषा एक ही होनी चाहिए। फिर, पत्र दूरस्थ व्यक्तियों के संप्रेषण का माध्यम है। यदि कोई व्यक्ति आपके सामने बैठा है तो आप मौखिक रूप से उससे बातचीत कर सकते हैं लेकिन मौखिक बातचीत की सीमा से बाहर रहने वाले व्यक्ति से संवाद स्थापित करने के लिए हमें पत्र की आवश्यकता पड़ती है। ज्यों ही हम लिखित माध्यम को चुनते हैं, संवाद में एक विशेष प्रकार की औपचारिकता आ जाती है। लिखित और मौखिक संप्रेषण के अंतर का अध्ययन आप पिछले सेमेस्टर में कर चुके हैं। यह अवश्य होता है कि दो समानधर्मा मित्र अपने पत्र-व्यवहार में

भरसक इस औपचारिकता को कम करने की कोशिश करते हैं। मुक्तिबोध ने भी ऐसा किया है। इसमें मुक्तिबोध काफी हद तक सफल भी हुए हैं। तब भी, लिखित शब्द की अपनी मर्यादा होती है और यह मर्यादा पत्र-व्यवहार को पूर्णतः अनौपचारिक नहीं होने देती।

सामान्यतः लेखन की किसी भी विधा में लेखक महत्वपूर्ण होता है। वह अपने अनुभव, अपनी सोच, अपना चिंतन व्यक्त करता है। उस लेखन को पढ़ने वाला पाठक अदृश्य होता है, अनिश्चित होता है। पत्रों में प्राप्तकर्ता वास्तविक व्यक्ति होता है। आप एक विशेष व्यक्ति को संबोधित करते हैं। यह विशेष व्यक्ति आपके पत्र में 'कथ्य' को प्रभावित करता है, यहाँ तक कि वह उस 'कथ्य' को निश्चित करता है। मुक्तिबोध यदि नेमिचंद्र जैन को पत्र न लिखकर अज्ञेय या रामविलास शर्मा को लिखते, तो पत्र का मजमून ही बदल जाता।

8.3.2 निजता

पत्र में दो व्यक्ति परस्पर संवाद की स्थिति में होते हैं। ये व्यक्ति आपस में साझा अनुभव के साक्षी होते हैं। उनके जीवन के कुछ बिंदु, कुछ समस्याएं समान होती हैं और वे उस आधार से परस्पर पत्र-व्यवहार करते हैं। यदि उनमें कुछ भी एक समान न हो, तो उनमें किसी भी प्रकार के संप्रेषण की संभावना नहीं होती और तब उनमें किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार भी नहीं होता। इसके साथ ही वे किसी सार्वजनिक अनुभव का आदान-प्रदान भी नहीं करते। पत्रों से सार्वजनिक जीवन का जिक्र हो सकता है, परंतु उसकी सार्वजनिक व्याख्या नहीं होती। उस सार्वजनिक जीवन के प्रति लेखक की निजी राय क्या है यह वह पत्र में प्रकट कर सकता है और प्राप्तकर्ता से उम्मीद करता है वह या तो उसकी पुष्टि करे या खंडन करे।

यदि आप मुक्तिबोध के पत्रों को देखें तो इनमें कई बातें नेमिचंद्र जैन और मुक्तिबोध में समान हैं। उदाहरण के लिए दोनों लेखक हैं, कविताएं लिखते हैं और एक ही तरह के सृजन कर्म से जुड़े होने के कारण उनकी वैचारिक दृष्टि में भी काफी बिंदु समान हैं।

पत्र इकतरफा संप्रेषण नहीं होता। पत्र-व्यवहार में साझा सर्जनशीलता अभिव्यक्त होती है। एक व्यक्ति पत्र लिखता है दूसरा व्यक्ति पढ़ता है। वह उस पत्र को पढ़कर पत्र लिखने बैठ जाता है और इस तरह यह क्रम चलता रहता है। जाहिर है कि इसमें लेखक पाठक और पाठक लेखक बन जाता है। दोनों इस दोहरी भूमिका में आ जाते हैं। उनकी यह बदली हुई भूमिका किसी अन्य गद्य विधा में नहीं होती। कविता, कहानी या नाटक हो या संस्मरण, रिपोर्ताज या आत्मकथा सभी में लेखक, लेखक ही रहता है और पाठक, पाठक ही रहता है। पाठक कभी भी लेखक नहीं बनता।

8.3.3 आत्माभिव्यक्ति

पत्र में लेखक किसी विशेष विषय का वर्णन नहीं करता। वह आत्माभिव्यक्ति करता है। वह एक से अधिक तथ्यों पर अपनी मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करता जाता है। लिखने के दौरान जो भाव तरंगें, उठीं, मन में जो विचार आया, उन्हें वह उसी रूप में व्यक्त करता जाता है। किसी गंभीर तात्विक विषय का उल्लेख भी लेखक बड़े सामान्य और सहज ढंग से कर देता है। यहां लेखक का चिंतन महत्वपूर्ण होता है। जाहिर है कि इसमें स्फुट चिंतन व्यक्त होता है, विस्तार से व्याख्या नहीं होती चिंतन की पूर्णता नहीं होती, निष्कर्ष भी नहीं होता। अनेक बातों को लेखक छोड़ देता है। केवल प्रासंगिक बातों पर प्रकाश डालकर वह पत्र बंद कर देता है। कुछ बातें वह अगले पत्र के लिए शेष रख लेता है। कुछ बातें वह प्रत्युत्तर मिलने के बाद लिखता है।

किसी पत्र में लेखक भूमिका नहीं लिखता। वह सीधे मूल बात से पत्र की शुरूआत करता है। उसे मालूम है कि पत्र को पाने वाला व्यक्ति कौन है? वह कितना जानकार है? उसे सब बात समझाने की ज़रूरत नहीं है। वह संदर्भ से आगे पीछे की बातें समझ सकता है। उनके बीच यह कोई पहला पत्र नहीं है। कई पत्र आ-जा चुके हैं। कुछ बातें आमने-सामने घटित हो चुकी हैं। दोनों को पता है। इसलिए संक्षेप में काम चल सकता है। गंभीर से गंभीर बात को भी लेखक तुरंत लिखकर आगे बढ़ता है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पत्र में बात आगे बढ़ती है। कथ्य का विकास होता है। कथ्य का विकास लेखक-पाठक के जीवन के विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है। सामाजिक-वैयक्तिक जीवन का प्रत्येक परिवर्तन पत्रों में अभिव्यक्ति पाता है। किसी लेखक के संपूर्ण पत्र-व्यवहार में अभिव्यक्ति कौशल के इस विकास को देख सकते हैं।

8.3.4 तात्कालिकता

पत्र पढ़ने वाला व्यक्ति दूर होता है। वहाँ तक पत्र पहुँचने में समय लगता है। जब तक पाने वाले व्यक्ति के पास पत्र पहुँचे, तब तक लिखने वाले व्यक्ति का मन बदल सकता है। वह भूल भी सकता है। जवाब देने वाला यह मानकर चलता है कि आपकी बातें तो आपको याद हैं। आपके सामने पत्र है। इसलिए वह उसी पर अपनी प्रतिक्रिया लिख देता है। दोनों तरफ से जो अभिव्यक्त होता है, वह उन दोनों की तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है। घटना की प्रतिक्रिया पहला व्यक्ति करता है, पाने वाला उसकी प्रतिक्रिया पर प्रतिक्रिया करता है। इसमें गलतफहमी की गुंजाइश हो सकती है। तात्कालिक प्रतिक्रिया प्रकट करने के बाद भी चिंतन चलता है। हम उस तात्कालिक मानसिकता से उबर सकते हैं। उस आवेग को स्थगित कर सकते हैं। लिखा हुआ अक्षर तो बदल नहीं सकता, परंतु लिखने वाला स्वयं बदल सकता है। इसलिए अगला पत्र कभी-कभी पिछले पत्र को निरस्त भी कर सकता है। कभी-कभी बात आगे बढ़ती है और फिर टूट जाती है। टूटी हुई बात फिर कभी जुड़ सकती है। यह तात्कालिकता की सीमा है।

इन कारणों से पत्रों में हुई बातों को लेखक का निष्कर्ष नहीं मान सकते। डायरी की भाँति पत्रों में व्यक्त किये गये विचार भी लेखक के प्रतिनिधि विचार नहीं माने जा सकते। ये उसकी तात्कालिक प्रतिक्रियाएं हैं, तथा इन्हें इसी रूप में समझना चाहिए।

8.3.5 सहजता

सहजता पत्र का आवश्यक गुण है। सहज संप्रेषण पत्र की सफलता का आधार है। इसीलिए पत्र की भाषा-शैली भी सहज होती है। ध्यान रहे, यहाँ हम साहित्यिक पत्रों की बात कर रहे हैं। पत्रों में लेखक को हमेशा इस बात का ध्यान रखना होता है कि उसकी भावनाओं, विचारों और दृष्टिकोण को सही ढंग से पत्र प्राप्तकर्ता समझ ले। पत्र लिखते समय लेखक भाषा और शिल्प की कलात्मकता के प्रति सचेत नहीं रहता। पत्र में भाषागत कलात्मकता तथा सौंदर्य भी लेखक की सहज अभिव्यक्ति का हिस्सा बनकर ही आता है। आगे जब आप मुक्तिबोध का पत्र पढ़ेंगे तब यह बात और स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।

8.4 पत्र और अन्य गद्य विधाएँ

जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं कि पत्र व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति है। इसमें लेखक का आत्मसाक्ष्य निहित होता है। इसमें लेखक अपने मन को खोल कर रख देता है। पत्र में निजता के साथ आत्मीयता भी होती है।

आत्मकथा, डायरी, संस्मरण और यात्रा-वृत्तांत, पत्र-साहित्य से मिलती जुलती गद्य विधाएँ हैं। इन सब गद्य विधाओं में लेखक अपनी बात कहता है। आत्म-प्रकाशन इन गद्य विधाओं का गुण है। आत्म-प्रकाशन की समानता के बावजूद पत्र का अलग शिल्प है। इसका स्वरूप भी अलग है। पत्र ही एकमात्र ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें लेखक और पाठक एक भूमि पर खड़े होते हैं। इसमें लेखक और पाठक की भूमिका बदलती रहती है। इसी तरह पत्र-लेखन का सिलसिला जारी रहता है।

8.4.1 पत्र और आत्मकथा

पत्र और आत्मकथा एक-दूसरे के समीप होते हुए भी गद्य की स्वतंत्र विधाएँ हैं। दोनों में समानता यह है कि दोनों विधाओं में लेखक अपने बारे में खुलकर लिखता है। परंतु पत्र में जहाँ तात्कालिकता होती है वहीं आत्मकथा व्यक्ति के जिये हुए जीवन का ब्यौरा होता है। आत्मकथा व्यक्ति के निजी जीवन का लगातार प्रस्तुत किया गया विवरण है। पत्र में जीवन का एक क्षण प्रस्तुत होता है। एक समय में पत्र लेखक जो सोचता है वह लिख देता है। अतः आत्मकथा के समान पत्र में व्यवस्था भी नहीं होती। आत्मकथा में सब कुछ सहेजा-संवारा होता है जबकि पत्र में थोड़ी 'अव्यवस्था' होती है। लेखक कभी एक बात लिखता है तो कभी दूसरी बात। मुक्तिबोध के जिन दो पत्रों को हमने बतौर पाठ संकलित किया है, उन्हें ध्यान से पढ़ें तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

8.4.2 पत्र और संस्मरण

यह सही है, कि पत्र और संस्मरण, दोनों विधाओं में दो व्यक्तियों के साझा अनुभवों का वर्णन होता है। फर्क सिर्फ यह है कि संस्मरण में इन दो से अलग कोई तीसरा व्यक्ति पाठक होता है। इसमें लेखक > विषय (अन्य व्यक्ति) > पाठक यह क्रम रहता है। पत्र में लेखक > पाठक, पाठक > लेखक बस ये दो ही बिंदु होते हैं। ये दोनों ही अपने आपसी अनुभवों को संप्रेषित करते रहते हैं।

संस्मरण में बीते हुए अनुभवों का बयान होता है, जबकि पत्र लेखन तात्कालिक अनुभवों की तात्कालिक प्रतिक्रिया है। पत्र लेखन में भी बीते हुए अनुभवों का उपयोग हो सकता है। लेकिन यह उसकी मुख्य विषय-वस्तु नहीं होती। मुख्य विषय-वस्तु वर्तमान होती है। लेखक उसी पर टिप्पणी करता है। संस्मरण में अतीत प्रमुख विषय होता है। उनसे सुखी या दुःखी हुआ जा सकता है। उनमें अब कोई परिवर्तन संभव नहीं है। वे अनुभव अपनी अंतिम परिणति तक पहुँच चुके हैं। जबकि पत्र लेखन में वर्णित कथ्य में बाद में फेरबदल किया जा सकता है। पत्र लेखन के द्वारा घटनाओं-परिस्थितियों को बदला जा सकता है। उन्हें नई दिशा दी जा सकती है। अतः पत्र में वर्तमान प्रमुख होता है और संस्मरण में अतीत।

8.4.3 पत्र और डायरी

शिल्प की दृष्टि से पत्र निराली विधा है। इसका किसी अन्य विधा से कोई मेल नहीं है। तब भी, कुछ बातों में पत्र और डायरी में समानताएं भी हैं। उदाहरणार्थ दोनों तात्कालिक लेखन है। एक पत्र कई दिनों तक नहीं लिखा जाता। आम तौर से एक पत्र एक ही बैठक में लिख लिया जाता है। इसी तरह डायरी का लेखन भी उसी दिन हो जाता है। वैसे यह निश्चित तो नहीं है, तब भी सामान्यतः डायरी दिन बीत जाने के बाद लिखी जाती है, जबकि पत्र लेखन का कोई निश्चित समय नहीं होता। जब भी आपको पत्र मिला या मन में इच्छा जागी, आप पत्र लिखने बैठ गये। यह अवश्य है कि पत्र लेखन एक बैठक का कार्य है। डायरी का लेखक स्वयं ही पाठक होता है, जबकि पत्र का एक अन्य व्यक्ति पाठक होता है। यह अन्य

व्यक्ति पत्र की विषय-वस्तु को प्रभावित करता है। पत्र की भाषा को संयमित और मर्यादित करता है। डायरी जहाँ न कहे गये अनुभवों को व्यक्त करती है, वहाँ पत्र दोनों व्यक्तियों के साझा अनुभवों को प्रकट करता है। इसमें भी सार्वजनिक अनुभवों की अभिव्यक्ति नहीं होती। पत्र में गोपनीय सूचना हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है। यह अवश्य है कि उस सूचना का संबंध दोनों व्यक्तियों से होता है। यदि पाठक (पत्र प्राप्तकर्ता) गणित या भौतिकी का जानकार नहीं है, तो उसे पत्र में इन विषयों की बारीकियां समझाना मूर्खता है। आप डायरी में अपने लिये ऐसी बारीकियाँ चाहें, तो लिख सकते हैं। पत्र में प्राप्तकर्ता के अनुभवों की सीमा का भी ध्यान रखना पड़ता है।

बोध प्रश्न 1

1) औपचारिक पत्र और अनौपचारिक पत्र के बीच क्या अंतर है? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

2) सामान्य पत्र और साहित्यिक पत्र में क्या अंतर होता है ? (सही विकल्प पर √ का निशान लगाइए)

क) सामान्य पत्र में और साहित्यिक पत्र में कोई अंतर नहीं होता है। ( )

ख) सामान्य पत्र में केवल सूचनाएँ होती हैं जबकि साहित्यिक पत्र में साहित्य और जीवन के प्रति लेखक का अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है। ( )

ग) सामान्य पत्र में लेखक का निजी जीवन अभिव्यक्त होता है जबकि साहित्यिक पत्र में ऐसा नहीं होता। ( )

घ) सामान्य पत्र में लेखक सहज होता है, साहित्यिक पत्र में वह सहज नहीं रहता। ( )

3) पत्र विधा की विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए। (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) पत्र विधा से मिलती जुलती गद्य विधाओं का उल्लेख कीजिए। (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

5) डायरी और पत्र में क्या समानता है? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

8.5 मुक्तिबोध के पत्रों का पठन

सरस्वती प्रेस,

बनारस कैंट

26.10.45

प्रिय नेमि बाबू,

आपका पत्र नहीं। समय का अभाव नित्य से अधिक ही होगा। पर, याद आपकी आती रहती है। आजकल धूप बहुत अच्छी खिलती है और **मन तैर–तैर उठता** है, और आपकी याद भी इसी सुनहले रास्ते से उतर आया करती है।

गो मैं यह सोचता हूँ कि यह सब गलत है। दिन के बँधे हुए कार्य को अधिक बाँधकर करने के पक्ष में रहते हुए भी कामचोरी से दिली मुहब्बत टूट नहीं पाती। मैं मानता हूँ कि कर्त्तव्य ही सब कुछ है। पर उसके न करने का उत्तरदायित्व मानो मैं अपने ऊपर नहीं लेना चाहता। क्या जरूरी है कि कर्त्तव्य किया ही जाय और उस समय आने वाली आपकी याद को बाहर ही खड़ा रख मन के दरवाज़े को बंद कर दिया जाय। कर्त्तव्य के फलसफे की बात ज्यादा समझ में नहीं आती।

इसी कर्त्तव्य ने तो लोगों को पंगु कर दिया है, उनके **हृदय के पंख** तोड़कर उसे अधिक सामान्य बना दिया है। **सरदी की पारदर्शिनी, हल्की–हल्की चोटें करने वाली यह धूप और उसका ऊष्ण स्पर्श मानो मुझे जगा देता है।** मन दैनिक नींद से जाग उठता है। वृक्षों के पत्र-संभार पर फलकर उनके गाढ़े हरियाले अंतराल में छाया-प्रकाश उत्पन्न करने वाली यह धूप मन में सपने जगा देती है। कोई विलास-स्वप्न नहीं वरन् विजय-स्वप्न। जिन्हें देख लें पुराने मकान की जीर्ण मुंडेर पर बैठकर दूसरे के आँगन में ताकने वाले लोग - कर्त्तव्य के पुराने मुहल्ले के बाशिंदे।

सचमुच अब सारे कर्त्तव्य से आजादी चाहता हूँ। चाहता हूँ मात्र कार्य, अपने अनुकूल। यह नहीं कि Petit-bourgeois कर्त्तव्य चलते ही चले जायँ और मैं उसमें फँसता हुआ ही चला जाऊँ।

अब मैं जिंदगी के प्रति उदास नहीं हूँ। पहले उसकी शिकायत थी। अब तो उससे तकाजा है, माँग है।

रोज लिखने की सोचता हूँ। लिखता भी हूँ, पर बहुत थोड़ा। आप विश्वास नहीं करेंगे, एक कविता को दुरुस्त करने के लिए छह घंटे लगते हैं। मैंने कई सुधार भी दी हैं। कई तो सुधारने की प्रक्रिया में परिवर्तित हो गयी हैं। पता नहीं कब तक मैं कविताओं को यों सुधारता बैठूँगा। आपसे बड़ी-बड़ी शिकायतें हैं। पर अभी इस समय नहीं। बाहर बहुत नरम धूप खिली है और इस समय सोचने का कोई उत्साह नहीं। यदि आप यहाँ होते तो आपको पकड़कर मैं रेस्तराँ में ले जाता और काम की और अपनी ऐसी-तैसी करता।

यह बतलाइए कि आपने इधर कुछ लिखा? लेकिन फुरसत तो आपको भी नहीं मिलती होगी, जो भी आपका समय खूब मजे में कट जाता होगा।

वाकई अब बनारस छोड़ने की इच्छा हो रही है। दो दिन के लिए ही सही। कुछ जरूरी मालूम होता है। मैंने भी शादी क्या कर ली, अपने को धोखा दे दिया, आजादी का मुहताज हो गया। और अब शक्ति होते हुए भी शक्तिहीन और सामर्थ्यहीन मालूम होता हूँ, खुद को ही बेवकूफ-सा लगने लगता हूँ। घर-गिरस्ती भी एक बला है। सचमुच उज्जैन में मैं काफी आजाद था **(जो भी यहाँ सुखी अधिक हूँ)** ईश्वर करे कोई लेखक अब शादी न करे, और करे तो घर-गिरस्ती के चक्कर से खुदा उसे मुआफ रखे। घर-गिरस्ती भी एक बला है, जिसके दो सींग हैं, जो गधे के होते हैं। बाल-बच्चेदार आदमी सोलह आना गधा होता है। इसमें शक नहीं।

दुनिया के करोड़ों गधों में से मैं भी एक हो गया हूँ, लेकिन अभी नया हूँ। दुलत्तियाँ झाड़ देता हूँ। और अभी पूरे तौर से गधे का फलसफा - उसका बौना आदर्शवाद - आत्मसात् नहीं कर सका हूँ। पर इससे तकलीफ तो होती ही है।

डॉक्टर साहब के क्या हाल हैं? उनसे भेंट होती है? मैं उन्हें अभी तक लिख नहीं सका। वे नाराज तो होंगे ही।

मेरे कविता-संग्रह की भूमिका के बारे में क्या सोचा? आप क्यों नहीं लिख देते? अब तक बड़े-बड़े लोग ही लिखा करते हैं, अब यह बात भी सही। उत्तर जल्दी दीजिए। पुस्तक के नाम-वाम के चक्कर में नहीं पड़ता। कुछ तो भी रख दूंगा। पर छायावादी नाम नहीं रक्खूँगा।

मेहनत करूँ तो लेखन से पैसे मिल सकते हैं। इसमें संदेह नहीं। पर साहित्यिक श्रम जितना अधिक आवश्यक है उतना ही अभाव है समय का। दुनिया के सारे कार्यों से निवृत्त हो, थकी हुई पीठ और बोझिल मस्तिष्क ले, टिम-टिमाते कंदील के धुंधले प्रकाश में कलम चलने तो लगती है पर खुद को कोसती हुई। इस मेहनत को देखते हुए, मुझे हर कविता के पाँच रुपये प्रकाशक से charge करना चाहिए।

पर अब साहित्यिक श्रम मुझे करने ही पड़ेंगे। हिंदी सुधारने की कोशिश शुरू हो गयी है। छोटी-सी phrase, कोई चुस्त **जबान–बंदी** झट नोट कर लिया करता हूँ, बिल्कुल शॉ के **लेडी ऑफ दि डार्क** के शेक्सपियर की भाँति।

इसके पहले, मैं हिंदी के साहित्यिक प्रयासों के सिवाय, कभी भी लिखा नहीं करता था। मेरे अत्यंत आत्मीय विचार मराठी या अंग्रेजी में निकलते थे, जिसका तर्जुमा, यदि अवसर हो, तो हिंदी में हो जाता था। इसीलिए जानबूझकर यह पत्र हिंदी में लिख रहा हूँ। मेरा ख्याल है कि मेरी भाषा सुंदर न भी हो सके वह सशक्त होकर रहेगी, क्योंकि उसके पीछे अंदर का जोर रहेगा। बतलाइए, क्या मेरा सोचना गलत है। इसके बारे में आप जरूर लिखिए। मुझे साज-सँवार की प्रतिष्ठित बोली पसंद नहीं। चाहता हूँ कि इसके विषय में आप मत-प्रदान करें। क्या मैं अपनी हिंदी सुधार सकता हूँ? उसे सक्षम, सप्राण और अर्थ-दीप्त कर सकता हूँ

पत्र आप लम्बा लिखें, देखिए, मैं आपके बारे में कुछ भी नहीं जान रहा हूँ, और अभी साल कटना है जिसके बाद आप मुझे मिलेंगे। यह भी लिखें कि पत्र की भाषा कैसी है। और... ... और ..... सब लिखें। मेरे लिए किसी भी तरह से दो घंटे निकाल लें, शीघ्र ही।

शांता स्कूल जाया करती है। शायद मैं उसे अब अधिक प्यार करता हूँ। कुछ, आप ही आप अंदर से तब्दीली हो गयी है। मुझमें और उसमें भी। परंतु, मेरी आँखों के सामने घर-गिरस्ती को देखकर काले सपने आया करते हैं। मैं वजन सम्हाल नहीं पाया, और हर महीने की बीस तारीख के बाद दिवालियापन सताता रहता है - क्रूद्ध प्रेत-सा। और अब सरदी आ गयी है।

बबन साहब ने स्कूल छोड़ दिया है, और वह वकालत करने लगे हैं। दादा (हमारे पिता) के पत्र नित्य आते रहते हैं। बड़े ही विह्वल पत्र। सचमुच वात्सल्य भी आपत्ति है। ईश्वर करे, मुझे न सताये यह रोग। बेरूखी सबसे अच्छी। श्रीपत रायजी जयपुर गए हुए हैं, उन्तीस तक वापस आ जायेंगे। अज्ञेयजी को एक पत्र लिखा था अर्थहीन nonsensical पत्र। जिसका उत्तर था कि मैं कलकत्ते पर जाने-वाली ट्रेन पर उन्हें मिलूँ। मिला था। देख भर लिया। बातचीत होती ही क्या!

श्रीमती रेखाबाई की क्या स्थिति है? और आगे का कार्यक्रम क्या? क्या ही विवेक-बाह्य (irrational) तृषा है कि जिन-जिन लोगों से आपको लगाव है उन्हें मैं भी जानूँ-पहचानूँ और निकट आऊँ। यही कारण है कि भारत भूषणजी के प्रति नित्य से अधिक उत्सुक रहता हूँ।

आजकल कुछ उर्दू कविताएँ मन में ठहर गयी हैं। उसके कुछ शेर .....

फ़क़ीराना आये सदा कर चले
मियाँ, खुश रहो हम दुआ कर चले
व' क्या चीज़ से दिल उठाकर चले
हरयक चीज़ से दिल उठाकर चले
कोई **नाउम्मेदाना** करके निगाह
सो तुम हमसे मुँह भी छिपाकर चले
दिखाई दिये यूँ कि **बेखुद** किया
हमें आपसे भी जुदा कर चले
जबीं सिजदे करते ही करते गयी

हक़बंदगी हम अदा कर चले
परस्तिश की याँ तक कि ऐ बुत तुझे
नजर में सभों की खुदा कर चले
गयी **उम्र दर** बंद **फ़िक्रेग़ज़ल**
सो इस **फ़न** को ऐसा बड़ा कर चले
कहें क्या जो पूछे कोई हमसे 'मीर'
जहाँ में तुम आये थे क्या कर चले।

हक़ेबन्दगी अदा करते हुए,
आपका सस्नेह
ग.मा.मु.

हमारा दफ्तर
30.10.45
प्रिय नेमि बाबू,

सहसा आपकी याद आ रही है, **मीठी बयार के औचक जगाने वाले झोंके-सी**। जैसे जाग उठा हूँ अपनी समस्त चेतना लेकर। समस्त चेतना अपने **अंतर्विश्व*** की। मन के वे ज्ञान के और प्रेम के झिल-मिलाते स्वप्न, हृदय की अनुभूतियों के विकास के स्रोत क्षण-भर के लिए जग उठे हैं। अभी क्षण भर के बाद ही वे सो जायेंगे और धुंधली जिंदगी का मटमैला स्पर्श उन्हें सुला देगा कि सहसा आपका ख्याल आ गया।

याद है, आपकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। आपने एक व्यक्ति के साथ नाजुक खेल खेला है। उसे कम्यूनिस्ट बनाया, **दुर्धर्ष*** घृणा के **उत्ताप*** से पीड़ित और उसकी स्त्री के प्रति उसका रुख पलटा। अधिक सहनशील भावनामय उसे बनाया। यह काम बहुत बड़ा ही नहीं, नाजुक भी है।

और इन क्षणों में, जीवन के विचित्र तर्क-प्रवाह के द्वारा, आज, जबकि क्षणभर के लिए ही सही, मैं जाग्रत हो उठा हूँ तो सहसा यह वाक्य निकल आता है - Lo, there is born a man with a disturbed soul – disturbed with the highest desires of age and the greatest weaknesses of his times*. हाँ, मैं अपने को यही समझता हूँ। इस विशाल व्यक्तिवाद की विशालतम tragedy को शब्द-बद्ध कर सकूँ तो मेरा जीवन-कार्य समाप्त हो जाएगा। क्योंकि न सिर्फ मैं अपनी राह को खोजता हूँ बल्कि वह भी मुझे खोजती है, और इसी में सारी उलझन की बदमाशी है।

दैनिक जीवन के पूर्ण रूप से आबद्ध कार्यक्रम में आदर्शवाद की बू तक नहीं रहती। कहीं मन का विस्तार नहीं हो पाता। और सहसा like a flash* याद आ गया कि विवाहित जीवन का आदर्शवाद मनुष्य की समस्त चेतना को सुलाने का काम करता है। इस आदर्शवाद के विरुद्ध मैं तर्क के द्वारा बग़ावत नहीं कर पाता, परंतु मैं सोचता हूं कि मन के सारे अधूरेपन, व्यक्तित्व के सारे बौनेपन की जड़ यहीं है। जिंदगी के एंजिन के लिए लोहे की पटरी यानी विवाहित जीवन। दिन-भर अधिक प्रयास का frustration* और रात में बे-आराम, सपनों में टूटती-जुड़ती जिंदगी। अब बतलाइए, मनुष्य का वास्वतिक सामर्थ्य और उसकी शक्ति -

जिसकी कमी मैं अपने अंदर कभी नहीं अनुभव करता हूँ, मात्र सो जाती है। शरीर और मन दोनों को चैन कहाँ?

फिर अध्ययन और लेखन की वह चिंतनशील मादकता और राजनीति का वह उत्साह जैसे काफूर हो जाता है। मन में एक द्वंद्व होने लगता है - पारिवारिक Loyalty और आंतरिक विकास-बुद्धि में। इन दोनों में मानो सामंजस्य होने वाला ही नहीं। और मैं अपने से, जिंदगी से और इस विश्व से नाराज हो उठता हूँ।

किंतु आज सहसा मैं अपनी जगह आ गया था, क्षणभर के लिए ही सही, मैं अपने से चेतन हो उठा। मेरी ज्ञान-तृषा*, सौंदर्य-भक्ति तथा मुक्त हृदय-दान तथा **स्वानुकूल* कर्मण्य-शक्ति*** का मानो मुझे, क्षण-भर के लिए ही सही, बोध हो गया जिसकी आग अभी-अभी राख हो जायेगी। जिस जिंदगी को जीने का मुझे आदेश मिला है, वह कुछ दूसरी ही थी। यह नहीं। परंतु, फिर भी, यही चाहता हूँ कि मैं इस दलदल को भी पार कर जाऊँ। सचमुच मुझे जिंदगी की **तब्दीली** की बहुत बड़ी जरूरत है।

फिर भी नैराश्य के गीत लिखना मैंने बंद-सा कर दिया है। और जो भी चमकीले गीत मैंने इधर लिखे हैं उनमें मात्र **क्षोभ*** और **उत्ताप** की **अग्नि-लताएँ*** हैं। इन नये गीतों से भी मैं नाराज हूँ, और आधुनिकतावाद के गीतों में भरी हुई सर्दी की ठिठुरन से तो अब ऊब उठा हूँ।

परंतु आज की वास्तविक परिस्थिति के आदर्शवाद को सही समझते हुए भी बार-बार लगता है कि जब तक मैं अपने को पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं कर लेता, और अपना तन-मन-धन एकाग्र नहीं कर लेता तब तक जिंदगी गधे की चाल में चलती रहेगी। रहेगी न?

आपका पत्र न आना एक विपत्ति ही है। फुरसत का अभाव तो हम-आपको है ही। परंतु कभी-कभी जब मन बहक जाय, मुझे याद कर लिया करना। जैसा कि मैं आपको कर लिया करता हूँ।

देखिए, मैं न मालूम क्या-क्या कह गया और मुझे डर लगने लगा है कि कहीं आपको मैं सता न बैठूँ। पता नहीं क्यों, पर आपसे संकोच जरूर होता है। जैसे सारी बातें कह जाऊँ तो आपके मन पर प्रतिकूल परिणाम हो। कभी-कभी अविवेकपूर्ण तर्क उठने लगते हैं आपके बारे में। लगता है कि जैसे आप खुलते ही बंद हो जाते हैं। जैसे कि हम एक-दूसरे से झेंपते हैं, खिंचे चले आते हैं, पर दूर भागने की तैयारी करके, अवचेतन रूप से निस्संदेह। पता नहीं क्या बात है! पर अंदर की **उष्ण मदिर धारा*** एक दफा फिर खुल जरूर जाती है और मन के सारे पाप गलकर धुल जाते हैं। इससे अधिक और क्या कोई चाह सकता है।

श्रीपतराय जी की बातचीत से पता चला - मैंने सूँघा - कि आप मेरे बारे में उत्सुक - यदि कहूँ चिंतित तो ठीक होगा - रहते हैं। पर क्या याद है आपको कि आपने कोई विस्तृत चिट्ठी नहीं भेजी है?

साँझ हो रही है। पुराने मकानों की वीरान छतों और उड़े रंगों की दीवारों से ढलती हुई। घर की मीठी सुगंध यहाँ तक आ-सी रही है। और चाहता हूँ कि पैर चलने लगे।

मेरा पत्र अब संपूर्ण हुआ चाहता है आधी बात ओठों में दबाकर। और पूरी बात 'फिर कभी' के लिए रखें। इसके पहले कि प्रणाम करूँ -

याद आती है तुम्हारी तैरती सी,
राह से जिस

कभी कोई आ नहीं सकता
न माता, पुत्र या पत्नी, पिता।

मेरी बेसब्र* बेकाबू जिंदगी जब किसी की जरूरतमंद हो उठती है तो पहले वह आपको जरूर याद कर लिया करती है, ध्यान न देते हुए, मात्र अवचेतन रूप से।

कहते हैं जो कहता है वह करता नहीं है, यानी ये बातें कहने की नहीं। पर मन है कि कर बैठता है, जिंदगी है कि जी बैठती है। श्री रेखा बाई को प्रणाम।

बस अभी इतना ही।
सस्नेह आपका
ग.मा.मु.

8.6 मुक्तिबोध के पत्रों का सार

आपने मुक्तिबोध के इन पत्रों को ध्यान से पढ़ा होगा। ये पत्र हिंदी के प्रसिद्ध कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने अपने साथी कवि और आलोचक नेमिचंद्र जैन को लिखे थे। मुक्तिबोध ने ये पत्र क्रमशः 26 अक्टूबर, 1945 और 30 अक्टूबर, 1945 को बनारस से लिखे थे। पत्र उन्होंने सरस्वती प्रेस के कार्यालय में बैठे-बैठे लिखे थे।

पत्र में मुक्तिबोध ने कोई भूमिका नहीं बनायी। शुरुआत में नेमिचंद्र जैन द्वारा पत्र न भेजने की शिकायत करते हुए मुक्तिबोध ने उनके प्रति अपने अपनत्व भाव को प्रदर्शित किया। एक चिंतनशील व्यक्ति की तरह मुक्तिबोध ने प्रेम और कर्त्तव्य के द्वंद्व को सामने रखा और स्पष्ट किया कि कर्त्तव्य ही सब कुछ नहीं है। यहाँ तक कि उसकी अधिकता से मनुष्य का हृदय संकुचित हो जाता है। इसलिए कर्त्तव्य के भार से कभी-कभी मुक्त हो जाना चाहिए। मुक्तिबोध ऐसी मुक्ति की कामना करते हैं। फिर अपने लेखन के बारे में सूचना देते हैं कि कविताओं को सुधारने में उनका बहुत सारा समय निकल जाता है। फिर थोड़ा-सा उपालम्भ देकर मुक्तिबोध नेमि बाबू के लिए अपनत्व भाव को प्रकट कर देते हैं।

वे पत्र में बनारस छोड़ने की इच्छा प्रकट करते हैं ताकि कार्य की एकरसता से मुक्ति मिले। उन्होंने अपने निजी जीवन की पीड़ा को भी अभिव्यक्त किया है, जब उन्होंने लिख दिया कि 'शादी' और 'घर गहस्थी' का जंजाल उन्हें कितना कष्टकर लग रहा है। जिस 'घर-गृहस्थी' को अधिकतर लोग अपने जीवन का आदर्श मानते हैं, वहाँ मक्तिबोध मानते हैं कि इसके कारण आदमी 'सोलह-आना गधा हो जाता है'। अपने स्वयं की मानसिकता पर भी टिप्पणी करते हुए मानो हँसते हैं कि अभी इस 'फलसफा' को पूरा न मानने के कारण बीच-बीच में मैं विद्रोह कर बैठता हूँ।

अपने कविता न लिखने, या कविता लेखन में की गयी मेहनत का वर्णन करते हुए मुक्तिबोध अपने कविता-संग्रह की भूमिका लिखने का अनुरोध भी कर देते हैं। फिर अपने घर-परिवार की जानकारी देते हुए एक उर्दू कविता को उद्धृत कर पत्र को समाप्त कर देते हैं।

अगला पत्र फिर नेमि बाबू की याद में लिखा गया है। नेमिचन्द्र जैन ने मुक्तिबोध के जीवन में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसे दोहराते हुए उन्होंने लिखाः

> ''याद है, आपकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। आपने एक व्यक्ति के साथ नाजुक खेल खेला है। उसे कम्युनिस्ट बनाया, दुर्धर्ष घृणा के उत्ताप से पीड़ित उसकी स्त्री के प्रति उसका रुख पलटा। अधिक सहनशील भावनामय उसे बनाया।''

यह आभार प्रकट करने के बाद मुक्तिबोध फिर चिंतन के क्षेत्र में चले गये और 'विवाहित जीवन के आदर्शवाद' के विरुद्ध तर्क देने लगे। इसके कारण मनुष्य की सर्जनात्मक कल्पना क्षीण हो जाती है। इस चिंतन को वे अपने जीवन की पीड़ा का निष्कर्ष मानते हैं और प्रयास करते हैं कि इससे मुक्त होकर जीवन जी सकें। फिर नेमिबाबू की आ रही याद, उनके पत्र न मिलने की शिकायत और अपने दुख-दर्द को प्रकट करके वे अपना यह लम्बा-पत्र समाप्त कर देते हैं।

8.7 मुक्तिबोध के पत्रों का विश्लेषण

इन पत्रों को पढ़कर आपने महसूस किया होगा कि मुक्तिबोध ने ये पत्र अपने अत्यंत आत्मीय और विश्वसनीय मित्र को लिखे हैं। ऐसा मित्र, जिसके सामने अपने मन की वास्तविक भावनाओं और जीवन के छोटे-मोटे दुख-दर्द को आसानी से अभिव्यक्त किया जा सकता है। लेखक के मन में ऐसा विश्वास है कि इन पत्रों के माध्यम से कोई गलतफहमी नहीं होगी, पाठक (पत्र प्राप्तकर्ता नेमिबाबू) लेखक (मुक्तिबोध) को कभी अपमानित नहीं करेंगे, उसे हेय दृष्टि से नहीं देखेंगे, बाद में इन्हीं बातों के कारण व्यंग्य नहीं करेंगे। लेखक को यह विश्वास है कि पाठक (नेमिबाबू) उनसे अधिक समझदार हैं। वे उन्हें कुछ रास्ता दिखा सकेंगे। पहले भी उन्होंने ही रास्ता दिखाया है। यह विश्वास और आश्वस्ति इन लम्बे पत्रों में झलकती है।

8.7.1 कथ्य

पत्रों में आमतौर से कोई भूमिका नहीं होती। उसके लेखन की यह विशेषता होती है कि उसका आरंभ ही 'मूल बात' से होता है। इसके अलावा एक पत्र में कई बातें एक साथ होती हैं। ऐसा नहीं होता कि एक पत्र में केवल एक ही तरह की बातें लिखी जायें। अनेक परस्पर असम्बद्ध बातें एक ही पत्र में आ सकती हैं। कभी देश दुनिया की चिंता, कभी अपने लेखन की समस्याएं और कभी पारिवारिक सुख-दुःख - सभी कुछ एक साथ एक पत्र में शामिल हो सकता है। आपने देखा होगा कि इन पत्रों में भी कई तरह की बातें एक साथ आ गयी हैं। एक से दूसरी बात पर लेखक आराम से चला जाता है और जब मन करता है, वापिस पहले वाली बात पर आ जाता है। पुनरावृत्ति आ रही हो, तो भी पत्र लेखक को कोई चिंता नहीं होती।

जब लेखक अपने चिंतन के निष्कर्षों को निबंध या लेख में औपचारिक रूप से लिखता है तो उसमें एक तारतम्य होता है। जिस समय मस्तिष्क में ऐसे विचार पनप रहे होते हैं, उस समय डायरी, पत्र आदि अनौपचारिक गद्य-विधाओं में ये विचार अपरिष्कृत एवं मौलिक रूप में अभिव्यक्ति पा सकते हैं। मुक्तिबोध के चिंतन के कुछ बिंदु सूत्र रूप में इन पत्रों में भी प्रकट हुए हैं। वे मध्यवर्गीय 'पारिवारिक आदर्शवाद' की आलोचना करते हैं।

पत्र में लेखक अपने निष्कर्ष नहीं देता। वह एक तर्क देता है, अनुभव का एक अंश प्रस्तुत करता है। फिर उसकी पुष्टि या खंडन चाहता है, ताकि उसी के अनुरूप अपने चिंतन को सुस्पष्ट कर सके या उसे व्यवस्थित कर सके। इसलिए उसमें चिंतन के कुछ कण आ जाते हैं। हालांकि दार्शनिक चिंतन को प्रकट करने के लिए पत्र उपयुक्त विधा नहीं है। पत्र में तो निजी सुख-दुख की अभिव्यक्ति होती है, जो कि इन पत्रों में भी हुई है।

आपने यह भी देखा होगा कि मुक्तिबोध ने इन पत्रों में 'तथ्य' बहुत कम लिखे हैं - अधिकतर अपनी भावनाओं और चिंतन को प्रकट किया है। आत्माभिव्यक्ति की बैचेनी आपको इन पत्रों में दिखी होगी, जोकि साहित्यिक पत्रों की अपनी विशेषता है।

8.7.2 भाषा-शिल्प

मुक्तिबोध के इन पत्रों की भाषा पर आपने गौर किया? क्या लगा आपको ? यही न कि मुक्तिबोध ने बड़े उन्मुक्त ढंग से पत्र लिखा है। कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों की परवाह नहीं की है। पहले पत्र की पहली ही पंक्ति पढ़िए -- 'आपका पत्र नहीं।' पत्र लेखन में लेखक अक्सर वाक्यों को अधूरा छोड़ देते हैं। पत्र-लेखक और पाठक के बीच इतनी अच्छी समझ होती है कि वह संदर्भ से ही अधूरे वाक्य का अर्थ समझ लेता है।

पत्र लिखते समय मुक्तिबोध कभी कविता तो कभी कहानी की शैली अपना लेते हैं। कभी निबंध का स्वरूप भी सामने आता है। बीच-बीच में संवाद भी आते हैं। यानी कहानी, कविता, निबंध, नाटक सब इसमें एक साथ घुले-मिले हैं। 'मैं' शैली तो पत्र की अहम विशेषता है।

मुक्तिबोध ने अंग्रेजी, संस्कृत (तत्सम), उर्दू शब्दों का इस्तेमाल किया है। कुछ पारिभाषिक शब्द भी हैं। इस प्रकार मुक्तिबोध ने इन पत्रों के जरिए अपना संपूर्ण व्यक्तित्व उड़ेल कर रख दिया है। मन की मौज न केवल पत्र के कथ्य में मौजूद है बल्कि भाषा भी उसी प्रवाह में लिखी गई है। पत्र की भाषा की जिस 'सहजता' की बात हमने की थी वह 'सहजता' मुक्तिबोध के पत्रों में मौजूद है। कहीं भाषा अस्त-व्यस्त नजर आती है, तो कहीं भाषा का सधा रूप सामने आया है। यही पत्र लेखन की विशेषता है।

बोध प्रश्न 2

1) मुक्तिबोध ने यह पत्र किस मौसम में लिखा है? जिन पंक्तियों में मौसम का उल्लेख है उन्हें यहाँ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मुक्तिबोध अपनी तुलना गधे से क्यों करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) मुक्तिबोध अपनी हिंदी सुधारने के लिए क्या करते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

4) मुक्तिबोध ने अपने पत्र में किन-किन साहित्यकारों का नामोल्लेख किया है?

.....

.....

.....

.....

.....

5) आपका पत्र न आना एक विपत्ति है' लेखक ऐसा क्यों कहता है?

.....

.....

.....

.....

.....

6) लेखन ने किस कवि का शेर उद्धृत किया है।

.....

.....

.....

.....

.....

8.8 सारांश

इस इकाई में आपने साहित्यिक विधा के रूप में पत्र की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ श्री नेमिचन्द्र जैन के नाम लिखे मुक्तिबोध के पत्रों का वाचन और विश्लेषण भी किया। अब आप यह समझ और जान चुके हैं कि पत्र लिखित संप्रेषण है। निजता, आत्माभिव्यक्ति तात्कालिकता और सहजता इसके गुण हैं। मुक्तिबोध के दोनों पत्रों में पत्र के गुण मौजूद हैं। आत्मकथा, संस्मरण, डायरी आदि पत्र से मिलती-जुलती गद्य विधाएँ हैं जिसमें लेखक अपने को खुल कर निस्संकोच भाव से व्यक्त करता है। परंतु पत्र ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसमें लेखक किसी खास पाठक के लिए पत्र लिखता है और जब उसे पत्र का उत्तर मिलता है तो वह भी पाठक बन जाता है। इस प्रकार पत्र में लेखक पाठक बन जाता है पाठक लेखक बन जाता है। यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है।

पत्र अत्यंत निजी अभिव्यक्ति है। परंतु जब कोई बड़ा साहित्यकार, मनीषी, कलाकार, राजनीतिक नेता किसी को पत्र लिखता है तो उसमें साहित्य, कला, राजनीति और पूरे समाज और जीवन से जुड़े बड़े सरोकार झलकते हैं। यही सरोकार पत्र को 'निजपन' के दायरे से बाहर निकालते हैं और वह पत्र मामूली पत्र न रहकर साहित्य का हिस्सा बन जाता है। मुक्तिबोध के पत्रों को पढ़कर आपने महसूस किया होगा कि इसमें केवल लेखक के सुख-दुख की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि इसमें कवि-साहित्य, कर्त्तव्य, जीवन आदि अनेक प्रश्नों से जूझता नजर आता है। यही बड़े प्रश्न इन पत्रों को 'साहित्यिक' बनाते हैं। इनकी शैली भी 'साहित्यिक' है। कभी कविता आती है तो कभी लेखक कहानी सुनाने के मूड में

आ जाता है। कभी दार्शनिक अंदाज अपना लेता है तो कभी हास्य विनोद का सहारा लेता है। कुल मिलाकर इन दोनों पत्रों में साहित्यिक लालित्य है जिसका आस्वादन आपने किया होगा।

8.9 शब्दावली

अंतर्विश्व	:	मन या हृदय की दुनिया
अग्नि लताएँ	:	आग की लपट
उत्ताप	:	दुःख, क्लेश
उष्ण मदिर धारा	:	गरम मदभरा प्रवाह
कर्मण्य शक्ति	:	सक्रियता, कार्यनिष्ठा,
क्षोभ	:	व्याकुलता, रोष
ज़बान बंदी	:	लिखा हुआ वक्तव्य
जबीं	:	माथा
जीर्ण	:	पुराना, जर्जर, ढहता हुआ
ज्ञान-तृशा	:	ज्ञान की तीव्र इच्छा
दर	:	दरवाजा
दुर्धर्ष	:	जिसे हराया न जा सके
ना उम्मेदाना	:	निराशा
पत्र-संभार	:	पत्रों का समूह
परस्तिश	:	पूजा
फकीराना	:	फकीरों की तरह
फन	:	गुण, कला
फिंक्रे गजल	:	गजल की चिंता
बुत	:	मूर्ति
बेखुद	:	जो अपने आप में न हो
बेसब्र	:	असंतोष
सिजदे	:	प्रणाम, नमस्कार
स्वानुकूल	:	अपने अनुकूल
हकेबंदगी	:	अधिकार के साथ वेदना
Charge	:	मूल्य, दाम
Frustration	:	निराशा, क्षोभ
Irrational	:	असंगत
Lady of the dark	:	बर्नाड शॉ का नाटक 'द लेडी ऑफ द सानेट्स'
Like a flah	:	चमक की तरह

'Lo, ... his time	:	देखो, एक ऐसा आदमी भी है जिसकी आत्मा बेचैन है। वह अपने युग की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा और अपने समय की सबसे बड़ी कमजोरी से त्रस्त है।
Nonsensical	:	बेहूदा
Petit-bourgeois	:	निम्न मध्य वर्ग
Tragedy	:	त्रासदी, विपत्ति

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) औपचारिक पत्रों में तथ्यों का संप्रेषण होता है। इसका एक निश्चित विधान होता है। अनौपचारिक पत्र में लेखक अपनी निजी मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। औपचारिक पत्र में व्यक्ति का निजी व्यक्तित्व महत्वपूर्ण नहीं होता। अनौपचारिक पत्र में निजता का विशेष महत्व होता है। (देखिए भाग 8.2)

2) ख

3) (क) लिखित संप्रेषण (ख) निजता (ग) आत्माभिव्यक्ति (घ) तात्कालिकता (ङ) सहजता (देखिए भाग 8.3)

4) आत्मकथा, संस्मरण, डायरी (देखिए 8.4)

5) डायरी और पत्र के जरिए लेखक अपने मन की बातें सामने रखता है। दोनों तात्कालिक लेखन है। दोनों एक बैठक में लिखे जाते हैं। (देखिए 8.4.3)

बोध प्रश्न 2

1) जाड़े का मौसम; पहले पत्र का तीसरा पैरा ध्यान दे पढ़िए।

2) मुक्तिबोध घर-गृहस्थी, विवाह, दुनियादारी को बोझ मानते हैं। उन्हें ये बलाएं लगती हैं। उनका मानना है कि विवाह करते ही आदमी शक्तिहीन, सामर्थ्यहीन और बेवकूफ हो जाता है। इसीलिए वे लिखते हैं ''घर-गिरस्ती भी एक बला है, जिसके दो सींग हैं, जो गधे के होते हैं। बाल-बच्चेदार आदमी सोलह आना गधा होता है।''

3) हिंदी सुधारने के लिए मुक्तिबोध हिंदी के मुहावरे, कहावतें, लिखा हुआ वक्तव्य आदि नोट कर लेते हैं। वे अपनी हिंदी भाषा को सुंदर बनाने का सायास प्रयत्न करते हैं। वे अपनी हिंदी भाषा को कृत्रिम नहीं बल्कि सहज बनाना चाहते हैं।

4) बर्नाड शॉ, अज्ञेय, भूषण जी (भारत भूषण अग्रवाल), श्रीपतराय

5) इस पंक्ति से मुक्तिबोध की नेमिचन्द्र जैन के प्रति आत्मीयता और लगाव का पता चलता है। पत्र शून्यता को भरने, मन को सुकून पहुँचाने, अपनों के पास पहुँचने का जीवंत माध्यम है। मुक्तिबोध के पत्र में नेमि जी के प्रति उनका स्नेह, लगाव और आत्मीयता कूट-कूट कर भरी हुई है। यह पंक्ति इसी आत्मीयता का प्रकाशन है।

6) यह मीर की गजल है। अंतिम दो पंक्तियाँ देखें। मीर ने अपना नामोल्लेख किया है। उर्दू शायरी में इसे मकता कहते हैं। इस कविता को उद्धृत कर मुक्तिबोध ने नेमि जी के प्रति अपनी आत्मीयता जताई है।

इकाई 9 रिपोर्ताज (एकलव्य के नोट्स)

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 रिपोर्ताज लेखन की विशेषताएँ

- 9.2.1 कथात्मक प्रस्तुति
- 9.2.2 ऐतिहासिकता
- 9.2.3 चित्रात्मकता
- 9.2.4 विश्वसनीयता
- 9.2.5 शैली

9.3 रिपोर्ताज लेखन में रेणु की भूमिका

9.4 रिपोर्ताज 'एकलव्य के नोट्स' का पठन

9.5 'एकलव्य के नोट्स' का विश्लेषण

- 9.5.1 प्रतिपाद्य
- 9.5.2 भाषा-शैली

9.6 सारांश

9.7 शब्दावली

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- यह जान सकेंगे कि रिपोर्ताज किसे कहते हैं;
- इसमें रिपोर्ताज की प्रमुख विशेषताओं के बारे में चर्चा कर सकेंगे;
- हिंदी में लिखे गए रिपोर्ताजों का संक्षिप्त परिचय दे सकेंगे और
- उदाहरणों से इस रिपोर्ताज का रसास्वादन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

'रिपोर्ताज' एक विदेशी शब्द है जिसे फ्रेंच भाषा से हिंदी में ले लिया गया है। किसी घटना को अपनी मानसिक छवि में ढालते हुए उसे प्रस्तुत कर देना या मूर्त रूप देना ही दरअसल रिपोर्ताज की प्रमुख विशेषता है। इस प्रकार किसी रिपोर्ट का कलात्मक और साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज है। घटना को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर देना तो सिर्फ रपट है। लेकिन उसी घटना को जब कोई पत्रकार या साहित्यकार अपनी भावना में रंगकर बिंबधर्मी भाषा के माध्यम से जीवंत बनाकर प्रस्तुत करता है तब उसे रिपोर्ताज कहते हैं। इस तरह रिपोर्ताज में कला और संवेदना की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। रिपोर्ताज लिखने के लिए लेखक का अनुभव सिद्ध होना जरूरी है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखक के लिए घटना का प्रत्यक्षदर्शी होना आवश्यक है। घर में बैठकर कल्पना के सहारे किसी घटना को प्रस्तुत कर

देना रिपोर्ताज नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसमें लेखक की प्रत्यक्ष अनुभूति ही कलात्मकता का आश्रय लेकर व्यक्ति-मन पर अपनी छाप छोड़ सकती है।

अचानक घटित होने वाली घटनाओं के साथ अर्थात् यूरोप के युद्ध क्षेत्र में इस विधा का जन्म हुआ। सन् 1936 के आस-पास इसका प्रादुर्भाव माना जाता है। इलिया एहरेनबर्ग के साथ-साथ अमेरिका के पैसोस, फ्रांस के आन्द्रे मैलरीज और इंग्लैंड के क्रिस्टोफर रिपोर्ताज लेखन के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। रूस की समाजवादी क्रांति पर जॉन रीड ने 'टेन डेज दैट शुक द वर्ल्ड' नाम से एक महत्वपूर्ण रिपोर्ताज लिखा है।

हिंदी मे रिपोर्ताज लेखन की शुरुआत 1940 के आस-पास हुई। तब से लेकर आज तक इसका तेजी से विकास हुआ है। रांगेय राघव, प्रकाश चन्द्र गुप्त, अमृत राय, प्रभाकर माचवे, फणीश्वर नाथ रेणु, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि ने महत्वपूर्ण एवं सशक्त रिपोर्ताज लिखे हैं। वे लड़ेंगे हजार साल (शिव सागर मिश्र), युद्ध यात्रा (धर्मवीर भारती), जुलूस रुका है (विवेकी राय), ऋणजल धनजल, नेपाली क्रांति कथा, श्रुत अश्रुत पूर्व (रेणु) आदि विशेष रूप से चर्चित रिपोर्ताज हैं। शिव सागर मिश्र के रिपोर्ताज 1965 में भारत-पाकिस्तान की लड़ाई पर आधारित हैं। धर्मवीर भारती ने सितंबर 1971 में मुक्तिवाहिनी के साथ बांग्लादेश की गुप्त यात्रा की थी। भारतीय सेना के साथ वे भारत-पाक युद्ध के मोर्चे पर भी गए थे। रेणु का नेपाली क्रांति से गहरा संबंध रहा है। विवेकी राय ने आजादी के बाद बदलते हुए गाँव को नजदीक से देखने की कोशिश की है।

रिपोर्ताज मुख्यतः रोमांचक, आतंककारी या भीषण घटना, युद्ध, अकाल, बाढ़, सूखा आदि पर आधारित होते हैं इसलिए वे निरंतर नहीं लिखे जाते। इससे मिलती-जुलती एक दूसरी विधा है फ़ीचर। फ़ीचर कभी भी किसी वस्तु या समय में लिखा जा सकता है अर्थात् किसी भी व्यक्ति, स्थिति या घटना को आधार बनाया जा सकता है। रिपोर्ताज और फ़ीचर दोनों का जन्म पत्रकारिता की कोख से हुआ है। रिपोर्ताज आज अपने कलात्मक रूप में हमारे सामने है। अब उसे शैली के रूप में उपन्यासों, संस्मरणों और आत्मकथाओं में प्रयुक्त किया जाने लगा है। फ़ीचर की दुनिया अभी उतनी विकसित नहीं हुई है और मुख्यतः पत्र-पत्रिकाओं तक ही सीमित है, जबकि रिपोर्ताज की स्वतंत्र पहचान एक गद्य विधा के रूप में बन चुकी है। रिपोर्ताज से मेल खाती एक विधा है रेखाचित्र जहाँ लेखक अपने मन पर पड़े प्रभावों को पाठकों पर कम से कम लादता है। रेखाचित्र और रिपोर्ताज में अंतर को स्पष्ट करते हुए भगीरथ मिश्र ने लिखा है कि 'रिपोर्ताज किसी स्थान या घटना का यथार्थ, सजीव, मर्मस्पर्शी और संवेदना को उभारने वाला वर्णन होता है। इसमें घटना या दृश्य प्रधान रहता है चरित्र या व्यक्ति नहीं। परंतु शब्द चित्र में प्रधान चरित्र और व्यक्ति रहता है, घटना आदि पृष्ठभूमि के लिए ग्रहण की जाती है। यथार्थता की विश्वसनीयता, वैयक्तिक संपर्क की सजीवता और ऊष्मा तथा शैली की मर्मस्पर्शिता शब्द चित्र को लोक हृदय के संस्कार करने का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम सिद्ध करती हैं। इसका कारण यह होता है कि हम अपने अनुभव से टकराए हुए व्यक्तियों को इसके बहाने अपने समक्ष प्रस्तुत पाते हैं।'

रेखाचित्र लेखक की अपेक्षा रिपोर्ताज लेखक को अधिक तटस्थ तथा मानसिक रूप से अधिक जागरूक रहकर काम करना पड़ता है। रेखाचित्र में कल्पना तथा कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए गुंजाइश अधिक होती है, अतः उसमें रागात्मकता का गुण स्वाभाविक रूप से आ जाता है। रेखाचित्र से ही मिलती-जुलती विधा है संस्मरण। इसमें व्यक्ति जीवन के वे पहलू, संदर्भ और चारित्रिक विशेषताएँ अंकित की जाती हैं जो स्मरणकर्ता को याद रह जाती हैं। स्मरण वही रह जाता है जो आमतौर से विशिष्ट, विचित्र या प्रिय होता है। संस्मरण में विषय के साथ लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। इसलिए इसमें लेखक तटस्थ नहीं रह पाता। बनारसीदास चतुर्वेदी के अनुसार 'संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित्र

इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है इसका निर्णय करना कठिन है।' जिंदगी की बिखरी हुई जानी-अनजानी स्थितियों को सजीव करने की क्षमता रेखाचित्रों में अधिक है। संस्मरणों का संबंध मुख्यतः अतीत की स्मृतियों से है तो रेखाचित्र प्रायः वर्तमान को मूर्तरूप देते दिखाई पड़ते हैं। यथार्थ जीवन की धड़कन को रेखाचित्र में सही ढंग से पकड़ा जा सकता है। रिपोर्ताज का संबंध भी रेखाचित्र की भाँति वर्तमान से ही होता है। इसलिए यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति की यहाँ भी पूरी गुंजाइश होती है।

'एकलव्य के नोटस' सोद्देश्य रचना है और रेणु के रिपोर्ताजों में इसका अग्रणी स्थान है। वैसे तो यह 'परती परिकथा' के लिए लिखा गया नोट्स है जिसमें गाँव की समाजशास्त्रीय स्थिति का सूक्ष्म ब्यौरा पेश किया गया है। आजादी के बाद गाँवों में किस तरह के बदलाव आ रहे हैं? वे कितने सार्थक हैं? संबंधों के स्तर पर गाँव किस स्थिति में पहुँच गए हैं? और उसकी आत्मा किस तरह तिल-तिलकर मर रही है? ऐसे अनेक बिंदुओं और प्रश्नों को लेखक ने इस रिपोर्ताज में रेखांकित करने का प्रयास किया है। गाँव के विद्यालय की खस्ता हालत को समूचे ग्रामीण समाज की ढहती-चरमराती स्थिति के रूप में समझा जा सकता है। जातिवाद, दलबंदी, भ्रष्ट राजनीति, पंचायती राज की ध्वस्त होती अवधारणा, सामाजिक-आर्थिक विषमता, सवर्ण-दलित संबंधों के नए आयाम, दलित उभार, उनमें आत्म सम्मान की भावना का पैदा होना और जातिगत संघर्ष इस रिपोर्ताज में बहुत ही आत्मीय एवं निरपेक्ष ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं। मानवीय संबंधों में इतने व्यापक पैमाने पर हो रहे बदलावों को इस छोटे से रिपोर्ताज में प्रभावशाली ढंग से कह दिया गया है। संपूर्ण राजनीतिक-आर्थिक परिवर्तनों के संदर्भ में मानवीय संबंधों की सच्चाई दिखाना ही इस रिपोर्ताज का मुख्य उद्देश्य है। संबंधों में इतना बदलाव, कि बेटा अपने बाप पर विश्वास करने के लिए तैयार न हो, आश्चर्य में डालने वाला है। लेकिन यह सच है। इसमें दलित समुदाय की आंतरिक पीड़ा को सहानुभूतिपूर्वक व्यक्त किया गया है।

9.2 रिपोर्ताज लेखन की विशेषताएँ

9.2.1 कथात्मक प्रस्तुति

रिपोर्ताज में एक या उससे अधिक घटनाओं का चित्रण होता है। घटनाओं को कथात्मक रूप में प्रस्तुत करना इस विधा की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। रिपोर्ताज में कोई न कोई कहानी अवश्य होती है। रिपोर्ताज को मर्मस्पर्शी बनाने में कथातत्व का योगदान महत्वपूर्ण होता है। ध्यान देने की बात यह है कि इसमें वर्णित कहानी वास्तविक तो होती है लेकिन वह न तो किसी समस्या को उठाती है और न ही कोई समाधान प्रस्तुत करती है। बल्कि वह एक ऐसा चित्र प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा पाठक जीवन में चेतना भरने वाले मानवीय मूल्यों के संबंध में विचार करने लगता है।

9.2.2 ऐतिहासिकता

घटनाओं की प्रस्तुति द्वारा अपने युग के इतिहास को प्रस्तुत करने के कारण रिपोर्ताज का ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। इसमें किसी घटना के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आयामों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। रिपोर्ताज में वर्णित घटना स्वयं लेखक द्वारा देखी गई होती है इसलिए वह उस घटना के सभी पहलुओं से अच्छी तरह अवगत होता है। लेखक घटनाचक्र में फँसे व्यक्ति की वीरता, साहस और संकल्प की ऐसी तस्वीर प्रस्तुत करता है कि पाठक की संवेदना जाग उठती है। ऐसी घटना विशेष का संपूर्ण

इतिहास रिपोर्ताज में निहित होता है, इसीलिए उसे अपने युग का जीवंत कलात्मक इतिहास माना जाता है।

9.2.3 चित्रात्मकता

चित्रात्मकता रिपोर्ताज की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी विशेषता के कारण रिपोर्ताज रेखाचित्र के निकट खड़ा हो जाता है। प्रभावपूर्ण चित्रों के रूप में छोटी-छोटी घटनाएँ आकार ग्रहण करती हैं और पाठक के मन में चित्र अंकित कर देती हैं। इस तरह समूची घटना चित्रपट की भाँति आँखों के सामने घूमने लगती है। भाव और संवेदना चित्रात्मकता को और अधिक सजीव एवं प्रभावशाली बना देते हैं।

9.2.4 विश्वसनीयता

घटनाओं का लेखक से साक्षात्कार होने के कारण रिपोर्ताज में विश्वसनीयता अधिक होती है। इसे प्रसंग-चित्र भी कहते हैं। किसी घटना, युद्ध, भूचाल अथवा मनोरंजक वृत्तांत का रिपोर्ताज तैयार करते समय लेखक का अपना दृष्टिकोण प्रधान रहता है। एक साधारण समाचार को कलात्मक रूप देने से रिपोर्ताज की सृष्टि होती है, यह बहुत ही रोचक तथ्य है। इसमें एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पाठक को रचना (रिपोर्ताज) से वह संतुष्टि या आनंद मिलना चाहिए जिसे घटना को देखते समय लेखक ने खुद महसूस किया हो। ऐसी अनुभूति रिपोर्ताज को विश्वसनीय बनाती है। कहना न होगा कि लेखक की सहृदयता रिपोर्ताज को विश्वसनीय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

9.2.5 शैली

घटना की तत्कालीन प्रतिक्रिया के रूप में लिखे जाने के कारण रिपोर्ताज की शैली सामान्यतः भावावेश प्रधान होती है। इसके अलावा रिपोर्ताज निबंध शैली अथवा पत्र एवं डायरी शैलियों में भी लिखे जाते हैं। यह लेखक पर निर्भर करता है। जिस शैली में वह अपने को समर्थ रूप में अभिव्यक्त कर पाता है, उसी को वह अपना लेता है। असली चीज़ है घटना की प्रामाणिक और आत्मीय अभिव्यक्ति। इसके आकार की कोई सीमा नहीं होती। यह गद्यगीत की तरह छोटा भी हो सकता है और कहानी-उपन्यास की तरह बड़ा भी। लेखक की संवेदना का प्रसार ही इसकी सीमा का निर्धारण करता है। रिपोर्ताज में आत्मकथा की भाँति व्यक्ति के जीवन-संघर्ष की भावनात्मक प्रस्तुति नहीं मिलती। यह एक बहिर्मुखी विधा है जो वाह्य घटना पर आधारित होती है। इसकी सफलता परिस्थिति के सूक्ष्म अध्ययन एवं लेखकीय तल्लीनता में निहित रहती है।

बोध प्रश्न 1

1) ये रिपोर्ताज की प्रमुख विशेषताएँ हैं, इनकी संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
   क) कथात्मक प्रस्तुति
   ख) ऐतिहासिकता
   ग) चित्रात्मकता
   घ) विश्वसनीयता
2) निम्नलिखित वाक्यों को पूरा करें।
   क) रिपोर्ताज शब्द ..... से हिंदी में लिया गया है।

ख) रिपोर्ताज में ..... की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

ग) हिंदी में रिपोर्ताज लेखन की शुरुआत ..... के आस-पास हुई।

घ) रिपोर्ताज मुख्यतः ..... आदि पर आधारित होते हैं।

9.3 रिपोर्ताज लेखन में रेणु की भूमिका

द्वितीय विश्व युद्ध के मलबे से रिपोर्ताज की उत्पत्ति मानते हुए भारत यायावर ने रेणु को हिंदी का पहला और सबसे बड़ा रिपोर्ताज लेखक माना है। लेकिन यह सच नहीं है। रेणु के पहले भी हिंदी में रिपोर्ताज लिखने वाले मौजूद थे। यह बात अलग है कि रेणु ने इस विधा को और ज्यादा समृद्ध किया। उन्होंने पहला रिपोर्ताज 'डायन कोसी' सन् 1947 में लिखा जो रामवृक्ष बेनीपुरी के संपादन में निकलने वाले साप्ताहिक 'जनता' में प्रकाशित हुआ और बाद में कई भाषाओं में अनूदित भी हुआ। उसके बाद उन्होंने जै गंगा, पुरानी कहानी : नया पाठ, एकटु आस्ते-आस्ते जैसे रिपोर्ताज लिखे। इस प्रकार उनके रिपोर्ताज लेखन की शुरुआत 1947 में हुई और 1965 से 1975 के बीच का समय उनके रिपोर्ताज लेखन का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। 1965 में अज्ञेय के संपादन में शुरू होने वाले 'दिनमान' में रेणु को बिहार का प्रतिनिधि बनाया गया। रेणु ने इस माध्यम का भरपूर उपयोग किया और समाज की उथल-पुथल या कि बदलावों को अपने रिपोर्ताजों में बहुत खूबी के साथ उभारा। हड़ताल, चुनाव, ग्रामदान, तस्करी, जिस्म फरोशी, अकाल और भूख पर रेणु ने जबर्दस्त रिपोर्ताज लिखे हैं। रेणु के रिपोर्ताज की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उसमें बिहार की राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना पूरी तरह उपस्थित हो गई है। राजनीतिक नेताओं की पतनशीलता को रेणु ने बहुत गहराई से उभारा है। रेणु का रिपोर्ताज लेखन उनकी पत्रकारिता का एक प्रमुख हिस्सा था और तब यह कहना बेहद जरूरी हो जाता है कि पत्रकारिता रेणु के लिए मानवीय प्रवृत्तियों और उसकी संवेदना को संचित और उजागर करने का एक माध्यम थी। वे पत्रकारिता को जनपक्षधरता से जोड़कर देखते थे। इसलिए उनके रिपोर्ताजों में पाठक को बेचैन करने की ताकत है। रेणु ने अपने सारे रिपोर्ताज पत्र-पत्रिकाओं के लिए ही लिखे। उनके जितने रिपोर्ताज शायद ही अन्य किसी लेखक ने लिखे हों। 'ऋणजल धनजल', 'नेपाली क्रांति कथा', 'एकांकी के दृश्य' और 'श्रुत-अश्रुत पूर्व' में उनके अधिकांश रेखाचित्र संग्रहीत हैं।

राजनीति और पत्रकारिता से रेणु का संबंध शुरू से ही रहा है। उन्होंने न केवल 'नई दिशा नया कदम' का संपादन किया, बल्कि दो वर्षों तक 'दिनमान' के बिहार प्रतिनिधि भी रहे। पत्रकारिता ने उनको रिपोर्ताज लिखने का मौका दिया और एक अलग तेवर भी। रेणु अपने रिपोर्ताजों में पठनीयता, रुचि और नवीनता के साथ कौतूहल का भी विशेष ध्यान रखते थे। शायद इसीलिए उनके रिपोर्ताज सहज ही लोगों का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं।

रेणु उन बातों को रिपोर्ताज में प्रायः जगह नहीं देते थे जिसके बारे में लोग पहले से ही बहुत ज्यादा जानते होते थे। उन्होंने रिपोर्ताज को इतिहास, समाज और राजनीति का दस्तावेज बना दिया। 'मन बंजर धरती को देखकर दुखी हो जाता है।' किसानों के जीवन-संघर्ष को रेणु इन शब्दों में रेखांकित करते हैं:

> 'खेतों में काम करने वालों के हाथ रुके नहीं। एक आदमी हमारे पास आया, हाथ की मिट्टी झाड़ता हुआ। हमें देखकर मुस्कराया। फिर पूछा, 'क्या देखने आए हो? यह सूखा? ऐसा कभी नहीं हुआ, लेकिन, हम लोग लड़ रहे हैं। थोड़ा-सा पानी पड़ा है और बाकी कूप-कुआँ से, जहाँ तक हो सके आदमी रहते तो हिम्मत नहीं हारेगा।'

भारतीय किसान में विकट जिजीविषा और सहनशीलता पाई जाती है। विकट परिस्थितियों में भी वह धीरज के साथ रह लेता है। ऐसे किसान से रेणु पूरी सहानुभूति रखते हैं। वे एक पत्रकार के रूप में सांप्रदायिक शक्तियों को बेनकाब करने से नहीं हिचकते। 'यह सही है कि राज्य सरकार बाढ़ से लेकर भूख तक की समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ रही लेकिन शांतिपूर्ण आंदोलन को आक्रामक रूप देने में किसी भयानक सुनियोजित षड्यंत्र की ही पुष्टि होती है। जाँच से भी ऐसे ही तथ्य सामने आए हैं कि इसके पीछे पाक परस्तों और वामपंथियों का ही हाथ रहा है।' इस बात की तनिक चिंता किए बगैर, कि लोग उन्हें प्रतिक्रियावादी कह सकते हैं, उन्होंने लिखा है कि - 'अन्य प्रदेशों की तरह बिहार में भी किसी जमाने के कट्टर लीगी खद्दरधारी कांग्रेसियों के रूप में विद्यमान हैं। वे राष्ट्र का हित सोचकर राष्ट्रवादी मुसलमानों को भी बहकाने और बरगलाने की कोशिश चोरी छिपे करते हैं।' तत्कालीन इतिहास के महत्वपूर्ण क्षणों को रेणु ने बहुत सफलतापूर्वक बाँधने की कोशिश की है। वे निश्चय ही अपने समय और समाज की नब्ज को पहचानते थे इसीलिए वे कभी-कभी इतिहास के रचयिता भी लगते हैं।

रेणु अपने रिपोर्ताजों में किसी सीमा को नहीं स्वीकारते। जंगल, पहाड़, नदी, घाटी, मैदान, निर्धनता, बेकारी, भूख, बीमारी, शोषण, दासता, बाढ़, अकाल, दलित हत्याएँ, भूमि, संघर्ष, महँगाई और जड़ता जैसे अनेक तत्व इनके रिपोर्ताजों के फलक को विस्तार देते हैं। रेणु के रिपोर्ताज मात्र परिदृश्य नहीं हैं, अपनी संरचना में औपचारिक नहीं हैं और इनकी सुंदरता में रचनात्मक स्तर पर कोई कौशल नहीं है। बल्कि इनके यहाँ लोक तत्व की प्रधानता है अर्थात् रेणु लोक जीवन में सौंदर्य की खोज करते हैं और वहीं से वे रस ग्रहण करते हैं। वे मनुष्य को उसकी वास्तविक सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थितियों के बीच रखकर देखते हैं। यहीं से वे विषय का चुनाव करते हैं। कहना न होगा कि रेणु ने अपने रिपोर्ताजों में इतने जीवन-प्रसंगों, संदर्भों, साहित्य और लोक तत्वों को समेटा है कि उनकी ये रचनाएँ अपने आप जीवंत, सार्थक और पठनीय हो जाती हैं। उनमें वर्णित प्रसंग कहीं भी फालतू या निरर्थक नहीं लगते बल्कि उनमें एक नयी अर्थवत्ता और कलात्मकता झलकती है। इस तरह उनके यहाँ सब कुछ अर्थवान और प्रासंगिक लगता है।

रेणु अपने रिपोर्ताजों में इतने विषयों को शामिल करते हैं कि उसमें नये-नये आयाम जुड़ जाते हैं। बोधगया में मंदिर और बोधि का दर्शन करते हुए उन्हें अपनी गौरवमयी प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा की याद बरबस आ जाती है - 'मंदिर के प्रांगण मे घूमते हुए मुझे रह-रह कर रिपुंजय, बिंबिसार, अजातशत्रु, शिशुनाग, महापद्म नंद, चन्द्रगुप्त, अशोक, शून्य-पुराण और कम्युनिस्ट मेनिफेस्टों की याद आई। राहुल जी, भदंत और नागार्जुन की याद आई।'

9.4 रिपोर्ताज 'एकलव्य के नोट्स' का पठन

ग्राम - परानपुर
पोस्ट ऑफिस - एजन
थाना - फारबिसगंज
जिला - पूर्णिया, बिहार
काल - सितंबर, 54

जिले का एक बड़ा गाँव । विभिन्न जातियों के तेरह टोले हैं। मुसलमान टोली छोटी है, पचास घर रह गए हैं। आबादी सात-आठ हजार करीब।

पढ़े-लिखे लोग आठ ग्रेजुएट, एक एम.ए. (पागल होने के पहले ही पास किया था), पचास मैट्रिक्युलेट, एक सौ मिडिल पास। डेढ़ दर्जन कवि, करीब दो दर्जन कथाकार, दो साहित्यालंकार और एक नाटककार। पिछले साल एक हरिजन ने बी.ए. पास किया है, सबसे पहले। लड़कियाँ भी पढ़ी लिखी हैं। जिले की एकमात्र साप्ताहिक पत्रिका में एक कुमारी कवयित्री की रचनाएँ हमेशा छपती हैं। यह और बात है कि लोग तरह-तरह की बातें करते हैं उनकी रचनाओं के संबंध में।

विद्यालय - एक उच्चांग्ल है (H-E School, Estd- 1929)। वह था तो मिडिल स्कूल, उच्चांग्ल तो हाल में ही हुआ है (उन्नीस सौ चौंतीस में)। व्यंग्य करते समय कहते हैं - उच्चांग्ल, यों एच.ई. स्कूल ही कहलाता है। स्कूल के लिए पैसे जिस वृद्ध दाता ने दिए थे, उसके लड़कों ने अपने पिता के नाम पर स्कूल के नामकरण का विरोध किया था, इसलिए वृद्ध दाता की जाति के नाम पर स्कूल की नामकरण क्रिया हुई थी - ब्राह्मण एच.ई. स्कूल। ..... गत तीन वर्षों से कोई हेडमास्टर दो महीने से ज्यादा नहीं टिक पाते। ..... जाति और पंचायत, गाँव की दलबंदी के ऊपर चढ़े करेले की भुजिया स्कूल कमेटी की कड़ाही में भूँजी जाती है न .....इसीलिए.....! स्कूल की अवस्था शोचनीय कही जाती है।

पुस्तकालय - स्थापना 1930, 1944 से सरकारी सहायता मिलती है। पाँच साल पहले रेडियो भी दिया गया - राज्य सरकार की ओर से। आजकल बंद है। पुस्तकालय के सदस्यों का कथन है, 'छित्तन बाबू के बड़े भाई साहब ने ही पुस्तकालय के लिए अपने बँगले की एक कोठरी दी थी।' चार महीना पहले की बात है, छित्तन बाबू ने साफ लफ्जों में कह दिया - 'यहाँ लाइब्रेरी कहाँ है? खबरदार! यदि सीढ़ी पर किसी ने पैर रखा तो फौजदारी हो जाएगी।..... ट्रैसपासिंग का मुकदमा कैसा होता है। किसी वकील से जाकर पूछो।' ..... 'छित्तन बाबू बड़ा अन्यायी है, सार्वजनिक पुस्तकालय को इस तरह हथिया लेना छोटी बात नहीं।..... निंदा का प्रस्ताव पास होना चाहिए।

छित्तन बाबू का कथन है - 'पिछले दस साल से पुस्तकालय वाले सरकार से घर-भाड़ा के नाम पर चालीस रुपए माहवार वसूलते हैं। कभी एक पैसा भी दिया है मुझे?..... चार-पाँच हजार रुपयों की बात है, खेल नहीं। ..... कहाँ गए रुपए, कुछ हिसाब तो होना चाहिए ..... सरकारी रेडियो, बिकू बाबू की सुहागरात में बजने के लिए गया। उसी रात से खराब होकर उनके यहाँ पड़ा है। ..... बैटरी का पैसा सरकार से बराबर वसूला गया है।'

बिकू बाबू और छित्तन बाबू के झगड़े में, जातिवाद के पचड़े। फिर सेक्रेटरी प्रेसिडेंट कलह कांड।..... इसलिए, छित्तन बाबू का पंचवर्षीय पुत्र 'दीपशिखा' के पृष्ठों को काट-काटकर दीवार पर चिपकाता है, उसे कौन मना कर सकता है?

नाट्यशाला - स्थापना 1929, 1930 में राजबनैली चंपानगर के दरबार कलकत्ता की लड्डन कंपनी को पानी-पानी कर दिया था परानपुर नाटक-मंडली ने। चार साल पहले तक नाटक खेले गए हैं - हिंदी के प्रसिद्ध नाटककारों की किताबों को स्टेज किया है। (डायलाग पारसी अंदाज में ही बोलते हों, मगर स्टेज जरूर करते थे।) पिछले साल एक बार ब्राह्मण टोली के मिश्रजी की बैठक में नया एकांकी खेला गया तो भूमिहार टोली में दूसरा एकांकी स्टेज हुआ।

.....भूमिहार पुत्रों ने ब्राह्मण समाज के एकांकी करने वाले नौजवानों पर उसी समय से व्यंग्य करना शुरू किया है। ब्राह्मण टोली के एकांकी के एक पात्र की नकल उतारकर लगीनासिंह आज भी बता देते हैं - पारसी कंपनी वालों की तरह 'दे-ए-ए-ए-वी-वी-द-नू-ई-ज-द-ली-ऊ-नी-का-क्या-आ-दे-स् है-ए.....'

फिर आवाज पतली बनाकर तुरंत ही 'उत्तर' जड़ देते हैं - 'स-ब-ऽऽसे-स-है (लंबी आह लेकर!) सब सेस है भगवान, सब सेस है।'

दनुजदलनी देवी का पार्ट, ब्राह्मण टोली में करने वाला मिला नहीं। तंत्रिमा टोली के धनपत को रटाया गया। धनपत ततमा टोली की 'बलवाही मंडली' (बाउलसुर में नाचने-गानेवाली मंडली) का 'नटुआ' है। दाढ़ी-मूंछ नहीं है। 'वलगोबना' है। अपढ़ है, किंतु पार्ट रटा दिया गया था ऐसा कि.....।

ब्राह्मण टोली के अभिनेतागण जरा मुस्कुराकर कहते- 'कहाँ से लाए भाई.... साक्षात् फिल्म स्टार है लीला देवी'

भूमिहार टोलीवालों ने क्रांति की थी।..... मनमोहन बाबू वामपंथी हैं। उन्होंने अपनी छोटी बहन को पढ़ाया-लिखाया है। पटने में पढ़ती है, मनमोहन बाबू के मामा कांग्रेसी एम.एल.ए. हैं।..... लीला फिल्मी गीत नकल करती है। एकांकी में उसने अभिनय किया था। भूमिहार टोली के किसी नौजवान ने अपने विरोधी कैंपवालों पर रोब गालिब करते हुए सुनाया था - 'एकदम फिल्म स्टार उतर आई थी समझो।' ..... इसलिए 'साक्षात फिल्म स्टार' कहकर ब्राह्मण टोली वाले लड़के मंद-मंद मुस्कुराते हैं। इसी बात को लेकर एक दिन मारपीट हो जाती। बात यह हुई कि.....

> यह, विद्यार्थी एकलव्य के नोट्स का एक अंश है। एकलव्य जो अपने को 'समाज विज्ञानी' कहते हैं। किसी विश्वविद्यालय से संबंध नहीं। पिछले साल तक पटने के एक सचित्र हिंदी साप्ताहिक के संपादन में सहायता करते थे - अपने एक परमपूज्य साप्ताहिक संपादकजी की। अचानक एक दिन गायब हो गए - जुलाई 1954 में। यार लोग बहुत-सी बातें उड़ाने लगे। पत्र के संपादक एकलव्यजी के शुभचिंतक साहित्यिकजी पर अप्रत्यक्ष रूप से इल्जाम लगाए गए, किंतु एकलव्यजी ने उपर्युक्त साप्ताहिक पत्रिका के कालमों के द्वारा अपने सभी हित-अहित, शुभ-अशुभचिंतक मित्रों को लिखा : 'एकलव्य ने अस्थायी रूप से पत्रकारिता छोड़कर, पूर्णिया के एक गाँव में पॉलट्री खोली है। प्रयोग को वे पाप नहीं समझते। व्यापार उतना लाभदायक नहीं जितना कि 'टेक्स्ट बुक-चाबी निर्माण!' ..... किंतु, बुरा नहीं। जलवायु अच्छा है। ..... पत्रकार तथा साहित्यिक बंधुओं को सादर निमंत्रण। ..... हिरन, साँभर, बनैले सूअर तथा नीलगाय के शिकार का शौक रखने वाले अपने बंदूक वाले मित्रों को साथ ला सकते हैं।'

पटने के विभिन्न होटलों, रेस्तराँ तथा कैंटीनों में बैठे हुए एकलव्यजी के मित्रों ने 'टेबलतोड़' ठहाके लगाए थे -'साला! सचमुच पागल हो गया।'

- पत्रकारिता खेल नहीं बच्चू!
- रंग उतर रहा था ..... साला भारी चालाक है!
- एक आर्टिकल के बल पर 'संपादकी' करने आया था!

किंतु एकलव्य के 'संपादक' को भरोसा था। एकलव्य को वे 'आर्ट' और 'लिटेरेचर का अधिकारी नहीं तो उत्तराधिकारी जरूर मानते थे। ..... हिमाकत! और क्या कहेंगे? एकलव्यजी की 'कुक्कुट पालन साधना' में भी उन्हें साहित्य और समाज की समृद्धि की संभावना दिखलाई पड़ती थी!

जून 1955 में एकलव्यजी पटना लौट आए हैं, कालाआजार तथा 'डिसेंट्री'* लेकर। तब से पटने के जेनेरल हास्पिटल के एक जेनेरल वार्ड में भर्ती हैं। अपने संपादक को उन्होंने

हस्तलिखित कागजात का बड़ा पोथा सुपुर्द किया है। संपादकजी उस पोथे के बारे में जब-जब अपने बंधु-बांधवों से कुछ कहना चाहते हैं, लोग बात काटकर एकलव्य के ब्लडप्रेशर की रिपोर्ट तथा उसके दिमाग की कुशल पूछते हैं।

संपादकजी ने हिंदी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की सेवा में 'एकलव्य' के नोट्स' के अंश प्रकाशनार्थ प्रेषित किए। अधिकांश पत्रों ने धन्यवादपूर्वक नोट्स को वापस कर दिया है। . ..... बहुतों ने तीखी-मीठी टिप्पणियों के 'खरोंच' भी लगाए हैं।]

बात यह हुई कि.....। एक बात पहले की कह देना अच्छा है।..... इधर कुछ दिनों से लगता है कि दुनिया तेज रफ्तार से भागी जा रही है। दिशा ज्ञान की बातें पीछे करूँगा चाल की तेजी का अनुभव सभी कर रहे हैं। ..... उदहारणार्थ - लैंड सर्वे सेटलमेंट! जमीन की फिर से पैमाइश हो रही है। साठ सत्तर साल बाद। भूमि पर अधिकार! बँटैयादार* का जमीन पर सर्वाधिकार हो सकता है, यदि वह साबित कर दे कि जमीन उसी ने जोती-बोई है।..... चार आदमी कह दें, बस हो गया। बिहार टेनेसी एक्ट की दफा 40 के मुताबिक लगातार तीन साल तक जमीन आबाद करने वालों को 'आकोपेंसी राईट' (मौरूसी हक) हासिल हो जाता था। जमींदारी प्रथा खत्म करने के बाद राज्य सरकार ने अनुभव किया - पूर्णिया जिले में एक क्रांतिकारी कदम उठाने की आवश्यकता है। ..... हिंदुस्तान में, संभवतः सबसे पहले पूर्णिया जिले पर ही 'लैंड सर्वे आपरेशन' का प्रयोग किया गया है। जिले में जमींदार राजाओं की जमींदारियों का विनाश अवश्य हुआ, किंतु हिंदुस्तान के सबसे बड़े किसान यहीं निवास करते हैं।..... गुरुवंशी बाबू जमींदार नहीं, किसान हैं। दस हजार बीघे जमीन है। दो हवाई जहाज रखते हैं। दूसरे हैं भोला बाबू। करीब पंद्रह-बीस हजार बीघे जमीन है, सवा दर्जन ट्रैक्टर हैं। पर यह बात सच्ची है कि वे जमींदार नहीं। ..... पाँच सौ बीघेवाले किसान मध्यवर्गीय किसान कहलाते हैं। गाँव-गाँव पर इन किसानों का राज! भूमिहीनों की विशाल जमात। जगती हुई चेतना। ..... जमींदारी प्रथा समाप्त होने के बाद भी हर साल फसल कटने के समय एक-डेढ़ सौ लड़ाई-दंगे और चालीस-पचास 'मरडर' होते रहे तो फिर से जमीन की बंदोबस्ती की व्यवस्था की गई है। एक विशाल आँधी की प्रतीक्षा में 'क्षयिष्णु' समाज, समाज के गाँव, गाँव के लोग खड़े हैं.....

शहर से (पटना से) शशांक ने लिखा है - ''हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध 'परसनेलिटी' ने कहा है – 'एकलव्य एक दिन अपनी गलती पर पछताएगा।.....' गाँव, अंचल, आंचलिक वगैरह-वगैरह के गोरखधंधे से निकालकर उसे शुद्ध साहित्य की रचना करने को कहो!''

पक्की बात है। मुझे अपनी पॉलट्री पर ध्यान देना चाहिए। बिजनेस इज बिजनेस।..... मगर यह गांव! 1880 साल में मि. बुकानन ने अपनी 'पूर्णिया रिपोर्ट' में इस गाँव के बारे में जो लिखा है, उसकी कुछ पंक्तियों का अनुवाद है : इस इलाके के लोग परानपुर को सारे अंचल का 'प्राण' कहते हैं। अक्षरशः सत्य है उनका कथन। ..... गाँव से पच्छिम बहती हुई दुलारी-दाई की धारा। तीन ओर विशाल प्रांतर। जिले के नक्शे के बीचोंबीच उत्तर से दक्खिन की ओर पड़ी हुई लाखों एकड़ बादामी रंग की धरती.....परती! दुलारी-दाई जिसकी पच्छिमी रेखा है, जहाँ से हरियाली शुरू होती है। अपने दोनों हाथों से दोनों कछार की धरती पर सुख-समृद्धि बाँटती हुई दुलारी-दाई.....बंध्या धरती की समवेदना में बहती हुई अश्रुधारा जैसी। ..... गाँव के दक्खिन हजारों सेमल के पेड़ों का बाग है। सेमलबनी! ..... फूलों के मौसम में 'लाल आसमान' को मैंने देखा है - अपलक नेत्रों से, अरज'-भरी निगाहों से। ..... लाल आसमान!

सेमल का बाग आज भी है। हर पाँच-सात साल के बाद नई पौध! कहते हैं, सात साल पहले एक दियासलाई कंपनी का ठेकेदार आया और सेमल जिसको (जिसके फल को) गिलहरी

भी न खाए, जिसकी लकड़ी से कोई मुर्दा भी न जलाए, शीशम के दर बिकने लगा। लेकिन इसी को कहते हैं । तकदीर का खेल! वन के मालिक के अधपगले एम.ए. पास पुत्र ने साफ जवाब दे दिया - 'एक पेड़ भी नहीं बेचूंगा।' साठ हजार रुपये की 'आखिरी डाक' देकर कंपनी का ठेकेदार चला गया। ..... हाय-हाय करने से क्या होता है? जमींदारी चली गई, सेमलबनी पर सरकार का कब्जा हो गया। सरकार जो चाहे करे। ..... अब हाईकोर्ट में अर्जी दी है - 'सेमल के गाछ का सर्वनाश न किया जाए।' ..... पागल आदमी को कौन समझाए?

इस तथाकथित अर्द्ध-पागल नौजवान से मैं मिला हूँ। सनकियों के कुछ लक्षण उसमें अवश्य हैं। सेमल बाग को न बेचने का कारण पूछने पर चिढ़कर उसने कहा था - 'आप नहीं समझिएगा साहब।..... आप समझ ही नहीं सकते मेरी बात.....'

फूलों के मौसम में सेमल की नंगी बाँहें जब लाल-लाल फूलों से भर गईं, एक सुप्रभात के आसमान की फिजा देखकर मैंने मन-ही-मन उस अर्द्ध-पागल नौजवान को श्रद्धापूर्ण नमस्कार किया। उसने अति शिष्ट एवं सभ्य भाषा में मुझे कड़वी गालियाँ दी थीं।

मेरे प्यारे गैबी.....हाँ, यह मेरे मुर्गे का नाम है। रोड्स जाति का है। बड़ा अक्खड़, बड़ा लड़ाका मेरे प्यारे गैबी पर भी सिंदूरी जादू चल गया है मानो। अस्वाभाविक ढंग से चकित होकर बार-बार इधर-उधर देखता है, अरुणचूड़ा चमकाकर नाचता है, बाँग देता है ..... जन्मजात 'लेफ्टिस्ट' है मेरा गैबी! बाँग जब देने लगता है, तो लगता है, कंबख्त नारे लगा रहा है। ..... नारे से बेहद चिढ़ते हैं कुछ लोग।..... चुप रहो प्यारे! वर्ना कभी जिबह कर दिए जाओगे! '..... और ये छोटी-छोटी देशी मुर्गियाँ भी बिलायती बोल बोलती हैं जब गैबी नारा लगाता है।..... गैबी का क्या दोष?..... सेमल को फूलते देखकर हवा भी बावरी हो गई है। ..... चक्की पीसती हुई लड़कियाँ गाती हैं.....

सेमली के बगिया अगिया लागी..... रही!'

गैबी ने आसमान सिर पर उठा लिया है। उसका क्या कसूर? मेरी भी कविता करने की इच्छा हो रही है -

'लाल-लाल फूल से भरे
हजारो हाथ आस्माँ में उठाए
हम खड़े हैं
काल पर्दे के पार बेबस
ओ! नए युग की पहली सुबह,
रात के किले में कैद नए आफताब* सुनो!
हम तुम्हें आजाद करने आए हैं!

यह धन्यवादपूर्वक अस्वीकृत अंश है 'एकलव्य के नोट्स' का। पत्र के संपादक ने एकलव्यजी के परम शुभचिंतक संपादक से मौखिक रूप में कहा - 'बेवजह बहुत 'लाल-लाल' चिल्लाने की चेष्टा है।..... 'एक पिछड़े हुए जिले के खास अंचल का 'डिड्डम' पीटा है। .....'कथा साहित्य' को इस 'नोट' से कोई तालुक नहीं।..... संपादकजी ने एकलव्य के नोट्स से और दो टुकड़े लेकर इसमें जोड़ दिए हैं।

सर्वे का काम शुरू हो गया है। अमीनों की विशाल फौज उतरी है।.....बौंडोरी, बौंडोरी!

बौंडोरी अर्थात् बाउंड्री! सर्वे की पहली मंजिल! अमीनों के आगमन के साथ ही गाँव में नए शब्द आए हैं - सर्वे से संबंधित! बच्चा-बच्चा बोलता है।

सर्वे की पहली मंजिल बाउंड्री! फिर किश्तवार तब मुरब्बा, खानापुरी, तनाजा, तसदीक और दफा तीन.....।

जरीब* की कड़ी, तख्ती, राइटेंगल, गुनियाँ, कंपास आदि लेकर अमीन लोग अपने टंडैलों* के साथ धरती के चप्पे-चप्पे पर घूम रहे हैं। जरीब की कड़ी खनखनाती हुई सरक रही है - खन-खन खन!!

सर्वे के अमीन साहब का कहना है - 'यदि किसी 'प्लाट' पर एक कौआ आकर कह दे कि जमीन मैंने जोती-बोई है, तो उसका नाम लिखने को हम मजबूर हैं।..... यही कानून है। यह मत समझो कि 'बौंडोरी' बाँध रहा हूँ.....'

मैंने शशांक के पत्र का जवाब दिया है - 'शशांक! यह मत समझो कि 'बौंडोरी' बाँध रहा हूँ..... चार, महीने हो रहे हैं, बहुत बड़ी-बड़ी बातें होते देख रहा हूँ।..... अब इस अंचल को क्या करूँ कि 'जादू-टोना' मारे जा रहा है।..... मैं बहुत करीब से देख रहा हूँ इस उथल-पुथल को।.....धरती पर आकाश की परी उतरती है, हौले-हौले! हरसिंगार की डालियों से जरा-सी चुनरी उलझी, मृदु झटके से जो फूल झरे, शरद की चाँदनी में भीगी धरती पर पड़ते-झरते हरसिंगार के 'परस' की खबर मुझे हो ही जाती है। युगों से पददलित, शोषित, भुक्खड़ भूमिहीनों की टोली यहाँ हर टोले में, दिन-रात न सुनूँ?.....क्या कहता है - हमारा प्रतिष्ठित मित्र? कान बंद कर लूँ?.....

'धरती में कान लगाकर दिन-रात सुनता हूँ!.....

'क्या सुनता हूँ, नहीं सुनना चाहते तुम न सुनो। बहरा कैसे हो जाऊँ मित्र.....! जिले-भर में किसानों और बेजमीनों में महाभारत छिड़ा हुआ है। दुखरन साह मेरे पड़ोस में रहते हैं, छोटी दुकान है।

पचास बीघे जमीन है। भोगनेवाला कोई नहीं।.....उसने सोचा था - 'भूदान' में दो बीघे जमीन दान देने से अड़तालीस बीघे तो बच जाएँगे। हजार बीघेवाला भी एक इंच जमीन छोड़ने को राजी नहीं.....'बोर' मत होना दोस्त! अजीब जिला है यह!'

मगर, अमीन साहब कहते हैं, 'असल चीज़ है बाउंड्री। अभी जिसका नाम दर्ज हो गया, समझो पत्थर पर रेखा पड़ गई।' इसीलिए जमीन वाले और बेजमीन सभी उन्हें हमेशा घेरे रहते हैं। न जाने कब कोई कौआ उड़कर आए और तनाजा* दे दे जमीन में।

'तनाजा' सर्वे की एक मंजिल है!

तनाजे का फैसला कानूनगो साहब करेंगे। इनको बहुत 'पावर' है। अभी अमीन और सुपरवाइजर इनके अंडर में रहते हैं।..... पाँच महीने तक 'तनाजा' का फैसला होगा!..... सबों ने पाट बेचकर पैसे जमा कर रखे हैं, क्या जाने कब रुपये की जरूरत पड़ जाए!..... दिन-रात कचहरी लगी रहती है कानूनगो साहब की। कानूनगो के 'चपरासीजी' को इलाके के बड़े-से-बड़े जमीन वाले हाथ उठाकर - 'जयहिंद' करते हैं - ''जयहिंद चपरासीजी!.....कहिए, कानूनगो साहब को चावल पसंद आया? असली बासमती चावल है, अपने खर्च के लिए घर में था।.....जी-जी-हाँ।.....घी आज आ जाएगा।''

कचहरी लगी रहती है - देशसेवकों की। कांग्रेसी, समाजवादी, कम्युनिस्ट सभी पार्टीवालों ने अपने बाहरी 'वरकर' मँगाए हैं। गाँव के 'वरकरों' की बात उनके अपने परिवार के ही अन्य सदस्य नहीं मानते। ..... अपना-अपना भाग्य! अपना-अपना हिस्सा!

बहुत से 'वरकरों' का ट्रायल होने वाला है। सेवकों की सेवाओं की परख हो रही है।

सभी पार्टी के कार्यकर्ता सतर्क हैं, सचेष्ट हैं। बँटाईदारी करने वालों के नाम पर्चा दिलवाने का व्यापार बड़ा टेढ़ा है।

चौहद्दी* के गवाहों की गवाही बड़ी पुख्ता समझी जाती है - कानूनगो के सामने।.....प्लाट नंबर 472! इसके उत्तर कौन है? 471 में? जीतू हजरा? क्यों जी? जीतू हजरा, क्या तुम्हें मालूम है कि तुम्हारी जमीन के दक्खिन किसकी जमीन है? रेखागणित के सहारे बात आसानी से समझी-समझायी जा सकती है।.....क्योंकि, प्लाट नंबर 472 का 'तनाजा' जाँच रहे हैं हाकिम। 472 पर दो-दो दावे हैं। जमीन मालिक मोती मिसर और बँटाईदार सुखानू राउत के अलावा और भी दो बँटैयादारों के दावे हैं। सबों के दावे हैं कि वे ही असल बँटैयादार हैं।..... 472 के उत्तर 471 में जीतू हजरा के बाप का नाम पुराने कागजात में दर्ज है - कायमी बँटाईदार की सूरत से।..... एक पार्टी ने उसको गवाह बनाया है। दूसरी पार्टीवाला कागज पेश करता है - 'हुजूर माय-बाप! देखा जाय। जीतू हजरा के बाप ने अंगूठे का निशान लगाकर पच्चीस साल पहले 'सुपुर्दी' लिखकर दी है, इस जमीन पर हमारा या हमारे वारिसान का कोई हक नहीं रहेगा।' .....रेखागणित के द्वारा ही यह साबित होता है कि प्रत्येक प्लाट पर पाँच-पाँच आधीदारों* के झगड़े हैं।..... व्यक्ति की लड़ाई।..... कानूनगो साहब मुस्कराकर पार्टी वरकरों की ओर देखते हैं - ''आप लोग तो जनता के नेता हैं। देखिए, कितना झंझट का काम है। मैं किसे सच मानूँ।''

जमीन वाले फर्जी बँटैयादार खड़ा कर रहे हैं।.....जमीन बचाने के लिए वे हर तरह के कुकर्म कर सकते हैं।

'मगर फर्जी बँटैयादारों की संख्या जोड़कर देखिए.....बहुमत की फर्जी.....।' कानूनगो साहब बिच्छू की तरह डंक मारकर हँसते हैं, दुष्ट हँसी! सभी पार्टी वालों पर उनके विरोधी दल का इल्जाम है..... अपनी किसान सभा के मेंबरों को गैर-वाजिब ढंग से जमीन दिलाना चाहते हैं। गाँव में 'सपोर्ट' शब्द खूब प्रचलित हो गया है।

'क्यों रामदैल! तुमको तो दो-दो पार्टी वाले 'सपोर्ट करते हैं.....पर्चा तुम्हीं को मिलेगा।'. ..... ''अरे, नहीं भाई। बड़ा 'इंदरजाल' हो रहा है। कानूनगो साहब की 'इसतिरी' का 'ममहर' रामलगन बाबू की ससुराल के बगल वाले गाँव में है। लगता है आखिर 'तिरियाचलित्तर' का 'खेला' करवाएँगे रामलगन बाबू।''

किंतु लुत्तो बाबू की बात निराली है। शासक पार्टी के कार्यकर्ता हैं। सर्वे के समय उनकी कीमत और बढ़ रही है। बड़े लोगों की सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। पाँच साल तक थाना कमेटी के नेताजी का बिस्तर यों ही नहीं ढोया है.....लुत्तो बाबू ने।

''अरे, सोशलिस्ट, कौमनिस्ट को कौन पूछता है। जमीन लेनी है तो 'जय' बोलो लुत्तो बाबू की।''

सभी धीरे-धीरे जान गए हैं, सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट पार्टी वाले जिनकी मदद करेंगे, उन्हें जमीन हरगिज नहीं मिल सकती, ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी उठकर आएँ तब भी नहीं।.....इसमें कुछ-कुछ भेद है-जिसे सिर्फ लुत्तो बाबू ही जानते हैं। लुत्तों बाबू के चरण गहो.....*।

खेत-खलिहान, घाट-बाट, बाग-बगीचे, पोखर-पहार.....पर खनखनाती हुई जरीब की कड़ी घसीटी जा रही है..... खन-खन-खन-खन।

- क्या नक्शा बन रहा है!

- नया खाता, नया पर्चा.....जमीन के नए मालिक!

तनाजा के बाद तसदीक!* तसदीक करने के लिए कानूनगो से ज्यादा 'पावर' वाले नए हाकिम साहब आए हैं। ए.एस.ओ. साहब। असिस्टेंट सर्वे ऑफिसर..... हर नया हाकिम नया एलान करता है।

''बाउंड्री-तनाजा हम कुछ नहीं जानता है। हम फिर शुरू से जाँच करेगा।.....यही सरकुलर आया है। नया सरकुलर।''

छै महीने में ही गाँव का बच्चा-बच्चा पक्की गवाही देना सीख गया है।

छै महीने में ही गाँव एकदम बदल गया है। बाप-बेटे में, भाई-भाई में, अपने हक को लेकर ऐसी लड़ाई कभी नहीं हुई।..... अजीब-अजीब घटनाएँ घटती हैं। सरबन बाबू की ही बात लीजिए.....। सरबन बाबू इलाके के नामी-गरामी आदमी हैं। गाँव में अब भी काफी प्रतिष्ठा है। जवार-भर की पंचायतों में जाते हैं।..... हाल में ही काशीजी से 'शिवलिंग' मँगवाकर स्थापना करवाई। पुण्य का झंडा लहरा रहा है आसमान में, शिवाले के ऊपर।..... उनके छोटे भाई लालचन बाबू को किसी ने बताया कि सभी पर्चों पर सरबन बाबू अपने लड़कों के नाम या स्त्री का नाम चढ़वा रहे हैं। लालचन बाबू का नाम कहीं भी नहीं - एक 'प्लाट' पर भी नहीं। जिन पर्चों पर सरबन बाबू का नाम चढ़ा है, सरबन बाबू के साथ..... 'बगैरा' भी नहीं है जो कभी लालचन बाबू दावा कर सकें.....। लालचन बाबू पढ़े-लिखे नहीं हैं तो क्या हुआ? इतनी-सी बात भी उनकी समझ में नहीं आएगी? उनके वकील साहब ने फीस लेकर सलाह दी है - आपको आगे बढ़ने की कोई जरूरत नहीं (आगे बढ़ने का मतलब यहाँ कोर्ट-कचहरी करने से है)..... बड़े भाई को आगे बढ़ने दीजिए।'

लालचन बाबू ने दूसरे ही दिन 'मारे लाठी के' सिर फोड़कर सरबन बाबू को, यानी अपने बड़े भाई साहब को आगे बढ़ा दिया है।

सुना है, सरबन बाबू ने भरी कचहरी में कह दिया है।..... ईमान-धरम खाकर उन्होंने कह दिया है -'लालचन मेरा कोई नहीं!'

गाँव की 'अली-गली' अगवार-पिछवाड़ की ओर निकलने वाली पगडंडियाँ बंद की जा रही हैं।..... डर है, नक्शा बन जाने का। खेत के बीचों बीच 'पगडंडी' यदि 'नक्शे' में दर्ज हो गई तो हो चुकी खेती!

आँधी चल रही है। दो साल तक लगातार चलेगी यह आँधी। बाउंड्री से तसदीक तक एक साल, दफा एक सौ तीन से एक सौ नौ तक दूसरे साल।

दीवानी-कचहरियों में बेदखली*, फसलजब्ती*, टायटिल-सूट का बाजार गर्म है। ठलुए वकीलों को भी दस रुपए रोज की आमदनी होने लगी है।.....

मेरी 'पॉलट्री'?..... एक खेवे के चूजों को पंख लग गए हैं। गैबी कल घायल हो गया है। लेगहार्न जाति के नौजवान मुर्गे, जुम्मन ने घायल कर दिया उसे पूरी तरह.....। भगवान न करे मेरे गैबी को कुछ हो जाए। गैबी रह-रहकर पाँखें फड़फड़ाता है। असह्य वेदना से

उसकी आँखों की आरक्त पुतलियाँ काँपती हैं। जुम्मन की आवाज सुनकर उठने की चेष्टा करता है। खोल दूँ तो मर मिटे अभी।

बहुत बुरा स्वप्न देखकर उठा-जनवरी, 55 की पहली तारीख को। भोर का सपना, कहते हैं सत्य होता है!

हजारों सेमल के पेड़ों को काटते हुए देखा है - सपने में! फूलों से भरी पेड़ की डालियाँ छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर बिखरी हुई.....।

जी 'उचाट' हो गया है।..... तबीयत भारी रहती है।

भगवान भला करे 'बैकवार्ड और शिड्यूल्ड कास्ट' टोले के नौजवानों का! नाटक स्टेज करेंगे (अंग्रेजी नामकरण स्वयं 'बैकवार्ड और शिड्यूल्ड कास्ट' के नौजवानों ने किया है।..... तीन साल पहले तक 'गंगोला' जाति के 'लीडर' लोग अपने क्षत्रिय के प्रमाण में बहुत लंबे-लंबे भाषण देते थे। नाम के अंत में 'सिंह' जोड़ते थे..... सरकार 'बैकवार्ड' और 'शिड्यूल्ड कास्ट' के लड़कों को स्कालरशिप देने लगी है, सरकारी नौकरियों में 'सीटें' रिजर्व रखती है।..... मुरलीसिंह जी सवर्ण हिंदू हैं। सुनते हैं - उनके लड़के ने अपने को 'अनुसूचित जाति' की संतान बताकर, स्कालरशिप 'झीट' लिया है। साठ रुपए प्रतिमास।)

इस 'महाभारत' के बीच इन नौजवानों के उत्साह को देखकर मन प्रसन्न हो गया। नाटक खेल रहे हैं।

दलित वर्ग को हर तरह से मर्दित करके रखा गया था अब तक। नाटक मंडली के लिए प्रत्येक वर्ष खलिहान पर चंदा काट लेते हैं - मालिक लोग। लेकिन, कभी भी द्वारपाल, सैनिक, अथवा दूत का पार्ट छोड़कर अच्छा पार्ट..... माने 'हीरो' का पार्ट नहीं दिया सवर्ण टोली के लोगों ने।

इस बार उन लोगों ने नाटक खेलने की तैयारी की है। पिछले साल गाँव के नाटककार श्री प्रेमकुमार 'दीवाना' जी ने एक नाटक लिखा । नाटक मंडली के एक-एक सदस्य को उन्होंने सुनाया समझाया; मगर लोगों ने पसंद नहीं किया।

दलित वर्ग के नौजवानों ने 'दीवाना' जी के नाटक को काफी पसंद किया है। नाटक का नाम है 'प्यार का बाजार'।

दीवाना जी ने नाटक की रचना खासकर गाँव की नाटक 'मंडलियों के लिए' की है। दीवाना जी की बात विचार करके देखने की है। नाटक मंडली के लिए चंदा सभी देते हैं। और, नाटक में राजा, राजा का बेटा, पुरोहित, मंत्री आदि जितने भी अच्छे पार्ट होते हैं, ऊँची जातिवालों को दिए जाते हैं। बाकी बचे हुए लोगों को 'जो आज्ञा' वाला पार्ट देकर टरका दिया जाता है।..... कहेंगे नाटक में जितना पार्ट लिखा है, उससे ज्यादा लोगों को कैसे दिया जाए। भला, शहर के नाटक लिखने वालों को क्या मालूम कि गाँव में कितने लोग यों ही बिना पार्ट के रह जाते हैं। 'प्यार का बाजार' में तीस हीरो हैं। औरत का पार्ट कोई लेना नहीं चाहता, इसलिए एक घूँघटवाली हिरोइन की व्यवस्था की गई है - किताब में।..... गाँव में गाँव के नाटककार का नाटक नहीं स्टेज करते..... देश का कल्याण करने चले हैं।

- इसके बाद 'प्यार के बाजार' ने एक 'विराट व्यापार' का रूप धारण कर लिया।
- दलित नाटक समाज वाले जब सवर्ण टोली से 'पर्दा-पोशाक' लेकर चले गए तो मालूम हुआ कि अब वे 'पर्दा-पोशाक' लौटाकर नहीं देंगे।..... पच्चीस साल से चंदा लिया

जा रहा है, मगर कभी 'हीरो' का पार्ट नहीं मिला।..... छित्तन बाबू ने पुस्तकालय को 'हथिया ' लिया। बिकू बाबू सरकारी रेडियो बजाते हैं- अपनी कोठरी में!..... पर्दा-पोशाक पर दलित नाटक समाज का कब्जा होना जायज है।

- देखना है, कौन माँगने आता है पर्दा-पोशाक!
- एक मूँछ भी नहीं मिलेगी!

किंतु सवर्ण टोली पर जाहिरा इसकी कोई भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। नाटक शुरू होने के दो घंटा पहले सवर्ण टोली के लोग भी पहुँचे। सबों ने मिलकर स्टेज की तारीफ की, सजावट को सराहा।

टोले में एक अभूतपूर्व आनंद की लहरें आई हुई थीं। पहली बार इस टोले में स्टेज बना था।

सवर्ण टोलीवालों ने अपनी गलती मान ली। मंत्रीजी बोले - 'नाटक ही करना था तो मिल जुलकर करते।'

- ''दूर-दूर से लोग देखने आए हैं। क्या कहेंगे लोग?''
- ''अरे भाई जमीन की लड़ाई जमीन पर, गाँव की लड़ाई गाँव में।''
- ''नाटक मंडली में फूट होने से तो दुनिया हँसेगी।''
- ''परानपुर की प्रतिष्ठा का प्रश्न है प्यारे भाइयो।''

'दीवाना' जी को समझा दिया गया कि नाटक मंडली ने उनकी किताब को अस्वीकृत करके भारी भूल की है। किंतु यह बात भी ठीक है कि 'दूसरे सीन' में संशोधन की आवश्यकता है। संशोधन करते ही नाटक चमक उठेगा। दीवाना जी ने उत्साह से हाथ फेंकते हुए कहा -'यह तो मेरे लिए बाएँ हाथ का खेल है। पाँच मिनट में कर सकता हूँ - संशोधन!'

सर्वसम्मति से यह संशोधन भी स्वीकृत हो गया कि सवर्ण और दलित दोनों टोले के लोग मिल-जुलकर नाटक खेलेंगे। सवर्ण टोली वाले सिर्फ संशोधित 'सीन' में उतरेंगे, दलित टोले के एक भी हीरो को 'ड्रॉप' नहीं किया जाएगा।

हारमोनियम मास्टर ने जब 'मतार कटारी मरि जाना' - बजाना शुरू किया तो किसी को भी होश नहीं रहा। दर्शकों ने तालियाँ बजाकर पर्दा उठाने की उत्कंठा प्रकट की।

पर्दा उठा। प्रथम दृश्य में नाटककार दीवाना जी ने पंद्रह मिनट भाषण देकर प्रमाणित कर दिया कि सिर्फ नाटकों से ही ग्राम सुधार संभव है। शर्त यह है कि गाँव में - गाँव के योग्य ही नाटक खेले जाएँ। गाँव में बढ़ती हुई कटुता नाटक से ही दूर हो सकती है, कुछ क्षण पूर्व की घटना द्वारा, प्रत्यक्ष प्रमाणित करने के बाद इंग्लैंड, अमेरिका, चीन, रूस आदि देशों के नाटकों पर भी प्रकाश डालने में काफी समय लग गया।

दूसरे ही सीन में (संशोधित सीन में) सवर्ण टोली के बीसों कलाकारों को एक ही साथ उतरना था।

सबसे पहले एक व्यक्ति हाथ में तलवार लेकर स्टेज पर आया।..... दीवाना जी पर्दे की आड़ में जोर-जोर से 'प्रांपटिंग' कर रहे थे। किंतु उस 'हीरो' ने अपने 'डायलाग' में पुकारा - 'साथियो! तैयार हो?'

अंदर से सम्मिलित आवाज आई - 'हम तैयार हैं।'

हुक्म हुआ - 'एक-एक कर प्रवेश करो!'

बीसों कलाकार किस्म-किस्म की पोशाकों और हथियार से लैस होकर आए। आठ-दस 'नायकों' के सिर पर बक्से भी लदे थे।..... दीवानाजी दौड़कर स्टेज पर आए। उन्होंने कुछ कहने की चेष्टा की।

प्रथम 'हीरो' ने हुक्म दिया - 'इस व्यक्ति को कैद कर लो।' दीवानाजी को सबों ने घेर लिया। उन्होंने बहुत हाथ-पैर मारने की चेष्टा की। इस घेर-भाग और धड़-पकड़ से समवेत दर्शक मंडली बेहद खुश हुई और तालियों से इस संशोधित सीन का स्वागत किया गया।..... हारमोनियम मास्टर साहब ने लड़ाई वाली धुन छेड़ दी। 'हीरो' आखिरी डायलाग बोला - 'निकल पड़ो!' बीसों 'हीरो' सारे साजो-सामान तथा पोशाक के साथ दर्शकों के बीच उतर पड़े।

दो नायकों ने 'नाटककार' जी को कंधे पर बेबस करके लटका लिया था। प्रथम हीरो ने दलित टोले के 'पंचायती पेट्रोमैक्स' को आगे बढ़ाकर गुल कर दिया।..... भीषण कलरव* और कोलाहल में किसी की समझ में कोई बात नहीं आई कि क्या हुआ।

- कहते हैं, टँगे हुए पर्दे की डोरी तक वे काटकर ले गए!

- बारह-तेरह व्यक्ति बाँस के खरोंच से घायल हुए।

- थाने में खबर दी गई है। डकैती का अभियोग लगाकर नालिश की गई है।

सब हँसते हैं।..... मैं हँसने के 'मूड' में नहीं हूँ। 'पंचायती पेट्रोमैक्स' गुल हो जाए - यह हँसने की बात नहीं।

गैबी कल मर गया।

जुम्मन उसकी लाश के पास घंटों चुप-चाप खड़ा रहा।

- पशु-पक्षी को भी शोक होता है क्या?

बेकार की बातों में अपना दिमाग खराब करूँ, पागल हो जाऊँ शॉक से - यह मेरी व्यक्तिगत स्वाधीनता है! हमारी 'ह्यूमन-डिगनिटी' है!

[एकलव्य के नोट्स' के उपर्युक्त तीन असंलग्न खंडों को एक साथ किसी मासिक पत्रिका में प्रकाशित किया गया। 'कथा-साहित्य को ऐसी स्थूल चीजों की आवश्यकता नहीं', संपादकीय 'नोट' के साथ!

.....किंतु समाजविज्ञान के एक प्रोफेसर साहब इसके लेखक एकलव्य से अस्पताल में मिलने आए।..... संपादकजी से बातें करते समय प्रोफेसर साहब ने 'विलेज सर्वे' पर थोड़ा प्रकाश डाला। ..... फील्ड स्टडी, साइकलोजिकल स्टडी, स्टेटिक तथा पेराडॉक्स आदि शब्दों से प्रयुक्त वक्तव्य के द्वारा 'एकलव्य के नोट्स' की आवश्यकता बतलाई। ..... 'पोथा' उन्हें सुपुर्द कर दिया गया है!]

साकेत (संपादक – उपेंद्रनाथ अश्क), 1955, में संकलित।

बोध प्रश्न 2

1) इस रिपोर्ताज में कौन-सी तीन अंतःकथाएँ हैं?

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

2) ये उक्तियाँ किसने कहीं और कहने वालों का मंतव्य क्या है?

   क) 'जमीन लेनी है तो 'जय' बोलो लुत्तो बाबू की'

   ख) 'नाटक ही करना था तो मिल जुलकर करते'

   ग) 'सरकारी रेडियो बिकू बाबू की सुहागरात में बजने के लिए गया, उसी रात से खराब होकर उनके यहाँ पड़ा है। ..... बैटरी का पैसा सरकार से बराबर वसूला गया है।

   घ) 'सेमल के गाछ का सर्वनाश न किया जाए।'

9.5 'एकलव्य के नोट्स' का विश्लेषण

एकलव्य के नोट्स 'श्रुत अश्रुतपूर्ण' संग्रह का एक महत्वपूर्ण रिपोर्ताज है। वास्तव में, यह 'परती परिकथा' के लिए लिखा गया नोट्स है। ध्यान देने की बात है कि 'परती परिकथा' के केंद्र में परानपुर गाँव का ही चित्रण है। आजादी के बाद बदलते हुए गाँव की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति को ब्यौरेवार ढंग से इसमें प्रस्तुत किया गया है।

9.5.1 प्रतिपाद्य

परानपुर बिहार के पूर्णिया जिले का एक बड़ा-सा गाँव है जिसमें विभिन्न जातियों के तेरह टोले हैं। आठ ग्रेजुएट, पचास मैट्रिक्युलेट, एक सौ मिडिल पास लोगों के अलावा डेढ़ दर्जन कवि, दो दर्जन कथाकार, दो साहित्यकार और एक नाटककार। इस गाँव की आत्मा की धड़कन हैं। दलितों एवं स्त्रियों में शिक्षा के प्रति बढ़ते रुझान को इंगित करते हुए रेणु ने लिखा है - 'पिछले साल एक हरिजन ने बी.ए. पास किया है, सबसे पहले। लड़कियाँ भी पढ़ी-लिखी हैं। जिले की एकमात्र साहित्यिक पत्रिका में एक कुमारी कवयित्री की रचनाएँ हमेशा छपती हैं। परंतु साथ ही स्त्री के प्रति पुरुष की सनातन वृत्ति की ओर इशारा करने से भी रेणु-चूकते नहीं - 'यह और बात है कि लोग तरह-तरह की बातें करते हैं उनकी रचनाओं के संबंध में।

शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार और जातिवाद का नमूना है परानपुर का स्कूल, जहाँ की अवस्था बेहद चिंतनीय हो गई है। 'गत तीन वर्षों से कोई हेडमास्टर दो महीने से ज्यादा नहीं टिक पाते। जाति और पंचायत, गाँव की दलबंदी के ऊपर-चढ़े करेले की भुजिया स्कूल कमेटी की कड़ाही में भूँजी जाती है। पुस्तकालय की स्थापना सन् 1930 में हुई थी। 1944 से सरकारी सहायता भी मिलती है लेकिन पुस्तकालय पिछले पाँच वर्षों से बंद है और उसे छित्तन बाबू ने हड़प लिया है। 'सरकारी रेडियो बिकू बाबू की सुहागरात में बजने के लिए गया, उसी रात से खराब होकर उनके यहाँ पड़ा है। बैटरी का पैसा सरकार से बराबर वसूला गया है।'

आजादी के बाद पंचायती राज के माध्यम से गाँव का विकास करने की जो थोड़ी-बहुत कोशिश शुरू हुई थी वह भी जातिवादी राजनीति में फँसकर रह गई। इस सिलसिले में पहली बात तो यह हुई कि पंचायतों पर आमतौर पर पूर्व जमींदारों अथवा धनी किसानों का कब्जा कायम हुआ और दूसरे विकास कार्यों के लिए मिलने वाली सहायता राशि सरकारी अधिकारियों और पंचायत प्रधानों के पेट में ही भस्म हो गई। भूस्वामियों ने अपनी जमीनें बचाने के लिए हर संभव कोशिश की और फर्जी बटाईदार खड़ा करके भूमिकानून का सरेआम मजाक उड़ाया। एक ही जमीन के कई हकदार निकल आए और हाकिमों के सामने रोने-घिघियाने लगे, - 'हुजूर माय-बाप। जीतू हजरा के बाप ने अंगूठे का निशान लगाकार पच्चीस साल पहले 'सुपुर्दी' लिखकर दी है, इस जमीन पर हमारा या हमारे वारिसान का कोई हक नहीं रहेगा।'

रेणु ने आजादी के बाद पैदा होने वाले नवधनाढ्य* वर्ग के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- 'किंतु लुत्तो बाबू की बात निराली है। शासक पार्टी के कार्यकर्ता हैं। सर्वे के समय उनकी कीमत और बढ़ रही है। बड़े लोगों की सेवा कभी निष्फल नहीं जाती। पाँच साल तक थाना कमेटी के नेताजी का बिस्तर यों ही नहीं ढोया है लुत्तो बाबू ने।' और अब हालत यह है कि 'ज़मीन लेनी है तो जय बोलो लुत्तो बाबू की।' लुत्तो बाबू इसी वर्ग के हैं। इसमें वे लोग हैं जिन्होंने आजादी के बाद जमींदारों के बराबर अपनी हैसियत कायम की अर्थात् धनी किसान, और वे भी, जो नेताओं की चापलूसी करते-करते अपनी सामाजिक-आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में सफल हो गए।

रेणु ने अपनी रचनाओं में जातिवाद और भ्रष्टाचार और इनसे पैदा होने वाली विकृतियों को अधिक स्थान दिया है। तत्कालीन स्थितियों में यह स्वाभाविक था और लेखक की अपनी ईमानदार कोशिश थी। दलित-चेतना के उभार को भी रेणु ने अपनी रचनाओं में विशेष महत्व दिया है। कहना न होगा कि 'एकलव्य के नोट्स' दलितों में आई चेतना और अधिकारों के प्रति सतर्क दृष्टि का परिचायक है। उनमें यह समझ विकसित हुई है कि सवर्ण उनके साथ भेदभाव करते हैं इसलिए वे अब बराबरी के लिए संघर्ष करने की स्थिति में तैयार दिखते हैं।

'दलित वर्ग को हर तरह से मर्दित करके रखा गया था अब तक। नाटक मंडली के लिए प्रत्येक वर्ष खलिहान पर चंदा काट लेते हैं - मालिक लोग लेकिन, कभी द्वारपाल, सैनिक अथवा दूत का पार्ट छोड़कर अच्छा पार्ट माने 'हीरो' का पार्ट नहीं दिया सवर्ण टोली के लोगों ने।'

अब यह अलग बात है कि अपने इस कार्य के लिए सवर्णों ने तमाम तर्क गढ़ रखे हैं। उनका एक जबर्दस्त तर्क यह है कि - 'नाटक में जितना पार्ट लिखा है, उससे ज्यादा लोगों को कैसे दिया। लेकिन यहाँ तो मूल समस्या भूमिका के बँटवारे को लेकर है। हीरो का पार्ट सवर्ण टोली के हिस्से ही हमेशा क्यों रहे? कभी वह दलितों के हिस्से में क्यों नहीं जाता? दलितों को शिकायत इसी असामान्य वितरण या पक्षपात या कि ऊँच-नीच के भेदभाव को लेकर है। लिहाजा सवर्णों द्वारा अस्वीकार प्रेम कुमार 'दीवाना' के नाटक 'प्यार का बाजार' को मंचित करने के लिए दलित अपने बल-भरोसे तैयार हो जाते हैं।

दलित नाटक समाज वाले जब सवर्ण टोली से 'पर्दा-पोशाक' लेकर चले गए तो मालूम हुआ कि अब वे 'पर्दा-पोशाक' लौटाकर नहीं देंगे। पच्चीस साल से चंदा लिया जा रहा है, मगर कभी 'हीरो' का पार्ट नहीं मिला। छित्तन बाबू ने पुस्तकालय को हथिया लिया। बिकू बाबू सरकारी रेडियो बजाते हैं - अपनी कोठरी में। पर्दा-पोशाक पर दलित समाज का कब्जा होना जायज है।'

दलित वर्ग में इस बात का जो मलाल है वह बहुत हद तक हमारे सामाजिक-आर्थिक संबंधों के कारण ही है। श्रेष्ठता की भावना के कारण सवर्णों ने हीरो, मंत्री, सेनापति जैसी भूमिकाएँ अपने पास रख ली और सदा से सेवक की भूमिका में रहते आए दलितों को दूत, चपरासी, कसाई, मदारी का रोल थमा दिया। यह ध्यान देने की बात है कि परानपुर गाँव में एक दलित भी उच्च शिक्षा प्राप्त है। तब यह कहने के लिए कोई जगह नहीं बच जाती कि दलित अनपढ़ हैं, इसलिए उन्हें 'हीरो' की भूमिका नहीं दी जा सकती।

गाँव के जीवन में कुछ नई चीजें आने से पारंपरिक संबंधों पर भी असर पड़ा। इन्हीं में से एक है सर्वे। सर्वे ने कुछ नए शब्द दिए - बौंडोरी, किश्तवार, मुरब्बा, खानापुरी, तनाजा, सटीक और दफातीन आदि। गाँव का बच्चा-बच्चा पक्की गवाही देना सीख गया है। छह महीने में ही गाँव एकदम बदल गया है। बाप-बेटे में, भाई-भाई में, अपने हक को लेकर ऐसी लड़ाई कभी नहीं हुई। 'यह समाज की आंतरिक व्यवस्था में उथल-पुथल का नतीजा है। भाई अपने सहोदर को भरी कचहरी में कह देता है कि वह मेरा कोई नहीं है। बाप पर भी लोग विश्वास करने को तैयार नहीं हैं। पिता चूँकि छोटे भाई को ज्यादा प्यार करते हैं इसलिए हो सकता है सारी उर्वर भूमि उसके नाम कर दें।' रेणु ऐसे अवसरों पर राजनीतिक दलों और नेताओं की चुटकी लेने से नहीं चूकते।

'कचहरी लगी रहती है देश सेवकों की। कांग्रेसी, समाजवादी, कम्युनिस्ट सभी पार्टी वालों ने अपने बाहरी 'वरकर' मँगाए हैं। गाँव के 'वरकरों' की बात अपने अपने परिवार के ही अन्य सदस्य नहीं मानते। लोगों से अपनी बात जबर्दस्ती मनवाने के लिए आए अपराधीनुमा तत्वों को बाहरी 'वरकर' नाम दिया गया है। रेणु निश्चित रूप से यहाँ राजनीति के अपराधीकरण की ओर संकेत करना चाहते हैं। इतिहास में यह भारतीय राजनीति के पतन का समय माना जाता है। समूचे मूल्य और आदर्श ध्वस्त होते चले गए और प्रजातंत्र ने ऐसा रूप ग्रहण कर लिया जिसमें सिर्फ तंत्र बच गया और प्रजा सिरे से गायब है।

'एकलव्य के नोट्स' के अंत में दलितों और सवर्णों के बीच होने वाली कशमकश या द्वंद्व को रेखांकित किया गया है। सवर्ण दलितों को पछाड़ने के लिए एक समझौता भरी चाल चलते हैं जिसे न तो नाटककार समझ पाता है और न ही दलित। सवर्ण टोली ने अपनी गलती मानकर मिलजुलकर काम करने की इच्छा जाहिर की। इसे गाँव की प्रतिष्ठा के प्रश्न से भी जोड़ा गया और अंत में संशोधित दृश्य में एक साथ बीस सवर्ण कलाकारों को उतारने की योजना को अंतिम रूप दे दिया गया। बीसों सवर्ण कलाकारों को नाटक के दूसरे दृश्य में उतरना थाः

'सबसे पहले एक व्यक्ति हाथ में तलवार लेकर स्टेज पर आया। दीवाना जी पर्दे की आड़ में जोर-जोर से प्रांपटिंग कर रहे थे। किंतु उस हीरो ने अपने डायलाग में पुकारा-'साथियो, तैयार हो?' अंदर से सम्मिलित आवाज आई - 'हम तैयार हैं।'

हुक्म हुआ - 'एक-एक कर प्रवेश करो।' बीसों कलाकार, किस्म-किस्म की पोशाकों और हथियारों से लैस होकर आए। आठ-दस नायकों के सिर पर बक्से भी लदे थे।

प्रथम हीरो ने हुक्म दिया - 'इस व्यक्ति को कैद कर लो।' दीवाना जी को सबों ने घेर लिया। हारमोनियम मास्टर साहब ने लड़ाई वाली धुन छेड़ दी। हीरो आखिरी डायलॉग बोला - 'निकल पड़ो।' बीसों हीरो सारे साजो-सामान तथा पोशाक के साथ दर्शकों के बीच उतर पड़े।

X X X

दो नायकों ने नाटककार जी को कंधे पर बेबस करके लटका दिया था। प्रथम हीरो ने दलित टोले के पंचायती पेट्रोमैक्स को आगे बढ़कर गुल कर दिया।

रिपोर्ताज के उपर्युक्त अंशों में सवर्णों और दलितों के आपसी द्वंद्व को आसानी से महसूस किया जा सकता है। दरअसल, आजादी के बाद दलितों में आत्म-सम्मान की जो भावना जगी और साथ ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी, उससे सवर्णों में एक तरह की बेचैनी का भाव पैदा हुआ। उन्हें लगा कि दलित उनके परंपरागत वर्चस्व और श्रेष्ठता को चुनौती देने लगे हैं। ऐसी स्थिति में सवर्णों ने तमाम तरह की चालाकियों से काम लेना शुरू किया और कहीं-कहीं उन्होंने दलितों को पछाड़ा भी। वैसे बदली हई परिस्थितियों में सवर्ण दलितों को सीधी टक्कर देने के बजाय पीछे से वार करने में अपने कौशल का प्रयोग करते रहे हैं। रेणु ने इस रिपोर्ताज में जिस नाटक के आयोजन का जिक्र किया है उसमें सामाजिक विषमता और द्वंद्व का स्पष्ट संकेत मिलता है। पर ध्यान देने की बात यह है कि इस रिपोर्ताज में लेखक महज तटस्थ द्रष्टा की भूमिका में नहीं खड़ा है बल्कि अपने सरोकार के साथ मौजूदगी दर्ज कराता है। 'पंचायती पेट्रोमैक्स गुल हो जाए - यह हँसने की बात नही' के माध्यम से रेणु की पक्षधरता सामने आ जाती है। यह एक लेखक की ईमानदारी और बुनियादी जरूरत का प्रमाण माना जा सकता है। 'एकलव्य के नोटस' में दलितों की पीड़ा और जिजीविषा साकार हो उठी है। ऐसा रेणु की अतिशय संवेदनशीलता और मानवीय चेतना के कारण संभव हो पाया है। समाज के संबंधों और तनावों को इतनी गहराई से उजागर करने वाला यह रिपोर्ताज अपना विशेष महत्व रखता है। 'इन रपटों को पढ़ते हुए रेणु से एक और साक्षात्कार होता है - ताजा सरोकारों और चिंताओं वाले रेणु से, धड़कते और प्रतिक्रिया करते रेणु से।' (सुरेन्द्र चौधरी - फणीश्वरनाथ रेणु)

'एकलव्य के नोट्स' में एक भावधारा अंतर्निहित है - वह है मुक्ति की आकांक्षा। नाटक को अपने बलबूते पर मंचित करने का संकल्प दलितों की मुक्ति की संकल्पना से जुड़ा हुआ है। सामाजिक दौड़ में पिछड़ गए साधारण लोगों की कथा इस रिपोर्ताज में कही गई है। रेणु के मनोजगत में क्रांति की जो अवधारणा पल रही थी। उसमें गाँव और शहर के भेद को मिटाने के साथ-साथ समाज के दमित-शोषित वर्ग की इच्छा-आकांक्षाओं और सपनों को साकार करने की बात भी निहित थी। यही कारण है कि 'एकलव्य के नोट्स' में दलितों द्वारा नाटक के आयोजन को सवर्णों द्वारा छिन्न-भिन्न किए जाने पर रेणु अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने से नहीं चूकते। कहना न होगा कि यह रिपोर्ताज दलित-चेतना के उभार के साथ-साथ उनकी आंतरिक पीड़ा को मार्मिक ढंग से उभारता है। दलितों की इस पीड़ा में रेणु की संवेदना भी शामिल है।

9.5.2 भाषा-शैली

फणीश्वर नाथ रेणु भाषा के कुशल कारीगर हैं। अपने कथ्य के अनुरूप वे भाषा को, जैसा चाहते हैं, रूप देने में माहिर हैं। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' जैसे उपन्यासों में रेणु ने अपनी भाषिक क्षमता का भरपूर परिचय दिया है। इनमें मिथिला की अमराइयों में कोयल की मीठी तान प्रायः सुनाई पड़ जाती है। रेणु की भाषा में वह समूचा प्रांतर (स्थान विशेष) बोलता दिखाई पड़ता है जिसे उन्होंने अपने कथ्य का माध्यम बनाया है। आंचलिकता रेणु की विशेषता है। कहना न होगा कि उनकी यह पहचान उपन्यास, कहानी, रिपोर्ताज और यात्रा-वृत्तांत सभी में परिलक्षित होती है। अन्य प्रादेशिक भाषाओं में लेखकों ने अपने-अपने अंचल के जीवन को उभारने की कोशिश की है लेकिन रेणु जैसी जीवन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति बहुत कम देखने को मिलती है। रेणु की निरीक्षण शक्ति इतनी तीव्र, आंतरिक और गहरी है कि समूचा जीवन क्षेत्र उनके द्वारा आत्मसात किया हुआ प्रतीत होता है। यही कारण है

उनकी रचनाओं में मिट्टी की धड़कन बहुत साफ-साफ सुनाई देती है। रेणु ने अपनी रचनाओं, खास तौर से उपन्यासों में गाँव के समस्त रूप, रंग, वेश, परिवेश, समस्या, चाल-चलन, दिनचर्या और लोक संस्कृति का बहुत सधा और आत्मीय प्रयोग किया है। दूसरे शब्दों में उन्होंने उस क्षेत्र विशेष की कथ्य भाषा, गीत, कथा-कहानी और मुहावरों का सीधा प्रयोग किया है जिससे वह समूचा अंचल जीवंत हो उठता है।

रेणु की रचनाओं में प्रकृति जिस वैभव के साथ चित्रित हुई है उससे यह कहने में कोई हिचक नहीं होती कि वे मनुष्य के साथ-साथ प्रकृति के बहुत निकट के प्रेमी रहे हैं।

रेणु ने स्थानीय जनभाषा का जमकर इस्तेमाल किया है। इस तरह के प्रयोग से स्थानीय मानसिकता ज़्यादा स्पष्ट होकर उभरती है। स्थानीय भाषा के सहज और प्रभावशाली प्रयोग ने रेणु की प्रखर प्रतिभा का भरपूर परिचय दिया है।

यह अलग बात है कि रेणु ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में जनभाषा का जितना इस्तेमाल किया है उतना अन्य विधाओं में नहीं। फिर भी गद्य की अन्य विधाओं में उन्होंने इनकी सीमाओं एवं प्रकृति का ख्याल करते हुए जनभाषा के माध्यम से प्राण फूंकने की कोशिश की है। जिन शब्द-विन्यासों, लोकोक्ति, मुहावरे, दोहे, गीत आदि को रेणु ने अपने अंचल के जनजीवन से उठाया है, वह उन जैसे गहरी अनुभूति सम्पन्न लेखक के लिए ही संभव है। रेणु जीवन से प्यार करते हैं। वे जीवन से जुड़े तमाम पक्षों को गहरी सहानुभूति के साथ उभारते हैं। इस तरह जन जीवन के साथ रेणु का संबंध बहुत आत्मीय हो गया है। रेणु की भाषा एक तरफ जीवन जीने की उनकी अपनी विशिष्टता से बनी है तो दूसरी ओर इलाके की भौगोलिक महिमा से। अनेक तरह की कथ्य भाषा मिथिला की परंपरा से घुल मिलकर एक नई भाषा का रूप ग्रहण करती है। रेणु स्वयं नेपाली, मैथिली, बांग्ला, हिंदी, संथाली और पूर्णिया की कथ्य-भाषा पर अधिकार रखते थे। अतः उनके लिए पात्रों की मानसिकता के अनुरूप भाषा चुनने में कोई कठिनाई नहीं थी। 'यह आकस्मिक नहीं था कि रेणु जी की इस समग्र मानवीय दृष्टि को अनेक जनवादी और प्रगतिशील आलोचक संदेह की दृष्टि से देखते थे। कैसा है यह अजीब लेखक जो गरीबी की यातना के भीतर भी इतना रस, संगीत, इतना आनंद छक सकता है, सूखी-परती जमीन के उदास मरुस्थल में सुरों, रंगों और गंधों की रासलीला देख सकता है। सौंदर्य को बटोर सकता है, आँसुओं को परखता है, किंतु उसके भीतर से झाँकती धूल-धूसरित मुस्कान को देखना नहीं भूलता, एक सौंदर्यवादी की तरह नहीं, जो सुंदरता को अन्य जीवित तत्वों से अलग करके उनका रसास्वादन करता है।' (निर्मल वर्मा)

रेणु के लेखन में एक आनन्द समाया हुआ होता है। वे रूप, रस, गंध, स्पर्श और लय को बाँधते हैं - जीवन की लय में। रेणु भाषा के पारखी थे। उनका समूचा साहित्य इसका प्रमाण है। वे ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं कि सारे प्रसंग जीवंत हो उठते हैं। उनमें एक तन्मयता है - कबीर, मीरा, जयदेव, विद्यापति की तरह। राग-बिराग का पूरा आत्मिक संसार है।

'एकलव्य के नोट्स' में 'प्रांपटिंग', 'ड्रॉप', 'डायलाग', 'सीन', 'ह्यूमन डिग्निटी' जैसे अंग्रेजी के शब्द भी प्रयोग में लाए गए हैं। इन शब्दों का प्रयोग रिपोर्ताज के अंतिम अंश में हुआ है जहाँ लेखक ने दीवाना जी के नाटक 'प्यार का बाजार' को मंचित करने की तैयारी का जिक्र किया है।

गाँव वालों का एक-दूसरे पर व्यंग्य करने का चित्र खींचते हुए रेणु ने अक्षरों के बीच काफी जगह दी है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि इन शब्दों को खींचकर बोला गया है।

'भूमिहार पुत्रों ने ब्राह्मण समाज के एकांकी करने वाले नौजवानों पर उसी समय से व्यंग्य करना शुरू किया है। ब्राह्मण टोली के एकांकी के एक पात्र की नकल उतारकर लगीना सिंह आज भी बताते हैं - पारसी कंपनी वालों की तरह - 'दो-ए-ए-ए-वी-वी-द-नू-ई-ज-ली-ऊ-नी-का-क्या-आ-आ-दे-स्-है-ए।' फिर आवाज पतली बनाकर तुरंत ही 'उत्तर' जड़ देते हैं - 'स-ब-ऽऽसे-स-है (लम्बी आह लेकर)।'

रेणु भाषा को जनता की सुविधा के अनुरूप ढाल देते हैं। गाँव की सामान्य अशिक्षित जनता अगर 'बाउंड्री' का उच्चारण 'बौंडोरी' के रूप में करती है तो रेणु को इस पर कोई आपत्ति नहीं है। चरित्र का चरित्तर अथवा चलित्तर भी हो जाये तो उन्हें कोई परेशानी नहीं है। वे जानते हैं कि गाँव का अनपढ़ आदमी 'श्रवण' को सरवन ही कहेगा। लेकिन प्रकृति के बारे में बताते हुए रेणु कहीं-कहीं तत्सम शब्दावली का मनोरम प्रयोग करने से भी बाज नहीं आते। उदाहरण के लिए - 'अक्षरशः सत्य है उनका कथन।'

'एक विशाल आँधी की प्रतीक्षा में क्षयिष्णु समाज, समाज के गाँव, गाँव के लोग खड़े हैं।'

'उसके मन-सरोवर में तैरता हुआ हंस आज भी मोती चुगता है।

रेणु की विशेषता यह है कि वे प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। अनपढ़ों के बीच बोलचाल की भाषा और शिक्षितों के बीच तत्सम प्रधान भाषा का प्रायः इस्तेमाल उनके यहाँ देखा जा सकता है। हास्य-व्यंग्य रेणु के लेखन का अभिन्न अंग है। इसके माध्यम से वे लोकरुचि को अभिव्यक्त करते हैं। विभिन्न भाषाओं के शब्दों को उन्होंने थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ हिंदी में प्रचलित कर दिया है। इससे हिंदी समृद्ध ही हुई है। लेकिन उन्होंने जिन शब्दों का प्रयोग किया है उन्हें आंचलिकता के रंग में डुबो दिया है। नामों के व्यवहार में भी वे इसी तरह कथ्य भाषा या आंचलिकता के स्वरूप को बनाए रखते हैं, हालाँकि रिपोर्ताजों में इस तरह के प्रयोग कम मिलते हैं। पर इतना जरूर है कि रेणु ने ऐसे शब्दों का प्रयोग इलाके की विशिष्टता और जनजीवन की नैसर्गिक प्रवृत्ति को रेखांकित करने के लिए ही किया है।

'एकलव्य के नोट्स' में लोकजीवन की एक छवि देखने योग्य है - 'सेमल के फूल को देखकर हवा भी बावरी हो गई है। चक्की पीसती हुई लड़कियाँ गाती हैं - सेमली के बगिया अगिया लागी रही।

कहना न होगा कि रेणु ने अपने रिपोर्ताजों में जितनी गंभीरता और तल्लीनता का परिचय दिया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वे जन, अंचल के साथ-साथ भाषा को भी प्यार करते रहे, उनसे आत्मीयता स्थापित करते हैं। वे लोक रस को कहीं भी भंग नहीं होने देते। लोक से सम्पृक्ति या जुड़ाव ही उनकी भाषा का प्राण है।

बोध प्रश्न 3

1) रिपोर्ताज लेखन में रेणु की विशेषताओं पर अपने मत व्यक्त कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

9.6 सारांश

'एकलव्य के नोट्स' रेणु का एक महत्वपूर्ण सारगर्भित रिपोर्ताज है। इसमें उन्होंने सदियों से शोषित पीड़ित दलित समुदाय की राजनीतिक-सामाजिक चेतना को व्यक्त करने का प्रयास किया है। यही नहीं, इस रिपोर्ताज में रेणु ने यह भी दिखाने की कोशिश की है कि दलित में आ रही स्वाभिमान की भावना एवं अस्तित्व और पहचान के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहने के कारण सवर्ण समाज में एक तरह की बेचैनी का भाव दिखाई देने लगा है। जिस पर सवर्णों का परंपरा से प्राप्त अधिकार बना हुआ था, आजादी के बाद, उनपर दलितों की बढ़ती दावेदारी सवर्णों की बेचैनी का प्रमुख कारण है। शिक्षा, राजनीति एवं प्रशासन में ऊँची जातियों का जो वर्चस्व बना हुआ है, उसे दलितों ने कड़ी चुनौती देनी शुरू कर दी है। दूसरे शब्दों में, दलित समुदाय के लोगों ने इन वर्जित क्षेत्रों में जैसे-जैसे घुसपैठ करना शुरू किया वैसे-वैसे सवर्ण जातियों के साथ उनका टकराव भी बढ़ा है। इस प्रकार सवर्णों के एकाधिकार और प्रभुत्व को दलितों की तरफ से जो चुनौती मिल रही है उससे इन दोनों समाजों के बीच राजनीतिक स्तर पर दूरियाँ भी बढ़ी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ एक तरफ दलितों में अपनी अस्मिता और अधिकार को लेकर जागरूकता आई है वहीं दूसरी तरफ सवर्ण अपने एकाधिकार और प्रभुत्व को लेकर चिंतित और बेचैन हैं। वर्चस्व की इस लड़ाई के सूत्र 'एकलव्य के नोट्स' में निहित हैं। रेणु दलितों, उपेक्षितों और स्त्रियों के प्रति बेहद संवेदनशील लेखक हैं।

इस रिपोर्ताज का दूसरा कथा सूत्र है समाज के धनी, संपन्न वर्गों, अधिकारियों तथा राजनेताओं द्वारा समाज का शोषण। इस शोषण में सबकी मिलीभगत है। विद्यालय, पुस्तकालय की स्थापना से लेकर भूदान जैसे समाज कल्याण की योजनाओं के कार्यान्वयन में सर्वत्र भ्रष्टाचार का प्रकोप है। रेणु जी इसे चित्रात्मक ढंग से पात्रों और संवादों के माध्यम से उजागर करते हैं।

रिपोर्ताज का तीसरा कथा सूत्र है सेमल वन और एकलव्य जी का मुर्गी पालन। रेणु जी की पर्यावरण संबंधी चिंता, लेखकीय वृत्ति की निरर्थकता, साम्यवाद का विस्तार आदि इस प्रकरण में नाटकीय रूप से उभरे हैं।

इस रिपोर्ताज के अंतिम हिस्से में रेणु का मानवीय रूप तेजी से उभरता है और कुछ देर ठहर कर पाठक को हर समस्या पर सोचने के लिए विवश करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रेणु का यह रिपोर्ताज उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है और प्रभाव एवं उद्देश्य की दृष्टि से पूरी तरह सफल प्रतीत होता है।

9.7 शब्दावली

जिजीविषा	:	जीने की इच्छा
कुक्कुट	:	मुर्गी
डिसेंट्री	:	पेचिश
बँटैयादार	:	वह व्यक्ति जिसे बँटाई में जमीन मिली हो। बँटैयादार खेती कर मालिक को लगान देता है।
अरज	:	याचना, मिन्नत
जिबह होना	:	काटा जाना

बावरी	:	दीवानी
आफ़ताब	:	सूरज
ज़रीब	:	ज़मीन नापने की जंजीर 'करीब 55 मीटर लंबी दूरी एक ज़रीब है'
टंडैल	:	कामगार मजदूर
तनाजा	:	झगड़ा, विरोधी दावा
चौहद्दी	:	भूमि के चारों तरफ (हद) वाले
पुख्ता	:	ठोस, पक्की
गहो	:	पकड़ो
तसदीक	:	पुष्टि, प्रमाण
बेदखली	:	निकाल बाहर करना, जमीन के अधिकार से वंचित करना
फसलजब्ती	:	फसल को जब्त कर लेना
पाँखें	:	पंख
कलरव	:	शोर
नवधनाढ्य	:	नयी अमीरी वाले

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) रिपोर्ताज की प्रमुख विशेषताएँ

   क) रिपोर्ताज को मर्मस्पर्शी बनाने में कथातत्व का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

   ख) इसमें किसी घटना के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आयामों को कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

   ग) छोटी-छोटी घटनाएँ महत्वपूर्ण चित्रों का रूप ग्रहण करती हैं।

   घ) घटनाओं का लेखक से साक्षात्कार होने के कारण रिपोर्ताज में विश्वसनीयता अधिक होती है।

2) क) फ्रेंच

   ख) कला और संवेदना

   ग) 1936

   घ) रोमांचक, आतंककारी या भीषण घटना, युद्ध, अकाल, बाढ़, सूखा आदि।

बोध प्रश्न 2

1) क) नाटक के मंचन में उच्च वर्ग और दलित वर्ग का संघर्ष

   ख) बिहार में जमीन की चकबंदी

   ग) सेमल वन और मुर्गा पालन

2) क) यह उक्ति जनता में किसी व्यक्ति की है। इसका तात्पर्य है कि जो व्यक्ति शासक पार्टी से हैं, हर काम (गलत या सही) करवा सकते हैं। सरकारी अधिकारियों के नियम सब बेमानी हैं।

ख) यह ब्राह्मण टोली के मंत्री जी का कथन है, जो दलित वर्ग के नाटककारों को संबोधित है। इस कथन में छल है क्योंकि उच्च वर्ग के लोग दलितों के नाटक में घुसकर उसे छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं।

ग) यह छित्तन बाबू का कथन है, जो बिकू बाबू के खिलाफ है। स्वयं छित्तन बाबू पुस्तकालय को हड़पकर बैठे हैं। इस उक्ति में लेखक यह प्रकट करता है कि समाज के महारथी लूटपाट में शामिल हैं, लेकिन अपना दोष छिपाने के लिए दूसरों पर आरोप मढ़ देते हैं।

घ) एम.ए. पास नौजवान ने सेमल के पेड़ उद्योग को न बेचने का इरादा बताते हुए हाईकोर्ट में यह अर्जी दी है। इस उक्ति में लेखक की पर्यावरण संबंधी चिंता स्पष्ट हो रही है।

बोध प्रश्न 3

इस रिपोर्ताज की तीन प्रमुख अंतःकथाओं के संदर्भ में वस्तु की दृष्टि से निम्नलिखित की चर्चा कीजिए

समाज की उथल-पुथल का चित्रण। वर्ग विभेद के प्रति विद्रोह

भारतीय किसान की जिजीविषा और सहनशीलता

लोकतंत्र की प्रधानता

राजनीतिक नेताओं की पतनशीलता

पर्यावरण के प्रति सजगता

इसकी भाषा-शैली की चर्चा कीजिए।

कुल उत्तर एक पृष्ठ में हो, पूरी इकाई पर आधारित हो।

इकाई 10 यात्रा-वृत्तांत (तिब्बत : ल्हासा से उत्तर की ओर)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 प्रमुख यात्रा-वृत्तांत

10.3 यात्रा-वृत्तांत की विशेषताएँ

10.4 यात्रा-वृत्तांत और अन्य विधाएँ

10.4.1 संस्मरण और रिपोर्ताज

10.4.2 यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज

10.5 यात्रा-वृत्तांत-लेखन में राहुल सांकृत्यायन का स्थान

10.6 राहुल जी के यात्रा-वृत्तांत का पठन

10.7 तिब्बत : ल्हासा से उत्तर की ओर : विश्लेषण

10.7.1 प्रतिपाद्य

10.7.2 भाषा-शैली

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- यात्रा-वृत्तांत के बारे में जान सकेंगे;
- यात्रा-वृत्तांत की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे;
- यात्रा-वृत्तांत की अन्य विधाओं से भिन्नता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- राहुल सांकृत्यायन की रेडिङ् की यात्रा के वर्णन का आस्वादन कर सकेंगे और
- प्रस्तुत यात्रा-वृत्तांत के माध्यम से लेखक के साहस और जिज्ञासा का अनुमान लगा सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

यात्रा-साहित्य मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि करता है। लेखक अपनी यात्रा-कृतियों द्वारा देश-विदेश के दृश्यों और रीति-रिवाजों आदि से गहरा परिचय करवाता है। साथ ही इससे मनोरंजन भी होता है। यात्रा-वृत्तांत मनोरंजन और ज्ञानार्जन के अतिरिक्त युवाओं को यात्रा के लिए प्रेरित भी करता है। दरअसल, अनेक ऐसे सांसारिक अनुभव हैं जो बिना यात्रा के अर्जित नहीं किए जा सकते। इसलिए यात्रा-वृत्तांतों को लिखने की परंपरा चल पड़ी है। इनके अध्ययन से पाठक घर बैठे लेखक के अर्जित ज्ञान का अनुभव करता है। इस तरह

इतिहास और भूगोल के विषय में जहाँ उसके ज्ञान का विस्तार होता है वहीं उसकी रुचि भी परिष्कृत होती है।

राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत संबंधी यात्राओं का उद्देश्य वहाँ की ऐतिहासिक सामग्री की खोज एवं बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन है। तिब्बत यात्रा का उद्देश्य वहाँ के साहित्य के गंभीर अध्ययन तथा उससे भारतीय एवं बौद्ध धर्म संबंधी ऐतिहासिक सामग्री एकत्र करना है। अपनी ल्हासा यात्रा का महत्व बताते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि, ''150 के लगभग चित्रपट तथा तिब्बत, मंगोलिया, सायबेरिया तक में छपी और लिखी पुस्तकों का संग्रह किया।'' इस तरह तिब्बत संबंधी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म संबंधी पुस्तकों का संग्रह करना था। इसके अलावा राहुल ने अपनी यात्राओं के दौरान पुरातात्विक महत्व की सामग्री की खोज पर भी ध्यान केंद्रित किया।

मनुष्य ने अभिव्यक्ति के लिए नए-नए रूपों की तलाश की। रूप की इसी तलाश और प्रयोग से आधुनिक गद्य की अनेक विधाओं का जन्म हुआ। कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक के अलावा आत्मकथा, जीवनी, डायरी, संस्मरण, रिपोर्ताज भेट-वार्ता व्यंग्य जैसी अनेक विधाओं का विकास हुआ। यात्रा-वृत्तांत भी इन्हीं में से एक है जिसमें मनुष्य के भोगे हुए यात्रा के अनुभव को कलात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। यहाँ कल्पना के लिए ज्यादा गुंजाइश नहीं होती। इसमें बीते हुए यथार्थ का वर्णन होता है। यात्रा के दौरान जिन व्यक्तियों से मुलाकात होती है उनका चित्रण स्वाभाविक रूप में होता है। यात्रा में स्थान बदलने की क्रिया महत्वपूर्ण होती है। यात्रा के अनेक कारण हो सकते हैं। कभी जीविकोपार्जन के लिए तो कभी शैक्षणिक दृष्टि से, ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों से अवगत होने के लिए व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान का चक्कर लगाता रहता है। प्रकृति के सुंदर मनोहरी रूप ने भी मनुष्य को अपनी ओर खींचा। फलतः उसने नदियों, पहाड़ों और जंगलों की ओर रुख किया। प्रकृति से जुड़ना भी मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम है। प्रकृति की सुंदर छवि को निहारने के लिए वह दुर्गम स्थलों की यात्रा पर निकल पड़ा। जीवन के बदलते स्वरूप ने भी यात्रा को बढ़ावा दिया। सांस्कृतिक आदान-प्रदान और राजनीतिक कार्यों के लिए मनुष्य को इधर-उधर जाना पड़ा। समय के साथ-साथ यात्रा-वृत्तांत में भी परिवर्तन हुआ। शुरू में इसे साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त करने लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। लेकिन आज यह साहित्य की महत्वपूर्ण विधा बन गई है और आलोचकों का ध्यान खींचने में भी सफल सिद्ध हुई है।

यूं तो मनुष्य अनादि काल से यात्रा करता आ रहा है। अपने संपर्क में आने वालों को वह इन यात्राओं के बारे में निश्चित रूप से सुनाता रहा होगा किंतु भारतीय साहित्य में यात्रा-वृत्तांत लिखने की कोई सुदीर्घ परंपरा नहीं मिलती। आधुनिक साहित्य में ही इसका सूत्रपात हुआ हिंदी में यात्रा-वृत्तांत लिखने की शुरुआत भारतेंदु युग से मानी जा सकती है। 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' आदि शीर्षकों से लिखे गए यात्रा-वृत्तांतों में भारतेंदु ने बहुत ही सजीव और रोचक वर्णन किया है। तब आलोचकों ने इन यात्रा-वृत्तांतों को निबंध के अंदर समाविष्ट कर लिया था क्योंकि यात्रा-साहित्य के रूप में कोई स्वतंत्र विधा विद्यमान नहीं थी लेकिन भारतेंदु के बाद यात्रा-वृत्तांत की अखंड परंपरा चल पड़ी और आज यह एक समृद्ध गद्य-विधा के रूप में दिखाई पड़ रही है।

10.2 प्रमुख यात्रा-वृत्तांत

भारतेंदुकालीन यात्रा-वृत्तांतों में मुख्यतः जिनका उल्लेख होता है उनके नाम हैं - पं. दामोदर शास्त्री का 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' (1885), देवी प्रसाद खत्री का 'रामेश्वर यात्रा' (1893) और

'बदरिकाश्रम यात्रा' (1900), शिव प्रसाद गुप्त का 'पृथिवी प्रदक्षिणा' (1914), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का 'मेरी कैलाश यात्रा' (1915) और 'मेरी जर्मन यात्रा' (1926), कन्हैयालाल मिश्र का 'हमारी जापान यात्रा' (1931) और पंडित रामनारायण मिश्र का 'यूरोप यात्रा में छः मास' (1932)। इन यात्रा-वृत्तांतों के माध्यम से हिंदी में बसने वाली विशाल जनता के विकसित होते हुए मानसिक क्षितिज की सूचना मिलती है। मध्यकालीन रूढ़ियों एवं रीतियों से प्रभावित पंडित मंडली का समुद्रपारीय विरोध जगजाहिर है किंतु इन संस्कारों से मुक्त होकर जिन विद्वान यायावरों ने यूरोप समेत अन्य देशों की यात्राएँ कीं, वह निश्चित रूप से उनकी उदारता, कर्मठता और ज्ञान के प्रति सहज ललक का परिचायक है। शिक्षा के विकास और यातायात के साधनों में वृद्धि के साथ-साथ यात्रा के प्रति लोगों का रुझान भी बढ़ता गया। हिंदी के कुछ लेखकों में ऐसे भी नाम शामिल हैं जिन्हें जन्मजात सैलानी प्रकृति के यायावर कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, भगवतशरण उपाध्याय, दिनकर, नागार्जुन और भदन्त आनंद कौशल्यायन जैसे नाम यायावरी के क्षेत्र में काफी मशहूर हैं। इन्होंने यात्रा-साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में 25 मास (राहुल सांकृत्यायन), पैरों में पंख बांधकर, उड़ते-उड़ते चलो (रामवृक्ष बेनीपुरी), लोहे की दीवार के दोनों ओर (यशपाल), अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली (अज्ञेय), कलकत्ता से पेकिंग, सागर की लहरों पर (भगवतशरण उपाध्याय), देश-विदेश (दिनकर), गोरी नजरों में हम (प्रभाकर माचवे) यात्रा-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। परवर्ती लेखकों में मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक', ब्रजकिशोर नारायण कृत 'नंदन से लंदन', प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पार उतरि कहँ जइहैं', डॉ० रघुवंश कृत 'हरी घाटी' तथा धर्मवीर भारती लिखित 'यादें यूरोप की' आदि रचनाएँ काफी चर्चित रही हैं। शुरुआती दौर में यात्रा-वृत्तांत स्वभावतः परिचयात्मक और स्थूल वर्णन प्रधान थे। विदेश जाने वाले यात्री पानी के जहाज का ऐसा वर्णन करते थे, मानो किसी राजप्रसाद का हाल बता रहे हों। उनके वर्णन में आमतौर से बाल सुलभ उल्लास और उत्साह रहता था, फलस्वरूप उनकी दृष्टि आकारों पर इतनी अधिक थी कि अंतरंग प्रायः उपेक्षित हो जाता था। भारतेंदु ने अपने यात्रा संस्मरण बहुत ही रोचक शैली में लिखे लेकिन उन्हें निबंध के रूप में ही मान्यता प्राप्त हुई। मौलवी महेश प्रसाद का ग्रंथ 'मेरी ईरान यात्रा' सरल भाषा और आत्मीय शैली में लिखी गई है। शुरू के लेखकों में विषय का मोह और महत्व अधिक था। विदेश यात्राएँ प्रायः यात्रा-वृत्तांत का आधार बनती थीं। भगवानदीन दुबे ने सरस्वती में कई ऐसे यात्रा-वृत्त प्रकाशित किए।

हिंदी लेखकों में राहुल सांकृत्यायन ने यात्रा-वृत्तांतों में इतिहास, भूगोल, समाज एवं संस्कृति की अंदरूनी तहों तक पहुँचने की कोशिश की है, हालाँकि उनकी शैली में इतिवृत्तात्मकता अधिक है। दरअसल, यात्रा-वृत्तों में हम दृश्यों, स्थितियों और उनके अनुकूल-प्रतिकूल लेखक की मानसिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ परिचित होते चलते हैं। इसलिए लेखक की रुचि, संस्कार, संवेदनशीलता और मानसिकता के अनुरूप यात्रा-वृत्तांतों का स्वरूप भी अलग-अलग ढल जाता है।

पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में हिंदी का यात्रा-साहित्य काफी समृद्ध हुआ है। हमारे यहाँ के साहित्यकारों को जैसे-जैसे विदेश यात्रा का अधिक से अधिक मौका मिला है, यात्रा-वृत्तांत में उसी अनुपात में वृद्धि होती गई है। बलराज साहनी, कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर और रामदरश मिश्र के नाम यात्रा-वृत्तांत के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। रूसी सफरनामा (बलराज साहनी), खंडित यात्राएं (कमलेश्वर), ज्योतिपुंज हिमालय (विष्णु प्रभाकर) और तना हुआ इंद्रधनुष (रामदरश मिश्र) आदि इस विधा की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ मानी जा सकती हैं।

यात्रा-वृत्तांत लेखक के साथ सहयात्रा करते हुए पाठक कहीं कविता, कहीं संस्मरण, कहीं कहानी तो कहीं चित्र-दर्शन का अनुभव करता चलता है। कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर और रामदरश मिश्र के यात्रा-वृत्तांतों में कथा रस का पूरा आनंद मिलता है। आज के यात्रा-वृत्तांत में वस्तु वर्णन, दृश्यांकन, बिंबविधान और मनःस्थिति रेखांकन की क्षमता बढ़ गई है। देश-विदेश की सांस्कृतिक उपलब्धियों का साक्षात्कार इनके माध्यम से आसानी से किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

1) राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांतों के नाम बताइए।

.....

2) जहाँ शुरु के यात्रा-वृत्तांत ..... थे, आजकल के यात्रा-वृत्तांतों में लेखक की... ..... का प्रमुख उद्देश्य है।

10.3 यात्रा-वृत्तांत की विशेषताएँ

साहित्य को किसी बँधे-बँधाए साँचे में तो नहीं बाँधा जा सकता फिर भी उसकी प्रत्येक विधा की अपनी कुछ खास विशेषताएँ होती हैं जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती हैं और उन्हें एक विशेष पहचान देती हैं। यात्रा-वृत्तांत में स्थान और तथ्यों के साथ-साथ आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता और रोचकता का विशेष महत्व होता है।

स्थानीयता

यात्रा-वृत्तांत में लेखक का उद्देश्य स्थान-विशेष के संपूर्ण वैभव, प्रकृति, रस्मों-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, मनोरंजन के तरीके तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण का चित्रण करना होता है। यह लेखक पर निर्भर करता है कि वह इनमें से किस तत्व को ज्यादा प्रमुखता देता है। किसी प्रदेश-विशेष की यात्रा में उसे जो चीज़ सबसे ज्यादा प्रभावित करती है, आमतौर से उस तत्व को वह प्रधानता देता है। इसलिए उसके चित्रण में कहीं विवरण तो कहीं भावों की प्रधानता होती है। कभी-कभी वह तुलनात्मक पद्धति का सहारा भी लेता है। प्रकृति-सौंदर्य के चित्रण में उसकी शैली भावात्मक हो उठती है। यदि वह स्थान-विशेष को जल्दी में देखता है तो उसकी शैली वर्णनात्मक हो जाती है। अपने देश या प्रांत की अन्य प्रांत या विदेश से तुलना करते समय लेखक तुलनात्मक शैली का सहारा लेता है।

तथ्यात्मकता

यात्रा-वृत्तांत में लेखक की कोशिश होती है कि यात्रा के दौरान उसने जो कुछ देखा है उससे संबंधित तथ्यों का विवेचन कर दे। लेकिन ऐसा करते समय वह भूगोल और इतिहास-लेखन की शैली का सहारा न लेकर कथा-साहित्य की सहज, सरल भाषा शैली को अपनाता है जिससे वृत्तांत में रोचकता बनी रहे।

आत्मीयता

याता-वत्तांत में आत्मीयता का भाव होना जरूरी है। यात्रा के दौरान लेखक स्थानों, स्मारकों, दृश्यों आदि को इतिहास और भूगोल के रूप में नहीं देखता, बल्कि वह उनसे आत्मीय संबंध स्थापित करता है ताकि पाठक को पढ़ते समय अपनापन और सच्चाई की अनुभूति हो सके। इसमें लेखक यथातथ्य वर्णन से बचने की लगातार कोशिश करता है ताकि वृत्तांत, उबाऊ, नीरस और इतिहास न बनने पाए। दृश्यों अथवा स्थितियों के साथ आत्मीय रिश्ता

ही पाठक को वृत्तांत से जोड़ने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आत्मीयता ही उसे गाइड बनने से रोकती है।

वैयक्तिकता

यात्रा-वृत्तांत में वैयक्तिकता की जरूरत अन्य विधाओं की तुलना में कहीं ज्यादा महसूस की जाती है। खान-पान, वेश-भूषा, पारिवारिक सुख-सुविधा का अहसास यात्रा के दौरान कुछ ज्यादा ही होता है क्योंकि व्यक्ति उस समय अपने आत्मीय जनों से दूर होता है। यात्रा के दौरान आदमी अपरिचित लोगों के बीच रहता है जहाँ उसकी शक्ति और प्रतिभा से लोग वाकिफ नहीं होते, ऐसे में लेखक को अपने व्यक्तित्व से दूसरों को परिचित एवं प्रभावित करना होता है। इसलिए यात्रा-वृत्तांत में लेखक के व्यक्तित्व की प्रभावशाली छाप मौजूद रहती है।

रोचकता

यात्रा-वृत्तांत का सबसे अनिवार्य गुण रोचकता है। यह पाठक को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। यात्रा-वृत्तांत में रोचकता लाने के लिए लेखक किसी स्थान से जुड़ी लोक-कथा, दंत-कथा आदि का उल्लेख करता है। कभी-कभी वह अचानक होने वाली घटनाओं का वर्णन करता है तो कभी रोचक शीर्षक के समावेश से वृत्तांत की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है। यानी रोचकता को लेखक एक तकनीक के तौर पर इस्तेमाल करता है। इसमें मिथकों, प्रतीकों, अलंकारों और मुहावरों का भी प्रयोग किया जाता है। चित्रात्मक वर्णन भी इस विधा की एक खास विशेषता है। संवेदनशीलता न केवल स्वाभाविक बनाती है बल्कि इसे एक साहित्यिक कृति का रूप भी देती है।

इस प्रकार, यात्रा-वृत्तांतों में देश-विदेश के प्राकृतिक-दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौंदर्य-चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु-चित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिंबविधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है।' (हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी)

कहने का तात्पर्य यह है कि यात्रा के समय यायावर का साहस, उसकी संघर्षशीलता, स्वच्छंदता और अचानक आने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने की क्षमता उसे एक वीर नायक की-सी गरिमा प्रदान करती है और पाठक उसे प्यार करने लगता है।

10.4 यात्रा-वृत्तांत और अन्य विधाएँ

10.4.1 संस्मरण और रिपोर्ताज

संस्मरण और रिपोर्ताज यात्रा-वृत्तांत से मिलती-जुलती विधा मानी जाती है। कभी-कभी इन तीनों को एक ही मान लिया जाता है। इसलिए यहाँ इनका अंतर स्पष्ट करना जरूरी लगता है। संस्मरण में जहाँ स्थायी अथवा अमिट स्मृतियों का आकलन होता है, वहाँ यात्रा-वृत्तांत में सामयिक स्मृतियों को रेखांकित किया जाता है। इसमें वर्णित स्थान की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि विद्यमान होती है जबकि संस्मरण में इसके बिना भी काम चल जाता है। यात्रा-वृत्तांत में स्थानीयता, तथ्यात्मकता और वर्णन कौशल की प्रमुखता होती है जबकि संस्मरण में ऐसी अनिवार्यता नहीं होती।

10.4.2 यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज

जहाँ तक यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज में भिन्नता का प्रश्न है तो रिपोर्ताज लेखक को भी घटनाओं की जानकारी के लिए यात्रा करनी पड़ती है लेकिन उसका उद्देश्य यात्रा-वत्तांत की तरह सौंदर्यपरक और उन्मुक्त संवेदना की अभिव्यक्ति नहीं होता। रिपोर्ताज जहाँ घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है वहां यात्रा-वृत्तांत स्थिति और सौंदर्यपरक रचना के रूप में हमारे सामने आता है। रिपोर्ताज प्रायः अकाल, बाढ़, युद्ध, दंगे आदि आकस्मिक या महत्वपूर्ण घटना को पूरी संवेदना के साथ सामने लाते हैं। इन घटनाओं और उनसे जुड़े तथ्यों को एकत्र करने के लिए ही रिपोर्ताज लेखक घटना स्थल की यात्रा करता है। यानी उसकी यात्रा साधन है, साध्य नहीं। इसके विपरीत यात्रा-वृत्तांत लेखक की यात्रा उसके लिए साध्य होती है साधन नहीं। इसके केंद्र में यात्रा होती है, स्थान विशेष का वैभव होता है लेखक की प्रकृति विद्यमान रहती है। इस तरह यात्रा-वृत्तांत की रचना व्यक्ति या लेखक की प्रकृति और प्रवृत्ति पर बहुत हद तक निर्भर करती है।

बोध प्रश्न 2

1) यात्रा-वृत्तांत की तीन प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) यात्रा-वृत्तांत किन-किन उद्देश्यों से लिखे जा सकते हैं?

.....

.....

3) यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज में समानता और अंतर बताइए।

.....

.....

10.5 राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांत

यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि हिंदी लेखकों में राहुल सांकृत्यायन ने जितनी यात्राएँ की हैं उतनी किसी अन्य ने नहीं। उन्होंने यात्रा-वृत्तांत भी काफी लिखे हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि राहुल की यात्राएँ मनोरंजन के लिए नहीं होती थीं बल्कि उनके पीछे एक महत् दर्शन छिपा होता था। सन् 1926 में उन्होंने पहली लद्दाख यात्रा की थी। इस संबंध में उन्होंने लिखा है - ''मेरी लद्दाख यात्रा नाम से सन् 1939 में प्रकाशित यह वृत्तांत पहल कदमी का आख्यान नहीं और न किसी प्रकृति-निहारक कवि का वायवी दास्तान, बल्कि मेरठ से मुल्तान, डेरा गाजी खान, पुणछ रियासत, कश्मीर जोजला दर्रा होते हुए लद्दाख मार्ग की एक विजुअल रिपोर्ट।'' राहुल का यह यात्रा-वृत्तांत हिंदी साहित्य में अपना अनूठा सम्मान रखता है और इसमें दृश्यों का सजीव चित्रण भाषा के माध्यम से अनुपम आनंद की सृष्टि करता है।

यायावरी राहुल के जीवन का एक मिशन था। इसके पीछे उनकी जिज्ञासा वृत्ति थी। उनके यात्रा-वृत्तांतों में उस देश या स्थान के इतिहास-भूगोल की सम्यक जानकारी मिलती है। साथ ही लोकजीवन के आत्मीय चित्र भी उनके यहाँ आसानी से मिल जाते हैं। राहुल के यात्रा-वृत्तांतों में सामान्य जन, उनके रीति-रिवाज, धर्म आदि का बेबाक वर्णन मिलता है। उनमें सहज भाषा, मुहावरे और रेखाचित्र की मोहकता के साथ उस क्षेत्र के जीवन, परिवेश यानी आर्थिक-सामाजिक-सांस्कतिक परिस्थितियों को उजागर करने की अद्‌भुत क्षमता है।

राहुल सांकृत्यायन जन्मजात घुमक्कड़ थे और वे आजीवन घुमक्कड़ बने रहे। लगभग 40 वर्षों तक उन्होंने निरंतर यात्राएँ की। तिब्बत, रूस और हिमालय उनकी यात्राओं के आकर्षण-केंद्र थे। यात्राओं ने ही उन्हें एक लेखक के रूप में पहचान दी। उनका कहना है कि, ''कलम के दरवाजे को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया, इसलिए मैं इनका बहुत कृतज्ञ हूँ।'' उन्होंने अपनी यात्राओं के विविध, विचित्र व रोचक अनुभव यात्रा-वृत्तांतों में पिरोए हैं। उनके प्रमुख यात्रा-वृत्तांत हैं - तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी यूरोप-यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में पच्चीस मास, एशिया के दुर्गम भूखंडों में, लंका, चीन में क्या देखा, हिमालय-परिचय, जापान, दार्जिलिंग-परिचय आदि। डॉ० रघुवंश के अनुसार - ''राहुल जी ने यात्रा-साहित्य के लिए विभिन्न माध्यम अपनाए हैं, शायद उनसे अधिक इस विषय पर इतने विविध रूपों पर किसी ने नहीं लिखा है।'' दूसरे स्थान पर उन्होंने लिखा है कि, ''यात्रा का बहुत बड़ा आकर्षण प्रकृति की पुकार में है। यायावर वही है जो चलता चला जाए, कहीं रुके नहीं, कोई बंधन उसे कसे नहीं और वह जो दर्शनीय है, ग्रहणीय है, रमणीय है अथवा संवेदनीय है, उसका संग्रह करता चले।''

कहने का तात्पर्य यह है कि यात्रा-वृत्तांत में रचनात्मकता का विशेष महत्व है। राहुल के यात्रा-वृत्तांत पढ़ते हुए इसका भरपूर अनुभव होता है। राहुल सांकृत्यायन का यात्रा-साहित्य गुण एवं परिमाण (संख्या) दोनों दृष्टियों से प्रचुर एवं उच्चकोटि का है। देवीशरण रस्तोगी ने लिखा है कि, ''यात्रा-वर्णन लिखने वाले साहित्यिकों में राहुल का नाम सबसे आगे आता है। देश-विदेश के अनुभवों का जब वह वर्णन करते हैं तो उनकी शैली और अधिक रसात्मक हो जाती है। वास्तव में इस रसात्मकता का आधार उनका अनुभव रहता है।'' इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन का यात्रा-साहित्य एक बड़े उद्‌देश्य को लेकर लिखा गया है जिसमें वर्णित भूभाग का इतिहास-भूगोल, संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य, ज्ञान विज्ञान सभी का विविधआयामी चित्रण मिलता है।

यात्रा-वृत्तांत वर्णन प्रधान एवं प्रकृतिपरक गद्य-विधा है। प्रकृति वर्णन तो आमतौर से सभी विधाओं में पाया जाता है लेकिन यात्रा-वृत्तांत का मूल ढाँचा ही इस पर खड़ा होता है। इसमें कथातत्व लगभग न के बराबर होता है। यात्रा ज्ञान और शिक्षा का प्रमुख साधन है। इससे मनुष्य की बुद्धि का विस्तार होता है। उसका अनुभव संसार समृद्ध होता है। घुमक्कड़ी के बादशाह माने-जाने वाले राहुल सांकृत्यायन के अनुसार - 'मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़कर व्यक्ति और समाज के लिए कोई हितकारी नहीं हो सकता। क्योंकि लेखक यात्रा-वृत्तांत में वर्णित अपने अनुभवों से लोगों को ज्ञान-विज्ञान की एक दृष्टि प्रदान करता है और इस तरह साहित्य और समाज के लिए उसका लेखन महत्वपूर्ण योगदान साबित होता है।

साहित्य में उन्हीं को यात्रा-वृत्तांत का दर्जा दिया जा सकता है जिनमें लेखक की अपनी प्रकृति भी प्रतिबिंबित होती हो। यात्रा-वृत्तांत में लेखक की फक्कड़ता, घुमक्कड़ी वृत्ति, उल्लास, सौंदर्यबोध और ज्ञानार्जन की उत्कट-अभिलाषा परिलक्षित होनी चाहिए। लेखक के मन पर बाह्य जगत की जो भी प्रतिक्रिया होती है, जो भावनाएँ मन में उठती हैं, उसे वह गहराई के साथ व्यक्त करता है। इसीलिए यात्रा-वृत्तांत में संवेदना और अभिव्यक्ति का एक

कलात्मक संतुलन देखा जा सकता है। इसमें सौंदर्य भावना के साथ-साथ किसी वस्तु के अंदर तक प्रवेश करने की जो बेचैनी होती है, वही लेखक को सफल यात्रा-वृत्तांतकार बनाती है अर्थात् जिज्ञासा और शोधवृत्ति का यात्रा-वृत्तांत में विशेष महत्व होता है।

10.6 राहुल जी के यात्रा-वृत्तांत का पठन

अब तक आपने यात्रा-वृत्तांत की विशेषताओं के बारे में पढ़ा। इस इकाई में हम ल्हासा से रे-डिङ् की उनकी यात्रा के उद्देश्य और अनुभवों के बारे में पढ़ेंगे। वे कुछ अमूल्य हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में तिब्बत की यात्रा पर निकले हैं। उनके अनुभवों और यात्रा के परिणामों के बारे में उन्हीं के शब्दों में पढ़ेंगे। आइए, हम मूल पाठ का अध्ययन करें।

ल्हासा से उत्तर की ओर

प्रिय आनन्दजी,

ल्हासा
30.7.34

मालूम हुआ कि इधर दसवीं से तेहरवीं शताब्दी तक के कितने ही विहार हैं, जिनमें रे-डिङ् में जो निश्चित ही थोड़ी-सी तालपत्र की पुस्तकों के होने की बात बतलाई गई है, और संभावना औरों में भी है। वस्तुतः यही कारण है इधर आने का।

जब पुस्तक के लिए आना था, तो उसके लिए विशेष तैयारी करनी जरूरी थी। यद्यपि सभी पुराने मठों के लिए पुस्तकें दिखाने आदि के लिए भोट-सरकार से चिट्ठी मिलने वाली है, किंतु अभी उसमें कुछ देर थी, इसीलिए यह दो सप्ताह की यात्रा उसके बिना ही करनी पड़ रही है। हाँ, भोट के वर्तमान राजा रेङि.-रिम्पो-छे ने एक पत्र अपने रे-डिङ्, नट के लिए दे दिया है और शिकम की महारानी के भाई र-क-सा कुशो ने तग्-लुङ् के लिए चिट्ठी दी है। इसी तरह दो-तीन और चिट्ठियाँ मिल गई हैं। चिट्ठियों के बाद दूसरा प्रश्न था साथी सवारी का। कु-सिन्-शर के स्वामी साहु पूर्णमान ने अपने छह खच्चरों तथा खच्चर वाले को दे दिया। सवारी का प्रश्न तो इस प्रकार हल हो गया। रहा साथियों का - गे-शे के सिवा एक फोटोग्राफर की भी आवश्यकता थी। हमारा रोलैफ्लैक्स कैमरा पुस्तकें छापने से इनकार करता है। सौभाग्य से ल्हासा के फोटोग्राफर श्री लक्ष्मीरत्न ने चलना स्वीकार कर लिया। किंतु अभी एक और साथी को जैसे बने जरूर ही ले जाना था, क्योंकि हम ऐसे प्रदेश में जा रहे हैं, जहाँ संख्या और पिस्तौल-बंदूक ही हमारी रक्षा कर सकती है। हमारे खच्चरों के सरदार सो-नम्-ग्यल्-छन् (पुण्य-ध्वज) खाम् (पूर्वी-तिब्बत) के हैं, जहाँ की कहावत है - तुम अपने ही भरोसे पर जी सकते हो। उन पर पूरा भरोसा है। अपने राम तो हथियार बाँध ही नहीं सकते। हाँ, तो चौथे साथी जो मिले, उनका जन्म अम्-दो का है, जहाँ पर गोली-गट्ठा लेकर नब्बे-सौ आदमी मिल कर ही मंजिल तै कर सकते हैं, किंतु वे भी तलवार के धनी नहीं हैं। गेन्-दुन्-छों-फेल् (संघ धर्मवर्धन) यही उनका नाम है - अच्छे चित्रकार हैं तथा इतिहास और न्यायशास्त्र में अच्छा प्रवेश रखते हैं। कह-सुनकर उनके कंधे से भी एक सात गोली का पिस्तौल एवं कारतूसों की माला लटकाई गई। श्री लक्ष्मीरत्न को लोग नाती-ला के नाम से जानते हैं। उनकी नानी इन्हें नाती कहा करती थीं, ल्हासा पहँचने पर फरिश्तों ने इस नाम को यहाँ पहुँचा दिया, फिर ला (-जी) जोड़कर भोटवासियों ने उन्हें नाती-ला बना दिया। बुढ़ापे तक अब उन्हें नाती-ला ही रहना है। हाँ, तो नाती-ला को बहुत एतराज था - 'हमारी छाती पर बराबर मि-टि-कु (ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य स्मृति ज्ञानकीर्ति के नाम

से फर्जी बनवाई मिट्टी की छोटी मूर्ति) रहती है। हमारे ऊपर गोली नहीं लग सकती!' कहने पर उन्होंने पिस्तौल द्वारा परीक्षा कराने से इंकार कर दिया। खैर किसी तरह वे भी पिस्तौल लटकाने को राजी हुए।

सो-नम्-ग्यल्-छन् (उच्चारण सोनम् ग्यंज) ने कहा, कि छठे मास की 18वीं तिथि (30 जुलाई) ही को चलना अच्छा है, बीस को थम्-व (शून्य) आ जाएगा, और आगे भी साइत* अच्छी नहीं। इस प्रकार तैयारी करते-करते आज साढ़े आठ बजे ल्हासा से निकले। साथ में फेम्बो में चराई के लिए कुसिन्-शर् के बाकी छह खच्चर तथा उनका दूसरा आदमी था।

ल्हासा के बाद पहला घर तब्-ची का आया। यहीं भोट-सरकार की टकसाल तथा सैनिक कार्यालय है। पहले सिपाही भी थे, किंतु इधर अनावश्यक होने से उन्हें छुट्टी मिल गई है। तब्-ची से आगे पहाड़ की जड़ में हरे-भरे खेतों के बीच एक घर मिला। फिर दाहिनी ओर की कोने वाली उपत्यका में सहस्रों हरे-भरे खेतों की सीढ़ियों को छोड़ते, हम बाईं ओर नदी पार हो हल्की चढ़ाई चढ़ने लगे। एक फलहीन किंतु सुंदर बाग आया और तब्-ची से तीन मील आने पर बिजली-बत्ती की मा (लोक्-शुइ-आ-मा) हमें मिली। एक मामूली-से घर में पानी द्वारा पहिया घूम रहा है, और बिजली पैदा हो रही है। पानी तो इतना काफी है, कि उससे सारे ल्हासा को रोशन करके भी बिजली बच रह सकती है। उससे जरा ही ऊपर पानी पार कर कुछ नए, किंतु टूटे-फूटे मकान मिले। मालूम हुआ, बिजली देवी के लिए पहले अच्छे-अच्छे मकान बने थे, किंतु उन्हें वे पसंद न हुए और वे नष्ट हो गए, अब उनके लिए टूटी मँड़इया मिली है। असल में तो चाहिए था ज्योतिषी को फाँसी दे देना, क्योंकि उसने ऐसी बुरी साइत बताई। कुछ दूर और ऊपर चढने पर एक वृक्ष-रहित आखिरी गाँव मिला, और फिर गो-जोत (गो-ला), उससे चार-पाँच मील इस पार एक भी गाँव नहीं है। अब चढ़ाई भी कुछ कठिन थी और ऊँचाई के कारण हवा के पतलेपन से जानवरों का दम भी अधिक फूल रहा था। उपत्यकाएँ और उनकी बेटी-पोतियाँ सभी घन-नील-वसन* थीं, सिर्फ एक ओर बेरास्ते चलती पचास-साठ चमरियाँ (याक) काला दाग-सा बन रही थीं। यद्यपि दूर-दूर पर सफेद भेड़ों के झुंड चर रहे थे, किंतु न हिलने-डुलने के कारण वे जहाँ-तहाँ पड़े पत्थर ही जान पड़ते थे। पिछले दलाई लामा फेम्बो पधारे थे, इसलिए रास्ता बनाया गया था - बल्कि हमारे दोस्त कादिर भाई के कहने के मुताबिक तो उस पर मोटर चल सकती है। आपको शायद ल्हासा में दलाई लामा के लिए तीन मोटरों का आना मालूम है। उसी अपशकुन से - कुछ लोग कहते हैं - दलाई लामा को शरीर-त्याग करना पड़ा, और उनके कृपापात्र कुम्-भे-ला को, जो बिजली-मोटर जैसी खुराफातें सोचा करते थे, सर्वस्व से हाथ धो एक कोने में निर्वासित होना पड़ा।

रास्ता कुछ तो अच्छा जरूर है। गो-ला (यही इस जोत का नाम है) के ऊपर चढ़ कर पीछे की ओर मुड़ कर देखने पर ल्हासा नगरी सुदूर दिखाई पड़ी। दूरबीन से देखने पर वह कुछ और स्पष्ट हुई, किंतु उससे भी विचित्र, दूर, क्षितिज के अंत तक, सहस्रों पर्वत-शिखर थे, जो तिब्बत देश को सहस्रशीर्षा पुरुष बना रहे थे। दूसरी ओर देखने पर नीचे की उपत्यका में अनगिनत खेत बतला रहे थे कि फन्-यल् वस्तुतः 'हित का देश' है।

अब हरी उतराई शुरू हुई। जोत पर हम डेढ़ बजे पहुँचे थे, तब से साढ़े चार बजे तक उतराई ही उतराई रही। बिना वृक्षों के कुछ घर छोड़ कर हम और उतरे, और पा-या पहुँच गए। हमारे साथी संघ-धर्मवर्धन तभी से दिमाग लड़ा रहे हैं, कि पा-या का अर्थ क्या है। किंतु हमारा कहना है, पा-या का अर्थ पाया ही है - इतनी मेहनत से पाया, और बिना चोरों की गोली का शिकार हुए पाया।

नालन्दा (तिब्बत)

31.7.34

पा-या से साढ़े आठ बजे रवाना हुए। अब हमारे ही छह खच्चर साथ थे। एक लाल पहाड़ी के पार करते ही कितने स्तूपों से युक्त लड्.-थड्. (बैलों का मैदान) विहार दिखाई पड़ा। पा-या से यह स्थान दो मील से अधिक न होगा। हममें से किसी को यह बात मालूम न थी, अन्यथा कल यहीं आकर ठहरे होते। तिब्बत के प्राचीन मठों के अनुसार यह मठ पहाड़ के ऊपर न होकर मैदान में है। हमारे दीपंकर श्रीज्ञान (982-1054 ई०) के प्रशिष्य* पो-तो-पा-रिन्-छन्-ग्सल् (1027-1104 ई0) के शिष्य लङ्-थङ्-पा-दों-र्जे-सेङ्-गे (बज्रसिंह) ने इस विहार को बनवाया था। लङ्-थङ्-पा बडा ही गंभीर था। उसके बारे में कहा जाता है, कि उसे जन्मभर में सिर्फ तीन बार हँसी आई थी। संसार के दुःख को वह हर वक्त अनुभव करता था, उसके लिए हँसना हराम था। तीन बार में दो बार की ही बात हमें मालूम हो सकी - (1) एक छोटा बच्चा एक गेहूँ के दाने को उठाकर खाना चाहता था। प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं उठा सकता था। उसी समय उसकी नाक का पोटा बह कर दाने से लगा। दूसरे ही क्षण साँस के साथ दाना बच्चे के मुँह पर आ गया वह बड़ा प्रसन्न हो गया। यह देखते ही लड्.-थड्.-पा को भी हँसी आई। (2) किसी मंदिर की पूजा में एक बड़ा फीरोजा चढ़ा हुआ था। एक चूहा उसे चुराकर अपने बिल में ले जाना चाहता था, लेकिन वह उठाने में सफल न होता था। चूहा जाकर अपने दूसरे साथी को बुला लाया। फिर पहले चूहे ने अपने पैरों से फीरोजे को छाती में दबाया। साथी ने उसकी पूँछ को मुँह से खींच कर मदद दी। और इस प्रकार फीरोजा लेकर वे अपने बिल में चले गए। चूहे की इस सफलता को देखकर लड्.-थड्.-पा को भी हँसी आ गई।

पुराने विहारों की जैसी दुरवस्था आमतौर से तिब्बत में दिखाई देती है, वैसी ही इसकी भी है। जब हमारे खच्चर आँगन में गए, तो हमने समझा, शायद वह ठहराव होगा। किंतु बाद में मालूम हुआ कि यही लड्.-थड्. का बनवाया विहार है। बारहदरी में घुसते ही दीवार पर लिखा कर-छग (बीजक) दिखाई पड़ा। फिर हम मंदिर के भीतर गए। अस्तव्यस्त बहुत-सी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। सामने पिछली दीवार तथा बाईं ओर की दीवारों में क्रमशः मैत्रेय और बुद्ध की पीतल की मूर्तियाँ हैं। दोनों मूर्तियों के शरीर-मंडल सुंदर और पुराने हैं। मैत्रेय की बाईं ओर एक विचित्र-सी भारतीय लामा की मूर्ति देखी। पूछने पर मालूम हुआ, यह भारतीय सिद्ध फ-दम्-पा-सड्. स्-ग्येस् (सप्तिता बुद्ध, मृत्यु 1118 ई०) हैं। बहुत जीर्ण-शीर्ण मूर्ति है। सामने नीचे कुछ और भी छोटी-बड़ी पीतल की मूर्तियाँ हैं, जिनमें अधिकांश भारत से लाई गई हैं। यह उनकी नाक, भौंह, कम चौड़ा मुँह, सुंदर छाती और कमर बतला रही है। ढूँढ़ने पर भी उन पर अक्षर नहीं मिले। एक ओर बहुत-सी पुरानी, भोट-अक्षर में लिखी हुई पुस्तकें बे परवाह से रखी हुई हैं। पीछे के बने देवालयों तथा पुराने स्तूपों को देखकर हम लौट आए। धर्मवर्धन ने बीजक से खास-खास बातों का नोट लेना शुरू किया। नाती-ला ने फोटो लिये। अभी मंदिर के अंधेरे में पड़ी सिद्ध फ्-दम्-पा की मूर्ति का भी फोटो लेना था। किट्सन-लैंप के सहारे उसका भी फोटो लिया गया। बाहर के स्तूपों और सारे विहार के भी फोटो लिये। इसी वक्त किसी आदमी ने जाकर गाँव के जमींदार से - वस्तुतः तो यहाँ का जमींदार भोट-सरकार का है, और खेती का काम उसकी ओर से कोई नौकर करवाता है - कह दिया। जवाब तलब किया गया। हमारे साथी ने जाकर भोटराज रे-डिड्. रिम्पो-छे की लाल लाख की मुहर से अंकित चिट्ठी दिखला दी। मामला वहीं समाप्त हो गया।

मध्याह्न के भोजन के बाद हमारा काफिला नालन्दा के लिए रवाना हुआ। भारत के नालन्दा के नाम पर जहाँ लंका में एक नालन्दा है, वहाँ तिब्बत भी उससे वंचित नहीं है। प्रायः दो घंटा चलने पर हम नालन्दा पहुँचे। यद्यपि स्थान निचले मैदान से कुछ ऊपर चढ़कर है,

किंतु यहाँ भी मैदान-सा ही है। उसके निचले भाग पर बहुत-से परित्यक्त खेत हैं। कुछ खंडहर भी कहीं-कहीं खड़े हैं। नालन्दा बहुत ही सुंदर जगह पर है, और आजकल पिछले पहाड़ों के हरित-वसन हो जाने से तो वह और भी अनुपम हो गई है। यह विहार 15वीं शताब्दी के आरंभ में ही बन गया था। निर्माता रोड्.-तांन् शक्य-र्ग्यल्-छन् अपने समय के अच्छे दार्शनिक थे और चोड्.-ख-पा (1357-1419 ई0) के विद्वान् शिष्य म्खस्-ग्रुब (1385-1432 ई०) के प्रतिद्वंद्वी थे। किसी समय नालन्दा तिब्बत की नालन्दा थी। चोड्.-ख-पा के अनुयायियों के डे-पुड्. आदि विहारों की भाँति यह एक अच्छा विद्या-केंद्र था। प्रदेशों के क्रम से कई खम्-जन् और छात्रावास भी हैं। ढाई हजार के रहने लायक घरों में पाँच सौ ही भिक्षु रहते हैं, जिनमें भी पढ़ने वाले पचास से अधिक नहीं। पहले हम ब्चु-बद्-ल-ब्रड्. गये। यहाँ एक बड़ा लम्बा-चौड़ा बीजक लगा हुआ है, जिसके सामने से रक्षा के साथ भी निकलना आसान काम नहीं है। पूछने पर बतलाया गया, म्छांग्-स्प्रुल-रिम्पो-छे से तालपत्र की पुस्तकों के बारे में पूछें। आने पर देखा, लामा प्रायः दो दर्जन भिक्षुओं को विनय पढ़ा रहे हैं। पूछने पर सहृदयतापूर्वक बतलाया, यहाँ तालपत्र की पुस्तकें नहीं हैं। हाँ, स-छेक्कुन-द्ग-स्ञिड्. -पो (1098-1158 ई0 के समय का बना एक चित्रपट है। चित्रपट के निकालने में अभी देर थी, इसलिए हम पुरातन मंदिर चू-ला-खड्. (विहार) देखने गये। पुजारी जरा देर में आए। भीतर बुद्ध की विशाल मूर्ति है, जिसके सामने रोड्.-स्तोन् की प्रतिमा है। फोटो लिया। बाहर और कुछ छात्रावासों को देखते सारे विहार के फोटो के लिए बगल की पहाड़ी पर चढ़ चले। बहुत करने पर भी सारा विहार एक फिल्म में न आ सका। लौटने पर चार बज गए थे। अभी पुराने चित्रपट का भी फोटो लेना था, इसलिए आज नालन्दा ही में रात्रिवास को ठहरे। फोटो ले लेने पर रहने के लिए अच्छे स्थान का प्रबंध ही हो गया। उक्त लामा का - जो कि स्वयं अवतार हैं - बड़ा प्रेमपूर्ण बर्ताव था।

शाम को कुछ मिनटों के लिए शास्त्रार्थ वाले बगीचे (छोस्-रा) में भी हो आए। बीस-पचीस आदमी कुल। खूब ताली पीटते, शोरगुल करते शास्त्रार्थ हो रहा था। यहाँ तालपत्र की पुस्तकें तो नहीं देखने में आईं, किंतु नालन्दा का दर्शन और रात्रिवास अवश्य ही संतोष का विषय है।

ग्य-ल्ह-खड्.

1.8.34

नालन्दा से सवेरे बिदाई ली। बादल थे, किंतु बूँदाबाँदी नहीं थी। एक छोटी-सी जोत पार कर फिर खेतों के पास आ गए। नालन्दा में बतलाया गया था, कि पा-छब् दो घंटे का ही रास्ता है, किंतु हमें चलते-चलते चार घंटे लग गए। मार्ग अठारह मील से कम का न होगा। हमारा रास्ता अधिकांश पश्चिम की ओर था, जिससे बादल फाड़ कर समय-समय पर आती सूर्य की तीक्ष्ण किरणें कष्ट नहीं देती थीं। बारह बजे हम पा-छब्-लो-च-व-ञि-म-ग्रगस्की (ज0 1055 ई0) की समाधि पर पहुँचे। यह लो-च-व तिब्बत के तीन सबसे बड़े विद्वान् अनुवादकों में है। आशा थी, कि शायद यहाँ कोई तालपत्र ही पुस्तक हो, किंतु यहाँ तो एक मामूली स्तूप है, जिसके भीतर कहा जाता है, महान् अनुवादक का शरीर है। पास में मठ है, जिसमें बाईस-चौबीस भिक्षुणियाँ वास करती हैं।

पा-छब् में बहुत ठहरना नहीं पड़ा। कुछ ही मिनटों बाद हम फिर चल पड़े, और डेढ़-दो मील बाद पर्वत के कोने में छिपा ग्य-ल्ह-खड्. (भारतीय देवालय) आ गया। सम्-ये की तरह स्तूपों को, जो भारत में आठवीं शताब्दी के आसपास ही बनते थे। देख कर ही मालूम होने लगा कि यह तो आठवीं-नवीं शताब्दी के बाद का विहार नहीं हो सकता। मैत्रेय देवालय के सामने दों-रिड्. (महास्तम्भ) और उसके लेख को देखकर और भी विश्वास हो चला कि यह विहार - या कम-से-कम उसका कुछ भाग स्रोड्.-चन्-गम्बो के समय का बना है। आज पास के

गाँव में घुड़दौड़ थी। मठ के सभी भिक्षु तमाशा देखने गए थे। सामान बाहर ही रख दिया। तब तक हमने दों-रिड्. के लेख की छाप लेनी चाही। राय साहब मनोरंजन घोष ने पटना में छापे का सामान बाँध दिया था, किंतु अभी तक छाप लेने का मौका नहीं आया था। पहले प्रयत्न में जैसी छाप आई, उस पर ही संतोष करना चाहिए। यद्यपि लेख में लिखने वाले का नाम नहीं है, किंतु ल्हासा में ऐसे दों-रिड्. पुराने राजाओं के ही हैं, इससे अनुमान है, यह स्तम्भ भी तिब्बत के किसी राजा का ही है। पास का मैत्रेय देवालय शङ्-सञ-नम्-दों-र्जे-द्वड्.-फ्युग् ने बनाया था, जो आचार्य शांतरक्षित के शिष्य सम्राट् खि-स्रोड्.-ल्दे-ब्चन् (802-845 ई0) का समकालीन था। पाषाण-स्तम्भ* पर चाहे किसी का लेख हो, उसमें लिखने वाले ने बौद्धजनों को दस अच्छी बातों का उपदेश दिया है, जिनमें मुख्य बुद्ध में एकांत निष्ठा रखना, धर्म का मन में ख्याल रखना, मूलदृष्टि (अनात्मवाद आदि) को चित्त में रखना आदि हैं। थोड़ी देर बाद मैत्रेय देवालय का पुजारी आ गया। आज उसी के यहाँ रहने का निश्चय हुआ। रहने के लिए विशाल सभामंडप मिला। मंदिर में मैत्रेय की विशाल मूर्ति है। कहते हैं, तुर्कों के युद्ध के समय मंदिर में आग लगा दी गई थी। समझ में नहीं आता, तुर्क कब इधर आये। मंदिर में हस्तलिखित तीन कन्-जुर और तीन तन्-जुर हैं, जो एक के ऊपर एक छल्ली बाँधकर रखे हुए हैं। मंदिर के एक कोने में द्विभुज, लोकेश्वर बुद्ध और एकादशमुख लाकेश्वर की पाषाण-मूर्तियाँ हैं। पाषाण की मूर्तियाँ भोट देश में अति दुर्लभ हैं। ये मूर्तियाँ भारतीय मालूम होती हैं। मैत्रेय के दर्शन के बाद हम प्रधान मठ को देखने गए। पुस्तकों, मूर्तियों और कमखाब की छतों से मालूम होता है, कि किसी समय वह विहार बहुत रौनक पर था। विद्यार्थियों के रहने के लिए बहुत से मकान हैं। स्तोद्, स्मद्-दो-ड-सड्. (महाविद्याल) तथा शास्त्रार्थ की बगीची के होते हुए भी विहार अब श्रीहीन है। भिक्षु 180 के करीब बतलाए जाते हैं। एक अवतारी लामा और दो मखन्-पो (आचार्य) भी हैं। हम मिल आए, किंतु निराश होना पड़ा। तीन पुराने चित्रपट देखे जिन्हें रिन् छोन्-बसम्-ग्रुब ने बनवाया था। भारत से आई कुछ मूर्तियाँ यहाँ के विहार में हैं। संभव है, कुछ और भी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हों, किंतु उसके लिए अधिक दिन और अधिक परिचय की आवश्यकता है।

कल कोई विशेष बात न थी, इसीलिए लिखने की इच्छा न हुई। मेघ के रिमझिमाते ही में हम लोग ग्य-ल्ह-खड्. से चल दिए। हाँ, वहाँ कूड़े में से कुछ हस्तलिखित पुस्तकों के पन्ने लिये। उनमें एक पोथी शतसहस्रिका की बारह पोथियों में से थी। दो छोटी-छोटी जोतें पार करनी पड़ीं, फिर कुछ दूर तक जौ-गेहूँ के हरे खेतों में से चलना पड़ा। मामूली ढलुआ चढ़ाई थोड़ी-सी (प्रायः सवा मील), बाद शन्-बुम्-पा मठ में पहुँचे। दीपंकर के शिष्य डोम्-तोन् के प्रशिष्य श-र-बा का यह निवासस्थान था। एक घेरे में बहुत से स्तूप हैं, जिनमें से एक श-र-बा का शरीर भी है। इसी की बगल में एक छोटा-सा स्तूप है जिसके महत्व के बारे में कहा जाता है कि संसार में चाहे हिम-प्रलय हो जाय, किंतु इस स्तूप पर बर्फ नहीं पड़ेगी। एक और सम्मेलन घर है, किंतु वहाँ भी कोई विशेष वस्तु नहीं मिली। आजकल यह विहार भिक्षुणियों (?) का है, जिनकी संख्या पूछने पर एक वृद्धा भिक्षुणी ने कहा - तीन-बीस, सोलह-सत्रह अर्थात् 76-77। हमने आशा की थी, शायद यहाँ हमारे काम की कोई चीज़ हो। ढाई बजे हम लोग फिर रवाना हुए। चढ़ाई थी और एक छोटी जोत। यहीं दूसरी ओर के पहाड़ पर हमने नाती-ला को एक दुद्-मो-नग्-मो (काली भूतनी) दिखलाई। हमने कहा, देखो - (1) इसके वस्त्र बिल्कुल काले हैं, जैसे इस मुल्क के स्त्री-पुरुषों के नहीं हुआ करते, (2) इसका आकार अधिक लम्बा-चौड़ा है, (3) इसके पास भेड़ें या चमरियाँ नहीं हैं और (4) न आसपास हरी घास है। लेकिन नाती-ला भी अब हमारी भाषा को समझने लगे हैं। पाँच बजे के करीब हम रे-डिड्. अथवा कन्-सू और मंगोलिया के रास्ते पर पहुँच गए। एक गाँव में रहने का स्थान न मिलने पर अगले गाँव में एक गरीब के घर में जगह मिली। गाँव का नाम फन्-दा है। 'यथा नाम तथा गुण' तो नहीं मालूम होता।

पो-तो दीपंकर के प्रशिष्य पो-तो-पा का निवास यहाँ से तीन-चार मील से अधिक नहीं है, किंतु रास्ता अलग होने से जाने की सलाह नहीं हुई। आज पौने नौ बजे चले। थोड़ी दूर पर पहाड़ के किनारे सात स्तूप कुछ छोटे स्तूपों के साथ दिखाई पड़े। यह भी दीपंकर की परंपरा के एक विद्वान का है - नाम है स्नेङ्.-सर् स्तूप। इधर के पहाड़ों पर कुछ झाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं, जो यहाँ के लिए नई चीज़ है। झाड़ियाँ अधिकतर जंगली गुलाब की हैं। तीन-चार मील चलने के बाद मानव-बस्ती खतम हो गई। हाँ, चमरियाँ तो जोत के पास तक मिलीं। रास्ते में एक जगह अपने बाएँ, पहाड़ पर एक कस्तूरी मृग को भागते देखा। ठीक मध्याह्न में हम जोत के ऊपर पहुँचे। इस जोत पर डाकुओं का भय बहुत अधिक रहता है, किंतु हमारे साथियों के पास दो पिस्तौलें और एक बंदूक भी हैं। उतराई में हम पैदल चलना अधिक पसंद करते हैं, इससे खच्चर की पीठ कटने का डर भी कम रहता है। दो बजे तक हम उतरते ही गए। फिर बाईं ओर की पहाड़ी रीढ़ को पार कर लेने पर स्तग्-लुङ्की नदी आ गई। मठ अभी डेढ़ मील पर था। रास्ता उतराई का था। सब लोग पैदल चलने लगे। संघ धर्मवर्धन के खच्चर की लगाम उसके पैर में आ गई। हमारे खच्चर वाल सो-नम्-ग्यंजे को गुस्सा हो आया धर्मवर्धन पर, किंतु उसे निकाला उसने खचरी पर। पहले से भी सो नम्-ग्यंजे को शिकायत थी, कि धर्मवर्धन क्यों नहीं काम करते, किंतु बचपन से ही अभ्यास न होने के कारण वे मेहनत करने में असमर्थ हैं। मठ के पास पहुँचने पर हम लोग उसे धार के इस पार छोड़ लामा के पास गए। शिकम की महारानी के भाई र-क-स कुशो का पत्र होने पर भी एक बहुत ही दरिद्र जगह हमें बतलाई गई। इसे हम अपना अपमान समझ रहे थे इसी समय ख्याल हुआ - खच्चरों के आने में देर क्यों हो रही है? थोड़ी देर में सो-नम्-ग्यंजे आया, बोला - मैं साथ नहीं चलूँगा, मैं ल्हासा लौटूंगा। हमने भी समझाया किंतु वह नहीं माना। एक खच्चर लेकर चल दिया। पीछे मालूम हुआ, वह ल्हासा की ओर न जाकर अपने जन्म-स्थान खम् की ओर जा रहा है। इस प्रकार डाकुओं से भरे इस प्रदेश में पाँच खच्चरों को हमारे मत्थे मार वह चलता बना। आज खच्चरों को बाँधने और खिलाने का काम नाती-ला और धर्मवर्धन पर पड़ा। यात्रा में भी कुछ कमी करनी पड़ेगी। यहाँ से रे-उङ्. के लिए दो आदमी मिलने वाले हैं। देखो, कल क्या होता है।

उक्त घटना ने कुछ चिंतित बना दिया था। ऐसे ही समय विहार-दर्शन को गए। प्रधान विहार 1180 ई0 में स्तग्-लुङ्.-थङ्.-पा-र्दो-ग्लिङ्.-रस्-पा ने बनवाया था। एक आँगन के गिर्द विशालकाय बुद्ध-मूर्तियों के गृह हैं। मूर्तियाँ सुंदर हैं। अनेक कन्जूर, तन्जूर की सुंदर हस्तलिखित पुस्तकें ईंटों की छल्ली की तरह रखी हैं। जब पढ़ना नहीं, तो दूसरी तरह रखने की आवश्यकता क्या? आखिर कुछ समय बाद जीर्ण मंदिर के गिरने पर ये पुस्तकें भी नष्ट हो जाएँगी, किंतु क्या दाम से भी यह लोग एक-दो प्रतियाँ दे सकेंगे?

ल्ह-खङ्.-गुदोङ्.

4.8.34

आज जब सोये पड़े थे और घर में भी अँधेरा था, तभी सो-नम्-ग्यंजे आ पहुँचा। पूछने पर बतलाया, कि उसके सामान को रास्ते में से कोई उठा ले गया, जब कि उसे फेंककर पीछे की ओर भागते खच्चर को पकड़ने लौटा। यह भी कहा कि रात को वह पहाड़ में सोया था। उसकी इन बातों पर विश्वास न होता था, बल्कि और संदेह बढ़ता जाता था, कि कहीं मार कर सामान लूटने के लिए तो नहीं आया है। हमारे पास पाँच सौ रुपए के पैसे भी हैं, और कुछ दूसरे सामान भी। ऐसा संदेह करने का कारण था - सो-नम्-ग्यंजे के जन्म-स्थान के लोगों का यही स्वभाव। उसके देश में लूट-मार लोगों का पेशा है। यद्यपि सो-नम्-ग्यंजे का चार-पाँच वर्ष का रिकार्ड बहुत अच्छा रहा है, तो भी हम उसे अर्धविक्षिप्त समझते थे। वह कहता भी था - मैं तो नदी में छलाँग मार कर जान दे दूँगा। इस प्रकार आज रास्तेभर हम

लोग शंकित और सजग ही चलते रहे।

स्तग्-लुड्. मठ से प्रायः डेढ़ मील तक साधारण ढालू भूमि पर चलकर, रूखे पत्थरों को जोड़ कर बनाए एक पुल से हम धार के बाएँ हो लिये। रास्ते में पहाड़ के वक्ष में ढके एक मठ का फोटो लिया। जिस जगह हम चल रहे थे, वह ल्हासा (12,000 फुट) से अधिक ठंडा है, तो भी आज के पहाड़ जंगली गुलाब और करौंदे की झाड़ियों से खूब ढंके थे। छोटी-छोटी घास तो वर्षा के कारण होगी, किंतु बिच्छू-घास तो बारहमासी है, जिसकी यहाँ बहुतायत है। चारों ओर हरियाली की अद्भुत शोभा है। हमारे काफिले में दो नौकरों की बढ़ती हुई। उन्हें हमने पौने तीन साङ्. (प्रायः 9 आने) रोज पर रखा है।

12 बजे हम लोग फुन-दो में, ब्रह्मपुत्र की उस शाखा के तट पर पहुँचे, जो ल्हासा होकर गुजरी है। यहाँ आदमियों के लिए लोहे के साँकल पर चमड़े से बँधी लकड़ियों का झूला है। सामान के लिए चमड़े की नाव (क्वा) है, जानवरों को तैर कर पार होना पड़ता है। हम लोग दो घंटे के इंतजार के बाद क्वा से उतर सके। मंगोलिया और कन्-सू (चीन) की ओर का यह प्रधान रास्ता है। यहाँ भी लकड़ी की नाव का इंतज़ाम करना चाहिए था।

छ-ला पार करने के बाद ही पुरुषों के बालों में भेद दिखलाई पड़ता है। यह लोग खाम् वालों की भाँति सामने के बालों को कैंची से कटवाते हैं। जहाँ से इस पत्र को लिख रहा हूँ, वहाँ से आधे दिन के रास्ते पर ला-ग्ञिस (जोत-युगल) है, जिसके पार होते ही हम होर-प्रांत में पहुँच जाते हैं, भोट देश के होते हुए भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों की पोशाक में बहुत फर्क है।

सवा दो बजे रवाना हुए। अब हम ल्हासा वाली नदी की बाईं शाखा के दाहिने से चल रहे थे। यह धार पिछली धार से बहुत बड़ी है। खैरियत यही है, कि इसे हमें पार नहीं करना होगा। इधर के पहाड़ों पर तो और भी अधिक झाड़ियाँ और हरियाली हैं। खेती के लायक जमीन होने पर भी खेत देखने में नहीं आते। नदी के पार एकाध जगह सरसों के पीले फूल दिखलाई पड़ते थे। हाँ, जगह-जगह पहाड़ों पर चरती-चमरियों के चलायमान काले दाग जरूर थे। दो-एक जगह परित्यक्त ऊँचे घरों की पत्थर की दीवारें बतला रही थीं, कि किसी समय इधर अब से अधिक बस्ती थी। नदी की उपत्यका काफी चौड़ी है। दो-तीन जगह हमें होर-प्रांत वाले मक्खन-विक्रेताओं की लदी चमरियाँ मिलीं। दो-तीन जगह तीर्थाटक* भिखमंगे भी मिले। होर की दो-तीन तीर्थाटिकाओं* के फोटो लेने का भी हमने प्रयत्न किया।

पाँच बजे हम उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ रे-डिड्. का रास्ता मंगोलिया के रास्ते से अलग होता है। यहाँ एक मंदिर है, जिसे रिग्स्-ग्सुम्-स्गोन्-पो का ल्ह-खड्. (देवालय) कहा जाता है। लोग कहते हैं, इसे स्रोड्.-व्चन् स्गम्-पो ने बनवाया था। स्थान तो महत्वपूर्ण जरूर है, तो भी देवालय उतना पुराना नहीं होगा। हाँ, यह ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से इधर का भी नहीं हो सकता। मंदिर के भीतर बुद्ध की दो सुंदर मूर्तियाँ हैं। कुछ और मूर्तियों के अतिरिक्त एक एकादशमुख* अवलोकितेश्वर की भी मूर्ति है। ल्ह-खड्. (देवालय) पहाड़ के उस कोने पर है, जहाँ से मंगोलिया का रास्ता मुड़ता है। बगल के गृहपति ने स्वागतपूर्वक हमें अपना सबसे अच्छा कमरा दिया। इस कमरे में आसन और चाय की चौकियों के अतिरिक्त दीवारों पर कितने ही चित्रपट और एक कोने में सजा कर रखी पद्मसंभव* की मूर्ति। किट्सन्-लैम्प के सहारे हमने एक फोटो लेने का प्रयत्न किया। आ जाए, तब है।

यहाँ से रे-डिड्. पाँच मील के करीब है। कल सवेरे ही वहाँ पहुँच जाएँगे।

रे-डिड्.

5.8.34

हमारी घड़ी से साढ़े सात बजे और नाती-ला की घड़ी से पौने आठ बजे हम लोग रवाना हुए। आकाश मेघाच्छन्न था। छोटी-छोटी फुहारें पड़ रही थीं। ला-ग्ज़िस की ओर से आने वाली धार को पार कर हम बड़ी धार की दाहिनी ओर से ऊपर की ओर चढ़ने लगे। आज का भी पहाड़ झाड़ियों और घास से ढका था। नदी की दूसरी ओर चमरी चराने वाले डोक्-पा लोगों के तम्बुओं से धुआँ निकल रहा था। रास्ते में दो-चार जौ के खेत भी देखे। पुराने परित्यक्त* खेतों की मेड़ों से मालूम होता था, कि किसी समय इधर अधिक खेत थे। प्रायः तीन मील चलने के बाद देवदार के एक-आध छोटे वृक्ष दिखाई पड़ने लगे। मीलभर रहने पर तो पहाड़ में हजारों हरे-हरे देवदार थे। इधर देवदार काटने की सख्त मनाही है, इसीलिए यहाँ इतने वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। सर्दी के बारे में पूछने पर मालूम हुआ, कि यहाँ की यह बड़ी नदी भी ऊपर से जम जाती है, और आदमी तथा जानवर इस पार से उस पार आसानी से जा सकते हैं। उस वक्त देवदार की हरियाली को छोड़ कर और कहीं हरियाली देखने में नहीं आती। ल्हासा से यह स्थान अधिक ऊँचा है, इसमें तो संदेह नहीं, लेकिन आश्चर्य यह है कि यहाँ के पहाड़ों पर जितनी हरियाली दिखलाई पड़ती है, उतनी ल्हासा वाले पहाड़ों पर नहीं।

हमने एक मानी पार की, फिर देखा, हमारे साथी तो एक छोटी चट्टान पर पत्थर के टुकड़ों को मार रहे हैं, और साथ ही कहते जा रहे हैं -- ''चा-फु,मा-फु'' (चाय प्रदान करो, मक्खन प्रदान करो)। मालूम होता है, सभी श्रद्धालु यात्री यहाँ पर चा-फु, मा-फु कहते हैं, तभी तो इस छोटी सी चट्टान पर पचासों गोल-गोल गड्ढे हो गए हैं। पहले तो गोल गड्ढों को देखकर मेरा माथा ठनका - कहीं ल्हासा के पुरातन लेख वाले शिला-स्तम्भ की भांति यहाँ भी तो किसी पुराने लेख को कूटा नहीं जा रहा है, लेकिन पीछे यह देखकर संतोष हुआ कि इस चट्टान पर लेख नहीं है। एक घुमाव को पार करते ही देवदार के घने जंगल में रेडिङ् गुम्बा सामने आ गई।

हमारे साथियों ने अपनी पिस्तौल और बंदूक हाथ में ले ली, क्योंकि हथियार को बिना हाथ में लिए इस गुम्बा के भीतर जाना निषिद्ध* है। पश्चिम वाले विशालकाय स्तंभ के पास पहुँच कर हमने रे-डिङ् रिम्पो-छे की चिट्ठी भीतर गुम्बा के अफसर दे-छङ् के पास भेजी। थोड़ी देर में बुलावा आया, और ल-ब्रङ् ब्ल-मऽ-फो-ब्रङ् (लामा का महल) के एक कमरे में रहने के लिए स्थान मिला।

अब हमें सबसे पहले उस काम की फिक्र हुई जिस काम के लिए इतनी दूर, इतनी परेशानी के साथ आए हैं। धर्मवर्धन ने जाकर पूछा, तो मालूम हुआ कि रे-डिङ् रिम्पो-छे ने पत्र में सिर्फ ठहरने के लिए अच्छा स्थान देने को लिखा है। मुझे तो इस बात पर पहले विश्वास न होता था। और विश्वास करने को जी क्यों चाहता? इतनी तकलीफ झेलकर, पद-पद पर चोरों के खतरे वाले इस प्रदेश में तो इसलिए आए थे, कि रे-डिङ् में हमें दीपंकर श्रीज्ञान के हाथ के ताल के पत्ते देखने को मिलेंगे। देखने को ही नहीं, बल्कि हम तो फोटो लेने के सारे सामान के साथ आए थे। क्या हमारा यह सारा प्रयत्न व्यर्थ जाने को है? उस चिट्ठी के भीतर एक दूसरे अफसर के लिए भी चिट्ठी थी, जो एक दिन पूर्व ल्हासा चला गया। साथियों को ख्याल हुआ, शायद उसमें कुछ हो। उपस्थित अफसर दूसरे की चिट्ठी को फाड़ने से डरता था, किंतु हम लोग समझते थे, उसमें भी हमारे ही बारे में कुछ लिखा होगा। रिम्पो-छे महाशय ने हमें सिर्फ पत्रवाहक थोड़े ही बनाया होगा। आखिर उसे भी खोला गया, पर उसमें हमारे बारे में कुछ भी नहीं था। वह उनका व्यक्तिगत पत्र था। वास्तव में मुझे तो दूसरे पत्र के खोल लिए जाने पर मालूम हुआ, कि यहाँ के अफसर को एक अलग भी पत्र था। यदि यह पहले मालूम हुआ होता, तो मैं दूसरे पत्र को खोलने की सलाह न देता। अब जरा पत्र का इतिहास सुन लो। पिछली यात्रा में जब रे-डिङ् रिम्पो-छे से-रा विहार में पढ़ते

थे, तभी उन्होंने मुझसे कहा था, कि उनके मठ में दीपंकर के हाथ की कुछ पुस्तकें हैं, रे-डिङ्. चलने पर वे उन्हें दिखाएँगे। उस समय रे-डिङ्. रिम्पो-छे तिब्बत के राजा नहीं हुए थे। अबकी बार जब उनसे मिला, तब यह चिट्ठी मिली। और उस चिट्ठी में पुस्तक का जिक्र नहीं। यदि मुझसे यह बात ल्हासा में ही कह दी गई होती, तो शायद मैं ऐसी खतरनाक यात्रा को न करके उस समय को किसी दूसरे मठ में लगाता। इससे तो हजार गुना अच्छा होता, यदि मैं रिम्पो-छे के पत्र को न लाया होता। संभव है, उस समय ऐसा अच्छा ठहरने का स्थान न मिलता, किंतु उससे लाभ होता।

रे-डिङ्. विहार को आचार्य दीपंकर के शिष्य ब्रोम्-स्तोन्-पा (1003-64 ई0) ने आचार्य के देहांत (1054 ई0) के बाद बनाया था। ब्रोम्-स्तोन्-पा भिक्षु न होते हुए भी आचार्य का प्रधान शिष्य था, और तिब्बत में उनके पहुँचने के वक्त से ही वह छाया की भाँति बराबर साथ रहा। उसके बनाए विहार में आचार्य की चीजों का होना जरूरी ही ठहरा। इन चीजों में ऊपर कहीं एक तालपत्र की पुस्तक का बस्ता है, जिसका आधा भाग जल गया बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ पुराने चित्रपट हैं, जिनमें दो वे हैं, जिनको चित्रकार ने दीपंकर को देखकर बनाया था, और जिनका वर्णन दीपंकर के पुराने जीवन-चरित्र में भी आता है। अफसर भिक्षु ने दूसरी चिट्ठी के खोलने से पहले कहा था, कि सोने का चढ़ावा चढ़ाने से दीपंकर वाले दोनों चित्रपट बाहर लाए जा सकते हैं, उस वक्त फोटो ले लेना, पर दूसरी चिट्ठी में कुछ न देखकर हमने फिर चित्रपट की बात छोड़ दी।

मध्याह्न भोजन के बाद एक पथ-प्रदर्शक के साथ हम भिन्न-भिन्न मंदिरों के दर्शन के लिए चल पड़े। पहले पश्चिम भाग के ग्र्-बुम् मंदिर में गए। मंदिर छोटा है, जिसमें दीपंकर, ब्रोम्-स्-तोन्-पा आदि की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। गुम्बा में भिक्षुओं की रजिस्टर्ड संख्या तो 370 बतलाई जाती है, किंतु कुत्तों की संख्या भी काफी है। ग्सेर्-बुम् (लाख सुवर्ण) मंदिर में सोना तो नहीं दिखलाई पड़ा, पर ठीक द्वार पर ही एक कुत्ता मरा पड़ा था, जिसे हटाने की जरूरत अभी लोग अनुभव नहीं कर रहे थे। वहाँ से परिक्रमा में होते हम स्गोम्-प-ल्ह-खङ्. में पहुँचे। स्गोम्-पङ्.ब्रोम्-स्-तोन्-प का (मृ. 1064 ई0) प्रशिष्य तथा श-र-बा का शिष्य था, समय बारहवीं सदी। मंदिर के भीतर बहुत-सी मूर्तियाँ हैं, और दीवारों पर बहुत से चित्रपट लटक रहे हैं। दीवारों पर के पुराने चित्रों का भोट देश में मिलना मुश्किल है, क्योंकि लोग-समय पर चित्रों को नया करते रहते हैं किंतु चित्रपटों में हमें पुराने मिल सकते हैं। तिब्बत में आने के बाद आज ही हमें भारतीय चित्रपट दिखलाई पड़े। कुछ ऐसे चित्रपट इस मंदिर में भी हैं। इसके पास ही तम्-चन् का पवित्र देवदार है, जिसके ऊपर भोट का महान् देवता निवास करता है। श्रद्धालु नाती-ला ने इस देवता के ऊपर एक चाँदी का टका* चढ़ाया। अब हम चलकर पूर्वी किनारे पर आ गए। तुमको यह भी मालूम होना चाहिए कि यहाँ के कितने ही देवदारों के नाम पुराने ग्रंथों तक में दर्ज हो गए हैं। पश्चिम दिशा में चन्दन-द्कर्-पो (श्वेत चंद) और चन्दन-द्मर-पो (रक्त चन्दन) हम देख चुके थे। अब पूर्व और गुब्-सिल् और योन्-तन् (गुण) के दो देवदारों को देखा। इन पुराने देवदारों में कितने अब सूख गए हैं, पर भी उनको कायम रखा गया है। अब हम प्रधान देवालय (ग् चुग्-ब्लग्-खङ्.) की ओर चले। रास्ते में ऊपर की ओर एक तल्ले की बहुत-सी घरौंदे जैसी अस्तव्यस्त कोठरियाँ हैं। इन्हीं में यहाँ के भिक्षु रहते हैं।

प्रधान देवालय यहाँ का भी स्तग्-लुङ् के प्रधान देवालय की तरह भीतरी आँगन वाला है। हाँ इसकी दीवारें उतनी ऊंची नहीं हैं। यह आँगन भी पीछे से जोड़ा मालूम होता है, क्योंकि ब्रोम्-स्तोन् (डोम्-तोन्) का बनाया छोटा मंदिर आँगन के पूर्वोत्तर कोने पर है। दक्खिन का भाग खम्भों के वरांडे में है, जिसके पश्चिमी भागों में चौरासी सिद्धों के चित्र भीत पर उकेरे हुए हैं। चित्र बहुत पुराने नहीं हैं, तो भी उनमें कितनी ही पुरानी परंपरा है। पश्चिमी वरांडे

या बारादरी से होते हुए हम उत्तर भाग के पश्चिम वाले देवालय में घुसे। टार्च हमारे हाथ में थी। भीतर दो स्तूप और बुद्ध तथा मैत्रेय की मूर्तियाँ हैं। दीवारें तेईस-चौबीस हाथ से कम ऊँची न होंगी, और उनके सहारे कन्-जुर्-तन्-जुर् की पुस्तकें छत तक चुनी हुई हैं। यह सभी पुस्तकें हाथ से सुंदर अक्षरों में लिखी हैं। इनमें से कितनी ही सात सौ वर्ष की होंगी। किन्हीं-किन्हीं पर पहले के मालिकों के नाम भी हैं। ग्रब्-फू-पा नाम के किसी विद्वान का नाम बहुत-सी पुस्तकों में देखा जाता है। इस देवालय के पास पूर्व की ओर दूसरा देवालय है। इसमें भी स्तूपों और मूर्तियों के अतिरिक्त वैसी ही पुस्तकों की छल्लियाँ दीवार के सहारे खड़ी हैं। कुछ पुस्तकों के पन्ने तो कीड़े खा भी रहे हैं, पर खाकर खत्म करने में कीड़ों को अभी शताब्दियाँ लगेंगी। इस समय कीडों के भक्ष्य होने के सिवा इनका कोई प्रयोजन भी नहीं मालूम होता। यह इस तरह नहीं रखी गई हैं, कि इनमें से कोई पुस्तक निकाली जा सके। मैं सोच रहा था, कि भोट देश के पुराने मठों में कैद इन पुस्तकों का कभी उद्धार होगा? सोचने से तो यही मालूम होता है, कि किसी मुहम्मद बिन्-बखतियार का पैदा होना असंभव होने से शायद समय-समय पर मंदिरों को तबाह करने वाले अग्निदेव ही इनका उद्धार करें, अथवा शायद किसी समय ज्ञानपूर्वक या क्षेमपूर्वक ही इनका उद्धार हो। तीसरी बात अधिक जँचती है, किंतु अभी तो उसके लिए बहुत-क्षीण-सी 'लाली' पूर्व की ओर दिखाई पड़ती है। फिर सोचने लगा, क्या नालन्दा और विक्रमशिला में भी शताब्दियों से एकत्र ताल की पोथियों को इसी प्रकार रखा होगा, जबकि मुहम्मद बिन्-बखितयार की फौज आग और तलवार लेकर उनके द्वार पर पहुँची? पर ऐसी छल्ली बनाने में ताल की पुस्तकों का आकार बाधक था।

अन्त में सबसे कोने वाले पुराने मंदिर में गए। यह औरों की भाँति विशाल नहीं है. पर डोम्-तोन् का बनवाया होने से यह परम पवित्र है। इसके भीतर मंजुवज्र की एक छोटी-सी पीतल की मूर्ति है। यह मूर्ति खो-फु-लो-च-व (जन्म 1173 ई.) के पास थी। यही वह लो-च-व है, जो सन् 1200 में विक्रमशिला के प्रधान आचार्य शाक्य श्रीभद्र को नेपाल से भोट ले आया था। पश्चिम ओर की दीवार पर प्रायः पाँच-छह हाथ ऊपर काँच लगे दो बक्सों के भीतर दीपंकर श्रीज्ञान के वे दो चित्र हैं, जिन्हें चित्रकार ने उन्हें देखकर बनाया था। दक्षिण ओर के चित्रपट में आचार्य के बाएँ हाथ में एक तालपत्र की पुस्तक है, और दाहिना हाथ उपदेश-मुद्रा में है। चेहरे पर बुढ़ापा तथा खोपड़ी और मुँह का लम्बापन भी बतलाते हैं, कि उक्त परंपरा में कुछ सत्य का अंश है। वैसा तो तुम जानते ही हो, कि सभी धर्म के दरबार में। धर्म वस्तुतः झूठ की आयु को लम्बा करने में बड़ा सहायक होता है। इस मन्दिर में भी झूठ का एक बड़ा भारी इश्तहार है वर्तमान रे-डिड्. लामा के (जिनकी आयु इस समय बाईस वर्ष की है) पैर का एक काले पत्थर का निशान, जो काँच के भीतर रखा हुआ है। श्रद्धालु भक्तों से कहा जाता है, कि बचपन में लामा रिम्पो-छे ने पैर को सहज स्वभाव से पत्थर पर रख दिया था और उसपर यह निशान उतर आया। यदि समन्तकूट और नर्मदा नदी की पहाड़ी पर बुद्ध के बड़े-बड़े पद-चिह्न उतर सकते हैं, तो यहाँ एक अवतारी लामा के छोटे-से पद-चिह्न के उतरने में कौन-सी असंभव बात हो सकती है? यदि बुद्ध अपने भक्तों के झूठ के इस तूफाने-बदतमीजी को देखते, तो क्या कहते?

अब हम दूसरे नम्बर वाले मन्दिर के द्वार के स्तम्भागार में आए। रे-डिड्. के पुराने चित्रपट आजकल यहीं टाँगे गए हैं। इन चित्रपटों की संख्या दर्जन से अधिक है। सभी चित्र अजन्ता की चित्रकला से अभिन्न हैं। मुझे तो आशा न थी, कि अजन्ता से इतनी समानता रखने वाले चित्रपट यहाँ हो सकते हैं। दो में तो अजन्ता के प्रसिद्ध बोधिसत्व जैसी खड़ी तस्वीर है - वही आभूषण, वही बंकिम ठवनि, वैसे ही कम और सुन्दर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर-प्रदेश। फोटो लेने की अनुमति न होने से मैं उनकी नकल भारत नहीं ला सकता, इसका बड़ा अफसोस रहा।

स्थान पर लौट कर मैंने धर्मवर्धन को एक चित्रपट की नकल करने के लिए भेजा। उन्होंने अभी शिर को भी पूरा नहीं उतारा था, कि हुक्म आया-रे-डिङ्.-रिम्पो-छे के पत्र में अनुमति नहीं है, इसलिए नकल नहीं कर सकते। आज के बर्ताव से चित्त को अत्यन्त क्षोभ हुआ। रे-डिङ्. के लिए बहुत खेद हुआ। यदि उन्हें मंजूर न था, तो ल्हासा में ही क्यों नहीं कह दिया? हाँ- कह कर वैसा पत्र लिखना कभी भद्रोचित नहीं कहा जा सकता। इस मठ में एक बार आग लगी थी, जिसमें ये चित्रपट बाल-बाल बचे हैं। नहीं कहा जा सकता, कि भारतीय कला की अमूल्य निधि और दीपंकर के हाथ की यह पवित्र पुस्तक (जिसमें शायद उनकी हिंदी में रचित वज्रासन-वज्रगीति भी हो) न जाने कब इन नादान रक्षकों के हाथ से सर्वदा के लिए नष्ट हो जाय। जब दूसरी ओर ख्याल करता हूँ, तो मुझे ऐसे क्षोभ का कारण भी नहीं मालूम होता। प्रभुता पाकर ऐसा भाव होना संसार में सर्वत्र देखा जाता है। पवित्र समझी जाने वाली वस्तुओं के साथ भी ऐसा बर्ताव होता ही है। मुंह पर अप्रीतिकर बात न करना भी मनुष्य का स्वभाव है। खिलाड़ी सभी बाजियाँ नहीं जीता करते, तो मुझे इस असफलता पर क्षोभ क्यों?

ब्रग्-र्ग्यब्

7-8-34

रे-डिङ्. से चलते वक्त आकाश मेघाच्छन्न था। आगे चलने पर बूंदाबांदी भी शुरू हुई। रास्ते में एक-आध जगह चमरी के हलों से खेत जोते देखे, यह शायद हमारे यहाँ के माघ-पूस की जुताई की भाँति खेत को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए होगा। बारह बजे हम फिर-दो के घाट पर पहुँचे। उतरने में बहुत देर न लगी। उस दिन फुन्-दो ही में रहना था।

सतग्-लुङ्. से लिए दोनों आदमियों को छोड़ना था, इसलिए एक आदमी की जरूरत थी। गंदन्-छोस् कोर के लिए साढ़े नौ साङ्. (दो रुपये दस आने) तय हुआ। सीधे जाने से दो दिन का ही रास्ता है। आज लम्बी मंजिल थी और छ-ला की बड़ी जोत को पार करना था, इसलिए सात बजे ही रवाना हुए। आखिरी पाँच मील के रास्ते को छोड़ बाकी पहले ही वाला रास्ता था। नये रास्ते में रिन् छेन्-ब्रग् (रत्नशिला) मठ मिला। हमारा नया नौकर जल्दी गंदन्-छो-कोर् पहुँच कर लौटना चाहता था, इसलिए वह नाक की सीध पर आगे-आगे खच्चर ले जा रहा था। सामने एक पहाड़ पर कुछ स्तूपों सहित एक मठ देखा। उसने समझा, यही पोतो है, और हमें लेकर तीन बजे यहाँ पहुँच गया। पूछने पर मालूम हुआ, यह तो ब्रग्-र्ग्यब् (पृष्ठशिला) विहार है। उस मठ का संस्थापक ब्रग्-र्ग्यब् डोम्-तोन् के शिष्य पो-तो-प (1027-1104 ई.) का समकालीन था। इस प्रकार मठ की प्रथम स्थापना ग्यारहवीं सदी में हुई थी, पर उस समय का मठ कुछ नीचे था। आजकल इस मठ में एक अवतारी लामा रहता है। इससे पहले का तीसरा लामा बड़ा सिद्ध समझा जाता था। उसी की समाधि वाले घर में हम लोगों का आसन लगा। समाधि नहीं, एक छोटे से स्तूप के अन्दर लामा का मृत शरीर ही पद्मासनासीन रखा हुआ है। इस प्रकार के सुरक्षित रखे मृत शरीर को यहाँ वाले मर्-दोङ्. कहते हैं। मर जाने पर शरीर को नमक के भीतर रख दिया जाता है। दो महीने में शरीर सूख जाता है। फिर शरीर पर एक प्रकार का लेप करके स्तूप में रख दिया जाता है। किन्हीं-किन्हीं स्तूपों में छोटे छिद्र रखते हैं, जिससे लोगों को लामा का दर्शन होता है। हमारे पास के मृत लामा के स्तूप का छिद्र काफी बड़ा है। हमने लैम्प की रोशनी में फोटो लेने की कोशिश की, सफलता हो तब।

ल्हासा

10-8-34

परसों शाम को मुझे ल्हासा लौट आना पड़ा। मैंने एक सप्ताह और बाहर ही रहने का विचार किया था। पो-तो, गंदन्-छो-कोर्, रे-वा जैसे मठ तथा भोट-सम्राटों के समय के दो पाषाण-स्तम्भों को देखना जरूरी था, किन्तु परसों सवेरे हमारे सो-नम्-ग्यंजे पर फिर पागलपन आ गया। उसने और जगह जाने से इन्कार ही नहीं कर दिया, बल्कि वह अपनी लम्बी तलवार पर हाथ रखने लगा। भोट में वैसे भी मनुष्य का प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता, और यह आदमी तो मन्-खम् प्रदेश का रहने वाला है, जहाँ पर लोग मृत्यु से खेल करते हैं। इन्हीं कारणों से दीर्घ और कठिन चढ़ाई चढ़ कर, प्रायः तीस-बत्तीस मील की दौड़ लगा, 8 अगस्त को मैं ल्हासा चला आया।

तुम्हारा - राहुल सांकृत्यायन

बोध प्रश्न 3

1) इस यात्रा-वृत्तांत के लेखक कौन हैं?

.....

2) राहुल सांकृत्यायन जी कहाँ की यात्रा पर निकले हैं?

.....

3) उनकी यात्रा का उद्देश्य क्या है?

.....

4) रेडिङ् पहुँचने पर उन्हें किस तरह का सदमा पहुँचा।

.....

.....

5) इस यात्रा के क्षेत्र में उन्हें किस बात का अफसोस हुआ।

.....

.....

10.7 तिब्बत : ल्हासा से उत्तर की ओर : विश्लेषण

यह यात्रा-वृत्तांत राहुल सांकृत्यायन की प्रसिद्ध पुस्तक 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' का एक छोटा-सा अंश है। राहुल की दुर्गम एवं बीहड़ प्रदेशों की यात्राएँ इसी श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। एशिया के दुर्गम भूखंडों में, साहसिक यात्राओं का विवरण है। ये यात्राएँ साहसिक एवं मनोरंजक हैं।

10.7.1 प्रतिपाद्य

राहुल सांस्कृत्यायन ल्हासा में दो महीने ग्यारह दिन रहे जहाँ विनय-पिटक का अनुवाद तथा विज्ञप्ति के कुछ हिस्से का संस्कृत में अनुवाद करने के अलावा उन्होंने दो महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथों अभिसमयालंकार टीका और वादन्याय टीका को ढूँढ निकाला। तिब्बत में चित्रकला पर एक लेख लिखा तथा वहाँ के भिक्षुओं एवं गृहस्थों के अनेक प्रकार के आभूषण भी उन्होंने संग्रहीत किए। फेम्बो नामक स्थान की यात्रा का उद्देश्य बताते हुए राहुल ने लिखा है :

''मालूम हुआ कि इधर दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक के कितने ही विहार हैं, जिनमें रेडिङ् में तो निश्चित ही थोड़ी-सी ताल पत्र के पुस्तकों के होने की बात बतलाई गई है और संभावना औरों में भी है। वस्तुतः यही कारण है इधर आने का।''

राहुल ने अपनी यात्रा के दौरान होने वाली कठिनाइयों का विस्तार से वर्णन किया है। विहारों में पड़े प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन एवं संग्रह के लिए वहाँ की सरकार की अनुमति लेनी पड़ी थी फिर भी कहीं-कहीं मठाधीश लोग रोक-टोक करते ही रहते थे। बीहड़ स्थानों की यात्रा करना आसान काम नहीं होता। भौगोलिक कठिनाई के साथ-साथ लुटेरों और चोर बदमाशों का खतरा बना रहता है इसलिए राहुल ने यात्रा को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए सारा इंतजाम किया था।

''अभी एक और साथी को जैसे बने (इन्-चीमिन्-ची) जरूर ही ले जाना था, क्योंकि हम ऐसे प्रदेश में जा रहे हैं, जहाँ संख्या और पिस्तौल-बंदूक ही हमारी रक्षा कर सकती है।''

राहुल ने तिब्बतियों में व्याप्त घोर अंधविश्वास को रेखांकित करते हुए लिखा हैः

''नाती-ला को बहुत एतराज था - हमारी छाती पर बराबर मि-टि-कु (ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य स्मृति ज्ञान कीर्ति के नाम से फर्जी बनवाई मिट्टी की छोटी मूर्ति) रहती है। हमारे ऊपर गोली नहीं लग सकती। कहने पर उन्होंने पिस्तौल द्वारा परीक्षा कराने से इंकार कर दिया।''

X X X

''पिछले दलाई लामा फेम्बो पधारे थे, इसलिए रास्ता बनाया गया था - बल्कि हमारे दोस्त कादिर भाई के कहने के मुताबिक तो उस पर मोटर चल सकती है। आपको शायद ल्हासा में दलाई लामा के लिए तीन मोटरों का आना मालूम है। उसी अपशकुन से - कुछ लोग कहते हैं - दलाई लामा को शरीर त्याग करना पड़ा है और उनके कृपा पात्र कुभ्-मे-लाको, जो बिजली-मोटर जैसी खुराफातें सोचा करते थे, सर्वस्व से हाथ धो एक कोने में निर्वासित होना पड़ा।''

X X X

''एक घेरे में बहुत से स्तूप हैं, जिनमें से एक श-र-बा का शरीर भी है। इसी की बगल में एक छोटा-सा स्तूप है, जिसके महत्व के बारे में कहा जाता है कि संसार में चाहे हिम प्रलय हो जाय, किंतु इस स्तूप पर बर्फ नहीं पड़ेगी।''

उपर्युक्त उद्धरणों से हमें यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि तिब्बत का समाज बहुत ही पारम्परिक और रूढ़िवादी समाज था। तिब्बती अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का कठोरता से पालन करते थे। ज्ञान-विज्ञान के प्रति उनमें कोई आग्रह नहीं था शायद इसीलिए पुराने विहारों की तरह ही वहाँ संचित पुराने ग्रंथ भी बुरी अवस्था में पड़े थे। इनके अध्ययन और संरक्षण की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी।

> ''पुस्तकों की छल्लियाँ दीवार के सहारे खड़ी हैं। कुछ पुस्तकों के पन्ने तो कीड़े खा भी रहे हैं, पर कीड़ों को खाकर खत्म करने में अभी शताब्दियाँ लगेंगी। इस समय कीड़ों का भक्ष्य होने के सिवा इनका कोई प्रयोजन भी नहीं मालूम होता। यह इस तरह नहीं रखी गई हैं कि इनमें से कोई पुस्तक निकाली जा सके। मैं सोच रहा था कि भोट देश के पुराने मठों में कैद इन पुस्तकों का कब उद्धार होगा।''

श्रद्धालुओं के बारे में राहुल ने इस यात्रा-वृत्तांत में लिखाः

> ''हमने एक मानी पार की, फिर देखा, हमारे साथी तो एक छोटी चट्टान पर पत्थर के टुकड़ों को मार रहे हैं और साथ ही कहते जा रहे हैं - चा-फु-मा-फु (चाय प्रदान करो, मक्खन प्रदान करो)। मालूम होता है, सभी श्रद्धालु यहाँ पर चा-फु-मा-फु कहते हैं, तभी तो इस छोटी-सी चट्टान पर पचासों गोल-गोल गड्ढे हो गए हैं।''

अपनी यात्रा के दौरान राहुल ने तिब्बतवासियों के रहन-सहन को भी बहुत करीब से जानने की कोशिश की। तभी तो उन्होंने लिखा कि, ''छ-ला पार करने के बाद ही पुरुषों के बालों में भेद दिखलाई पड़ता है। यह लोग खाम् वालों की भाँति सामने के बालों को कैंची से कटवाते हैं। जहाँ से इस पत्र को लिख रहा हूँ वहाँ से आधे दिन के रास्ते पर ला-ग्त्रिस (जोत-युगल) है, जिसके पार होते ही हम होर्-प्रांत में पहुँच जाते हैं। भोट देश के होते हुए भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों की पोशाक में बहुत फर्क है। यह वहाँ के समाज में स्थानीय प्रभाव का चित्रण है। कहीं-कहीं राहुल को लूट-पाट करने वालों का भी भय सताने लगता है। उन्होंने लिखा हैः

> ''उनकी इन बातों पर विश्वास न होता था, बल्कि और संदेह बढ़ता जाता था कि कहीं मार कर सामान लूटने के लिए तो नहीं आया है। हमारे पास सौ रुपए के पैसे भी हैं और कुछ दूसरे सामान भी। ऐसा संदेह करने का कारण था - सो-नम्-ग्यंजे के जन्म-स्थान के लोगों का यही स्वभाव है। उनके देश में लूटमार लोगों का पेशा है।'

इस वर्णन से न केवल स्थान विशेष की स्वाभाविक वृत्ति का पता चलता है बल्कि यात्रा करने वाले की मानसिक स्थिति के बारे में भी जानकारी हासिल होती है। वह हर पल एक तनाव से भी गुजरता है क्योंकि आगे उसे अपने लक्ष्य को पाने की तीव्र उत्कंठा होती है। राहुल ने तिब्बत के स्थानीय निवासियों के स्वभाव का चित्रण करते समय कहीं पूर्वग्रह का परिचय नहीं दिया है बल्कि कठिनाइयाँ और स्थानीय निवासियों के चरित्रांकन में एक संतुलन बनाए रखने की पूरी कोशिश की है।

राहुल ने अपने इस यात्रा-वृत्तांत में प्रकृति का साथ कहीं नहीं छोड़ा। झरने, नदी, पहाड़, जंगल-झाड़ सभी में वे रमते हुए आगे बढ़ते हैं।

> ''उपत्यकाएँ और उनकी बेटी-पोतियाँ सभी घन-नील-वसना थीं, सिर्फ एक ओर बेरास्ते चलती पचास-साठ चमरियाँ (याक) काला दाग-सा बन रही थीं। यद्यपि दूर-दूर पर सफेद भेड़ों के झुंड चर रहे थे किंतु न हिलने-डुलने के कारण वे जहाँ-तहाँ पड़े पत्थर ही जान पड़ते थे।''

> ''रे-डिङ्. से चलते वक्त आकाश मेघाच्छन्न था। आगे चलने पर बूँदा-बाँदी भी शुरू हुई। रास्ते में एकाध जगह चमरी के हलों से खेत जोते देखे, यह शायद हमारे यहां के माघ-पूस की जुताई की भाँति खेत को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए होगा।''

राहुल के यात्रा-वृत्तांत में मनुष्य और प्रकृति का अटूट रिश्ता चित्रित हुआ है। कहीं-कहीं उन्हें चित्रकला के अद्‌भुत नमूने अपनी तरफ खींचते हैं - ''मुझे तो आशा न थी कि अजंता से इतनी समानता रखने वाले चित्रपट यहाँ हो सकते हैं। दो में तो अजंता के बोधिसत्व जैसी खड़ी तस्वीर है वही आभूषण, वही बंकिम ठवनि, वैसे ही कम और सुंदर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर प्रदेश। फोटो लेने की अनुमति न होने से मैं उनकी नकल भारत नहीं ला सकता, इसका बड़ा अफसोस है।''

जैसा कि यात्राओं में आमतौर से यह संभावना बनी रहती है, तिब्बत के बीहड़ों में यात्रा करते हुए राहुल को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कभी शासनतंत्र की तरफ से बाधाएँ आईं तो कभी मठाधीशों ने अध्ययन व संग्रह में रुकावटें खड़ी कीं। स्थानीय निवासियों की ओर से भी वे हमेशा सशंकित बने रहे। भौगोलिक स्थिति ने अलग से परेशान किया किंतु राहुल अपने लक्ष्य की ओर हमेशा बढ़ते रहे, उन्होंने कभी हार न मानी। स्थितियों को अपने अनुकूल बनाते हुए उन्होंने साहित्य, धर्म व दर्शन की अप्राप्य पुस्तकों का संग्रह किया। तिब्बत की यात्रा में प्राणों को हथेली पर रखकर चलना पड़ता था। राहुल ने लिखा है :

> ''पो-तो, गंदन्-छो-कोर, येर-वा जैसे मठ तथा भोट सम्राटों के समय के दो पाषाण-स्तंभों को देखना जरूरी था, किंतु परसों सबेरे हमारे सा-नम्-ग्यंजे पर फिर पागलपन आ गया। उसने और जगह जाने से इंकार ही नहीं कर दिया, बल्कि वह फिर अपनी लम्बी तलवार पर हाथ रखने लगा। भोट में वैसे भी मनुष्य का प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता, और यह आदमी तो मन्-खम् प्रदेश का रहने वाला है, जहाँ पर लोग मृत्यु से खेल करते हैं। इन्हीं कारणों से दीर्घ और कठिन चढ़ाई चढकर प्रायः तीस-बत्तीस मील की दौड़ लगाकर 8 अगस्त को मैं ल्हासा चला आया।''

राहुल की तिब्बत-यात्रा का वृत्तांत हमें वहाँ के इतिहास, भूगोल और समाज से परिचित करवाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यात्रा-वृत्तांतों ने दुर्गम प्रदेशों का वस्तुनिष्ठ भूगोल लिखने में काफी मदद की। राहुल ने तिब्बती समाज के बारे में लिखते हुए बहुत संयम से काम लिया है शायद इसीलिए उनके लेखन में यथार्थ ज्यादा विश्वसनीय रूप में अंकित हुआ है। उनके यात्रा-वृत्तांतों में निरपेक्ष दृष्टि, आत्मीयता एवं स्वच्छंदता के गुण विद्यमान हैं। व्यक्ति चित्रों के साथ मंदिरों, मठों और स्मारकों के चित्र उनके यहाँ भरपूर हैं। वे वस्तु एवं दृश्य वर्णन में केवल उसके वर्तमान स्वरूप का ही परिचय नहीं देते, बल्कि उसकी ऐतिहासिक सच्चाई को भी खोजने का प्रयास करते हैं। स्थान विशेष के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करने में वे नहीं चूकते हैं। डॉ० रघुवंश के अनुसार, ''उच्चकोटि के यात्रा-साहित्य में दृश्य-सौंदर्य, जीवन का रूप, इतिहास, पुरातत्व, अर्थनीति सब मिलकर एक रस हो जाते हैं।'' तिब्बत की यात्राओं में मठों के वर्णन के प्रसंग में भी राहुल की ऐतिहासिक प्रतिभा देखने ही योग्य है। उनके यात्रा-वृत्तांतों की एक और विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित करना जरूरी लगता है। वे स्थानों की ऐतिहासिक सम्पदा के वर्णन के साथ पुरानी दंतकथाओं, जनश्रुतियों एवं कहावतों का भी उपयोग करते हैं। इससे यात्रा-वर्णन में सरसता और रोचकता का समावेश होता है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि राहुल के यात्रा-वर्णनों के बीच-बीच में आने वाली लोक-कथाओं ने उनके यात्रा-वृत्तांतों की रोचकता बढ़ाई है। राहुल के इस यात्रा-वृत्तांत में उनकी ऐतिहासिक, वैज्ञानिक एवं मानवीय दृष्टि का परिचय मिलता है।

10.7.2 भाषा-शैली

भाषा विचारों और अनुभवों को प्रकट करने का माध्यम है और शैली उसका एक तरीका। भाषा किसी भी साहित्यिक रचना की शक्ति होती है। भावों को प्रकट करने की पूर्ण क्षमता ही भाषा का सबसे बड़ा गुण है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, सरलता, मृदुलता, लोच और गंभीरता जैसे गुण होने चाहिए। खड़ी बोली हिंदी को समृद्ध करने में जिन लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है, राहुल सांकृत्यायन उनमें से एक हैं। वे कई भाषाओं के जानकार थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, भोजपुरी में तो उन्होंने लिखा ही है, इसके अलावा रूसी, सिंहली, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर उनका अधिकार था। राहुल हिंदी साहित्य को बहुआयामी बनाना चाहते थे। यात्रा-वृत्तांत जैसी नई विधा को साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलाने में राहुल ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

राहुल की रचनाओं में संस्कृतनिष्ठ हिंदी का भव्य प्रयोग मिलता है। उपन्यास, कहानी, यात्रा-वृत्तांत, आत्मकथा एवं निबंध जैसी विधाओं में उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी का सहज प्रयोग किया है। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति, गूढ़ भावों के निदर्शन एवं व्यक्ति चित्र प्रस्तुत करने में उन्होंने प्रायः ऐसी ही भाषा का इस्तेमाल किया है। अपने जीवन के अनुभवों को लिखते समय राहुल ने सरल हिंदी का भी प्रयोग किया है। इसके अलावा उन्होंने अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तिब्बती, रूसी, फ्रेंच और चीनी भाषा के शब्दों का इस्तेमाल भाषा को संप्रेषणीय एवं समृद्ध बनाने के लिए किया है। वे स्थानीय बोलियों के प्रबल समर्थक थे। भोजपुरी में उन्होंने आठ नाटक लिखे! राहुल की भाषा मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों के मेल से बहुत प्रभावशाली बन गई है। अभिव्यक्ति के लिए जरूरत पड़ने पर वे नए शब्द भी गढ़ लेते थे।

पात्र, स्थिति एवं भाव के अनुकूल राहुल सांकृत्यायन भाषा का प्रयोग करते हैं। 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' में उन्होंने संस्कृतनिष्ट और सहज सामान्य दोनों तरह की भाषा का उपयोग किया है। मसलनः

> ''उपत्यकाएँ और उनकी बेटी पोतियाँ सभी धन-नील-वसना थीं।''

X X X

> ''पुराने विहारों की जैसी दुरवस्था आमतौर से तिब्बत में दिखाई देती है, वैसी ही इसकी भी है।''

X X X

> ''वही आभूषण वही बंकिम ठवनि, वैसे ही कम और सुंदर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर-प्रदेश।''

उपर्युक्त उद्धरणों में हम राहुल की संस्कृतनिष्ठ भाषा और आलंकारिकता के प्रभाव को आसानी से देख सकते हैं। दूसरी ओर सरल-सामान्य भाषा का प्रवाह भी देखने ही योग्य है:

> ''नहीं कहा जा सकता कि भारतीय कला की अमूल्य निधि और दीपंकर के हाथ की यह पवित्र पुस्तक (जिसमें शायद उनकी हिंदी में रचित वज्रासन-वज्रगीति भी हो) न जाने कब इन नादान रक्षकों के हाथ से सर्वदा के लिए नष्ट हो जाए।''

जहाँ तक शैली का प्रश्न है राहुल ने आमतौर से वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। यात्रा-साहित्य भी इन्हीं शैलियों में लिखा गया है। क्योंकि लेखक का मूल उद्देश्य यहाँ स्थान-विशेष का वर्णन करना होता है।

उदाहरण के लिए कुछ अंश प्रस्तुत हैं:

> ''आजकल वर्षा ऋतु है। भूले-भटके कितने ही बादल हिमालय के इस पार भी आ पहुँचते हैं और मैदान और पहाड़ जिधर देखो उधर ही हरी मखमली छोटी-छोटी घास बिछी हुई है।''

'तिब्बत ल्हासा से उत्तर की ओर जो 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' का ही एक अंश है, पत्र शैली में लिखा गया है :

''प्रिय आनंद जी,

..... स्थान पर लौट कर मैंने धर्मवर्धन को एक चित्रपट की नकल करने के लिए भेजा। उन्होंने अभी शिर को भी पूरा नहीं उतारा था कि हुक्म आया - रे-डिड्.-रिम्पो-छे के पत्र में अनुमति नहीं है, इसलिए नकल नहीं कर सकते। आज के बर्ताव से चित्त को अत्यंत क्षोभ हुआ।

तुम्हारा
- राहुल सांकृत्यायन''

यहाँ लेखक ने स्थान-विशेष का वर्णन करते हुए अपनी आत्मीयता, वैयक्तिकता और भावना का भी प्रदर्शन किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस शैली में राहुल ने स्थान-संबंधी वृत्तांत प्रस्तुत करने के साथ-साथ अपनी प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की हैं। इसमें यात्रा का उद्देश्य भी स्पष्ट हो गया है। इस शैली में लिखे गए राहुल जी के यात्रा-वृत्तांत रोचक, व्यावहारिक एवं रचनात्मक हैं तथा उनमें सहजता, सरसता और आत्मीयता का गुण विद्यमान है।

बोध प्रश्न 4

1) लेखक की यात्रा के वर्णन की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10.8 सारांश

'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' लेखक की 1933 से 1937 तक की कुछ यात्राओं का संकलन है। इस पुस्तक में राहुल जी की चार यात्राएँ हैं। पहली लद्दाख, दूसरी तिब्बत, तीसरी ईरान और चौथी अफगानिस्तान से संबंधित है। तिब्बत यात्रा में ल्हासा, चाड्, सक्य, ञनम् तथा नेपाल का वर्णन है। यह लेखक की सन् 1934 में की गई तिब्बत की दूसरी यात्रा है जिसमें पत्र-शैली का सुंदर प्रयोग किया गया है।

तिब्बत-यात्रा के दौरान राहुल को जिन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा था, उन सारे अनुभवों को उन्होंने बहुत ही आत्मीयता और तटस्थता के साथ रेखांकित किया है। इस यात्रा में उनका ज्यादा जोर इस बात पर था कि वहाँ की ऐतिहासिक, धार्मिक और दार्शनिक पुस्तकों का अधिक से अधिक अध्ययन व संग्रह कर लिया जाए। इसलिए राहुल के लिए यात्रा मिशन की तरह होती थी। इस यात्रा-वृत्तांत में तिब्बत का समाज, इतिहास, भूगोल, संस्कृति, धर्म व दर्शन अभिव्यक्ति पा सके हैं। राहुल ने वहाँ की सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों, विश्वासों एवं परंपराओं पर स्थान-स्थान पर प्रकाश डाला है। ज्ञान-विज्ञान का अभाव और कूपमंडूकता वहाँ के समाज में बहुत दिखाई देती है। एक तरह से कहा जाए तो, वहाँ के समाज के विषय में 'लकीर के फकीर' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। ज्ञानार्जन के प्रति कोई ललक वहाँ के लोगों में नहीं दिखाई देती। महत्वपूर्ण ग्रंथ सामग्री मठों में रखी हुई नष्ट हो रही है। यह सामाजिक गतिशीलता का प्रमाण नहीं माना जा सकता। लूटपाट और हत्या भी तिब्बत समाज का अहम हिस्सा है, राहुल के लेखन से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति का यह प्रभाव ही राहुल के यात्रा-वृत्तांतों की विशेषता है। कहीं-कहीं प्रकृति का रेखांकन भी मोहित करता है। भाषा और शैली सरल, सहज और प्रवाहपूर्ण है। इसलिए रोचकता बनी रहती है। अंत में, यह कहना गलत न होगा कि राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांतों में एक यायावर की भटकन ही नहीं है बल्कि एक खोजी व्यक्ति की उत्कंठा, लगन और समर्पण भी है। हिंदी में ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है।

10.9 शब्दावली

साइत	:	समय, मुहूर्त
उपत्यका	:	तराई, घाटी
घन नील वसन	:	नीले कपड़े वाली
प्रशिष्य	:	प्रधान शिष्य
पाषाण स्तम्भ	:	पत्थर का खंभा
कमखाब	:	रेशमी कपड़ा
चमरी	:	याक- मादा
तीर्थाटक	:	तीर्थ यात्री
तीर्थाटिका	:	महिला तीर्थ यात्री
एकादशमुख	:	ग्यारह मुँह वाले
पद्मसंभव	:	भगवान बुद्ध
परित्यक्त	:	जो छोड़ दी गई हो
निषिद्ध	:	वर्जित, मना
टका	:	रुपया

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में

2) स्थूल वर्णन प्रधान, मनःस्थिति, रेखांकन

बोध प्रश्न 2

क) यात्रा-वृत्तांत में लेखक का उद्देश्य स्थान विशेष के आचार-विचार, मनोरंजन तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण का चित्रण करना होता है।

ख) यात्रा के दौरान लेखक जिन स्थानों, स्मारकों, दृश्यों को देखता है, उनसे वह आत्मीय संबंध स्थापित कर लेता है।

ग) यात्रा-वृत्तांत में रोचकता लाने के लिए लेखक स्थान विशेष से जुड़ी लोक-कथा, या रैत कथा आदि का उल्लेख करता है।

2) क) प्रकृति का आनंद उठाने के लिए

ख) ऐतिहासिक ज्ञान अर्जित करने के लिए

ग) सामाजिक-सांस्कृतिक रुचियों एवं व्यवहारों को समझने के लिए

3) दोनों में यात्रा होती है। रिपोर्ताज में यात्रा साधन है, यात्रा-वृत्तांत में साध्य है।

बोध प्रश्न 3

1) राहुल सांकृत्यायन जी

2) रेडिङ् विहार (तिब्बत)

3) वे बौद्ध धर्म के हस्तलिखित ग्रंथों की तलाश में गए हैं।

4) वे जिन ग्रंथों की तलाश में आए थे, उनकी प्रतियाँ नहीं ला सके।

5) उन्हें इस बात का अफसोस हुआ कि मठों में ग्रंथ नष्ट हो रहे हैं, लेकिन उन्हें ग्रंथों को बचाने का कोई रास्ता नहीं मिल रहा है।

बोध प्रश्न 4

1) इस प्रश्न के उत्तर में उनकी यात्रा के अनुभव की चर्चा कीजिए। व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में उनके सजीव चित्रण की चर्चा कीजिए। इस चित्रण में उनकी भाषा शैली का भी उल्लेख कीजिए।

आपका उत्तर पूरी इकाई पर आधारित हो। लगभग एक पृष्ठ का हो।

इकाई 11 जीवनी (निराला की साहित्य साधना)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 जीवनी और अन्य गद्य विधाएँ

11.3 जीवनी की संरचना और विशेषताएँ

11.4 जीवनी लेखक रामविलास शर्मा

11.5 'निराला की साहित्य साधना' का पठन

11.6 'निराला की साहित्य साधना' का विश्लेषण

11.6.1 प्रतिपाद्य

11.6.2 भाषा-शैली

11.7 सारांश

11.8 शब्दावली

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

यह निराला जी की जीवनी का एक अंश है। इस जीवनी के लेखक हैं रामविलास शर्मा। इस पाठ में लेखक ने निराला जी के जीवन के उन महत्वपूर्ण प्रसंगों पर प्रकाश डाला है, जिनसे एक अक्खड़ ग्रामीण युवक से एक विख्यात कवि के रूप में निराला जी के उदय की यात्रा की झलक मिलती है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- साहित्यिक विधा जीवनी की रचना के तत्वों की व्याख्या कर सकेंगे;
- गद्य साहित्य में जीवनी के स्थान की चर्चा कर सकेंगे;
- इस जीवनी के अंश से निराला के चरित्र की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- रामविलास शर्मा कृत इस जीवनी का आस्वादन और मूल्यांकन कर सकेंगे और
- जीवनी लेखन की विशेषताओं को पहचानकर उसमें प्रवृत्त हो सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में गद्य का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के क्रूर दमन के बाद, हिंदी प्रदेश में, वैचारिक अभिव्यक्ति के साधनों की खोज के क्रम में ही गद्य के अनेक रूप सामने आए। वैचारिक विवाद और संघर्ष के लिए गद्य के विभिन्न रूपों के विकास के कारण ही भारतेन्दु युग को गद्य काल भी कहा जाता है। स्वाधीनता के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई के दौर में देशी-विदेशी महापुरुषों का स्मरण इस लड़ाई के एक अनिवार्य कार्यभार के दौर में स्वीकार किया गया। त्याग, बलिदान और तेजस्विता इस स्मरण के प्रमुख घटक बनकर उपस्थित हुए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की फूट डालने और राज करने की नीति के विरुद्ध साम्प्रदायिक सद्भाव को बढ़ावा देने वाले तत्वों को भी इस कार्यभार में शामिल करके चलने की प्रवृत्ति इस काल में दिखाई देती है।

अपने संक्षिप्त जीवन-काल में स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अनेक महापुरुषों के संक्षिप्त जीवन-वृत्त लिखे। एक ओर उन्होंने विक्रम, कालिदास, रामानुजाचार्य, शंकराचार्य, वल्लभाचार्य और महाकवि सूरदास आदि के जीवन-वृत्त लिखे, वहीं उन्होंने सुकरात, नेपोलियन तृतीय और लार्ड म्यो आदि के जीवन चरित्र भी लिखे। अपने समय में प्रचलित मुस्लिम-विरोधी विचारधारा के विरुद्ध भी वे सक्रिय हस्तक्षेप करते दिखाई देते हैं। आर्य समाज द्वारा प्रेरित और संचालित शुद्धि आंदोलन' के प्रभाव से वे अपने को मुक्त रखते हैं जिसके प्रभाव में तब बाबू देवकी नंदन खत्री सहित कई महत्वपूर्ण लेखक थे। इसका प्रमाण वे कुरान शरीफ का सार-संक्षेप हिंदी में प्रस्तुत करके देते हैं। इस तरह जीवनी साहित्य को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ी जा रही लड़ाई में एक उपयोगी अस्त्र की तरह इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति बहुत मुखर भले ही न हो, उसके लिए व्यंग्य और उपहास की वैसी शैली भी विकसित होती नहीं दिखाई देती है। फिर भी एक नव प्रस्फुटित गद्य-विधा के रूप में जीवनी को गंभीरता से लिए जाने का संकेत अवश्य देता है। चूंकि जीवनी का विकास अपने समय संदर्भों की आवश्यकता के बीच हुआ था, उसके प्रेरक और उद्‌बोधक स्वरूप के प्रति उसकी चिंता स्वाभाविक है।

11.2 जीवनी और अन्य गद्य विधाएँ

वैसे तो सारे साहित्य और कलाओं का मूल स्रोत जीवन ही है, लेकिन फिर भी कुछ साहित्य-रूप इस 'जीवन' का उपयोग बहुत सीधे और प्रत्यक्ष रूप में करते हैं। जीवनी के साथ इस तरह के अन्य साहित्य-रूप आत्मकथा, संस्मरण और रेखाचित्र आदि हैं। साहित्य में जीवनी से बहुत मिलता-जुलता रूप आत्मकथा का है। जीवनी और आत्मकथा दोनों में ही सामान्यतः किसी महत्वपूर्ण और अपने क्षेत्र में उल्लेखनीय व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को ही रचना का आधार बनाया जाता है। 'जीवनी' में जीवन की इस आधार-सामग्री को कोई दूसरा व्यक्ति प्रस्तुत करता है जबकि आत्मकथा में 'कथा' जीवनी का पर्याय होने पर भी मूल बल 'आत्म' पर होता है और उसमें जीवन का प्रस्तुतिकरण वही व्यक्ति करता है जिसका वह जीवन होता है। इन दोनों ही साहित्य रूपों में सामान्यतः संपूर्ण जीवन को ही आधार सामग्री के रूप में उपयोग में लाया जाता है। हिंदी में एक ओर यदि राहुल सांकृत्यायन और बच्चन की आत्मकथाएँ कथा के रूप में उल्लेखनीय हैं वहीं अमृतराय की 'प्रेमचंद कलम का सिपाही', रामविलास शर्मा कृत 'निराला की साहित्य साधना' और विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित शरत चंद की जीवनी 'आवारा मसीहा' आदि कुछ विशिष्ट और उल्लेखनीय जीवनियों के रूप में स्वीकृत हैं। कभी-कभी किसी व्यक्ति के जीवन को ही आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किए जाने के उदाहरण भी मिलते हैं। विष्णुचंद्र शर्मा ने मुक्तिबोध की जीवनी को 'मुक्तिबोध की आत्मकथा' के रूप में प्रस्तुत किया है।

दो उल्लेखनीय जीवनियाँ - 'अग्नि सेतु' और 'समय साम्यवादी' - में क्रमशः बांगला कवि काजी नजरुल इस्लाम और राहुल सांकृत्यायन के जीवन-वृत्त को जीवनी के स्वीकृत रूप में ही प्रस्तुत किया है। जीवनी अपनी प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के तथ्यों के आवेषण और प्रस्तुतिकरण पर बल देती है जबकि आत्मकथा स्वयं अपने बारे में तथ्यों के निर्मम और साहसिक उद्‌घाटन के कारण ही उल्लेखनीय मानी जाती है। हिंदी में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की अपेक्षाकृत संक्षिप्त आत्मकथा, आत्मकथा के रूप में स्वीकृत रही है। जीवनी में प्रस्तुत तथ्य ही उसे प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाते हैं, लेकिन कदाचित् ऐसी जीवनी असंभव है जिसमें लेखक कल्पना का उपयोग न करता हो। जिस जीवन को वह प्रस्तुत करता है वह सामान्यतः काफी पहले बीत चुका होता है। उस जीवन के पुनर्सर्जन के लिए उसे बहुधा ही अपनी सर्जनात्मक कल्पना का सहारा लेना होता है। लेकिन वह काल्पनिक पुनर्सर्जन भी अनिवार्यतः अन्य दूसरे स्रोतों से प्रमाणित होना चाहिए। रांगेय राघव ने कृष्ण,

बुद्ध और गोरखनाथ सहित अनेक मध्यकालीन संतों और कवियों के जीवन पर आधारित जो उपन्यास लिखे हैं उन्हें सामान्यतः जीवन चरित्र के उपन्यास के रूप में ही स्वीकृति मिली है। इसका आधारभूत कारण यही है कि जीवनी की अपेक्षा उनमें कल्पना का उपयोग अधिक हुआ है। इस पुनर्सर्जन की ऐतिहासिक प्रामाणिकता यहाँ भी बनी रहती है लेकिन जीवन के ब्यौरों और घटना-प्रसंगों की प्रस्तुति में यहाँ पर्याप्त स्वतंत्र रहने की छूट ली जा सकती है। जीवनी में ऐसी कोई छूट एक सीमित मात्रा में ही संभव होती है।

दूसरे साहित्य रूपों में जीवनी के निकट आने वाली विधाओं में रेखाचित्र और संस्मरण मुख्य हैं। रेखाचित्र के लिए उस व्यक्ति का बहुत प्रसिद्ध या सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होना अनिवार्य नहीं है। महादेवी वर्मा के 'अतीत के चल चित्र' और रामवृक्ष बेनीपुरी के 'माटी की मूरतें' में जिन व्यक्तियों के रेखाचित्र हैं, जीवन और समाज में वे लोग सामान्यतः हाशिए के लोग हैं। फिर भी उनके जीवन को इन दोनों ही रचनाकारों ने गहरी संवेदना और हार्दिकता के साथ व्यक्त किया है। यहाँ जीवन के कुछ पक्ष उतनी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किए गए हैं कि वे संपूर्ण उपेक्षित और वंचित वर्ग के प्रतिनिधि बनकर हमारी सहानुभूति के पात्र बन जाते हैं। वहाँ उनका पूरा जीवन हमारे सामने नहीं होता लेकिन उनके जीवन के कुछ प्रसंग या फिर उन प्रसंगों की भूमि ही उन्हें एक ऐसा आत्मिक संस्पर्श देती है जिसके कारण उनके प्रति करुणा का उद्रेक हुए बिना नहीं रहता। सामान्य और उपेक्षितों के प्रति इस मानवीय करुणा में ही इन लेखकों की सफलता निहित है। वैसे उपन्यास, कहानी, जीवनी साहित्य में भी रेखाचित्र की कलागत विशिष्टताओं का उपयोग हो सकता है, होता भी है, लेकिन एक विधा के रूप में रेखाचित्र उपेक्षितों के प्रति अपनी आत्मीयता और करुणा के बीच से ही अपनी पहचान बनाता है।

संस्मरण में सामान्यतः उस व्यक्ति का स्मरण होता है जो सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में अपने उल्लेखनीय योगदान के लिए जाना जाता है। इसमें जीवनी और रेखाचित्र के तत्वों का प्रचुर मात्रा में उपयोग होने पर भी मुख्य बल उस संबद्ध व्यक्ति से लेखक के निजी संबंध और संपर्क पर ही होता है। अपने सम्पर्क के आधार पर ही लेखक उस व्यक्ति के जीवन के किसी विशिष्ट पहलू का आकलन और पुनर्सर्जन करता है। कभी-कभी यह आकलन मतभेद और विवाद का कारण भी बन सकता है क्योंकि लेखक अपनी दृष्टि से ही उस व्यक्ति विशेष को प्रस्तुत करता है। अश्क का 'मंटो : मेरा दुश्मन' इस तरह के विवादास्पद संस्मरणों का एक सहज सुलभ उदाहरण माना जाता रहा है। यहाँ कदाचित लेखक के इस दृष्टिकोण की भूमिका को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अपने समकालीन लेखकों पर लिखे गए संस्मरणों में महादेवी वर्मा के 'पथ के साथी' और अज्ञेय के 'स्मृति लेखा' से लेकर काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह और रवीन्द्र कालिया सहित अनेक लेखकों के संस्मरण देखे जा सकते हैं। ये संस्मरण जीवनी की तरह न तो व्यवस्थित होते हैं और न ही संपूर्ण, फिर भी वे संबद्ध व्यक्ति के जीवन को ही प्रस्तुत करते हैं।

11.3 जीवनी की संरचना और विशेषताएँ

जीवनी शब्द जीवन से बना है; इसमें किसी व्यक्ति के जीवनवृत्त का वर्णन होता है। अंग्रेजी शब्द Biography भी यही अर्थ देता है - Bio जीवन Graphy वर्णन। जीवन चरित में एक ओर जीवन की स्थूल बाह्य घटनाएँ हैं - कुछ रोचक, कुछ विस्मयकारी। दूसरी ओर किसी व्यक्ति के चरित्र की कुछ विशेषताएँ हैं जो पाठक के लिए प्रेरणादायी बन सकती हैं। जीवनी में जीवन की प्रमुख घटनाओं के माध्यम से व्यक्ति के आंतरिक मानसिक विकास का चित्रण किया जाता है। जीवनी में बाह्य और आंतरिक का सामंजस्यपूर्ण चित्रण होता है।

जीवनी की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

क) **आदर्श चरित्र** : जीवनी उसी व्यक्ति की लिखी जाती है जिसमें चारित्रिक विशेषताएँ हों और लोग उस व्यक्ति के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर सकें। इस दृष्टि से आम तौर पर इतिहास में प्रसिद्ध और अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त व्यक्तियों की ही जीवनी लिखी जाती है। आधुनिक युग में इस नजरिए में कुछ परिवर्तन आया है। अब साहित्य में आम आदमी द्वारा आम आदमी के लिए लिखने पर बल है। नए युग में उन लोगों की जीवनी भी लिखी जाती है, जो ख्यातनाम नहीं हैं।

ख) **प्रामाणिकता** : जीवनी का उद्देश्य तभी पूरा होगा जब तथ्य और घटनाक्रम प्रामाणिक हों। अन्यथा वह कथा साहित्य होगा, जिसमें आदर्श चरित्र या कथानायक की सृष्टि की जाती है। जीवनी कथा साहित्य नहीं है, इसलिए जब तक वह प्रामाणिक न हो, लोग उसे प्रेरणास्पद नहीं मानेंगे। यह बात लेखक की विश्वसनीयता से भी जुड़ती है। लेखक को चाहिए कि वह जीवनी के नायक (या नायिका) के पत्र, डायरी, उनपर लिखे गए दूसरों के संस्मरण, निजी संबंधों की यादें, संभव हो तो उस व्यक्ति से लिए गए भेंट-वार्तालाप आदि का उपयोग करें।

ग) **संवेदना का स्वर** : जीवनी में नायक (या नायिका) के प्रति लेखक में आदर, श्रद्धा और गर्व का भाव होना चाहिए, जिससे वह आदर्श चरित्र की प्रमुख विशेषताओं को उजागर कर सके। लेखक का काम इतना ही नहीं है कि वह ऐतिहासिक क्रम से घटनाओं का प्रस्तुतिकरण कर दे। वह आदर्श चरित्र की उन विशेषताओं को ढूंढ निकालता है, जो पहली नजर में सामने नहीं आते। संवेदना और आदर्श चरित्र के साथ संबंधों के आधार पर कई तरह की जीवनियाँ होती हैं। ये हैं– आत्मीय जीवनी, लोकप्रिय जीवनी, कलात्मक जीवनी और मनोवैज्ञानिक जीवनी।

घ) **वर्णन की तटस्थता** : चाहे लेखक आदर्श चरित्र के कितने ही निकट क्यों न हो, कितने ही श्रद्धालु क्यों न हों, उनका चित्रण तटस्थ और निष्पक्ष होना चाहिए। उन्हें अपनी तरफ से कुछ छिपाना या बढ़ाना नहीं चाहिए; उन्हें अपनी ओर से संदेश देना या निष्कर्ष निकालना नहीं चाहिए।

ङ) **भाषा और शैली** : वर्णन की तटस्थता के बावजूद चित्रण सपाट न हो और न ही वर्णन उबाऊ हो। जीवंत चित्रण और आकर्षक शैली साहित्यिक जीवनियों का परम गुण है।

बोध प्रश्न 1

1) जीवनी की चार प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

   क) ..... ख) .....

   ग) ..... घ) .....

2) जीवनी और रेखाचित्र में प्रमुख अंतर क्या है?

   .....

   .....

   .....

   .....

11.4 जीवनी लेखक रामविलास शर्मा

रामविलास शर्मा ने निराला संबंधी अपनी अत्यंत महत्वाकांक्षी योजना के अंतर्गत, जो 'निराला की साहित्य साधना' नाम से तीन खण्डों में सम्पन्न है, 'निराला की साहित्य साधना' भाग-1 के रूप में निराला की सुविस्तृत जीवनी प्रस्तुत की। इसका प्रकाशन 1969 में हुआ। रामविलास शर्मा भले ही निराला की यह जीवनी लिखकर हिंदी में जीवनी लेखकों की प्रथम पंक्ति में आ गए हों, लेकिन मूलतः वे आलोचक और कवि हैं। वे अपनी साहित्य, संस्कृति और भाषा संबंधी नीतियों के लिए पर्याप्त विवादास्पद भी रहे। अज्ञेय द्वारा संपादित 'तार सप्तक' (1943) में एक कवि के रूप में शामिल किए गए। उनके आलोचनात्मक निबंधों का प्रकाशन उनके अध्ययन काल में, तीस के दशक में ही होने लगा था। वस्तुतः इसी दौर में वे लखनऊ में ही निराला के आत्मीय और घनिष्ठ संपर्क में आए और एक लंबे अरसे तक निराला के निकट संपर्क में रहे। लखनऊ में अपने अध्ययन काल में काफी समय वे दोनों एक साथ रहे। तीन खण्डों में समाप्त निराला संबंधी इस बृहद् और महत्वाकांक्षी रचना में डॉ. शर्मा ने निराला के व्यक्तित्व, जीवन चरित्र और कला के साथ ही उनके और उन्हें लिखे गए पत्रों का संकलन भी प्रस्तुत किया है। आधुनिक कवियों में निराला डॉ. शर्मा की पहली पसंद रहे हैं। इसके पूर्व सन 1946 में भी निराला पर उनकी एक पुस्तक छप चुकी थी जो अपने परवर्ती रूप में, अनेक संशोधनों और परिवर्धनों के साथ, निराला-साहित्य के मूल्यांकन की दृष्टि से एक उल्लेखनीय कृति मानी जाती रही है। लेकिन 'निराला की साहित्य साधना' अपनी प्रकृति लक्ष्य में एक भिन्न, अधिक अर्थपूर्ण और संपूर्ण रचना है। इसके पहले खण्ड के प्रकाशन के अगले वर्ष, सन् 1970 में, इस पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

'निराला की साहित्य साधना' के प्रथम खण्ड में निराला का जीवन चरित्र है। इसकी भूमिका में लेखक ने इस रचना के अपने उद्देश्य और इसकी प्रकृति की ओर संकेत करते हुए लिखा है, 'इसे लिखते समय मेरा ध्यान उनके व्यक्तित्व के अध्ययन की ओर रहा है। पन्द्रह अध्यायों में उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण है यह साहित्यकार का जीवन-चरित है, इसलिए इसमें किसी हद तक उनके साहित्य का मूल्यांकन भी शामिल है पर यह पुस्तक उनके साहित्य की आलोचना नहीं है। निराला के पारिवारिक, सामाजिक परिवेश से, उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों से उनके जीवन के बाह्य रूपों के साथ उनके अंतर्जगत से पाठकों को परिचित कराना मेरा उद्देश्य है।' अपनी इसी भूमिका में लेखक ने इस ओर भी संकेत किया है कि तथ्य संग्रह और विश्लेषण दोनों दृष्टियों से उसकी यह पुस्तक निराला संबंधी उसकी पहली पुस्तक से मूलतः और तत्वतः भिन्न है। इसी पुस्तक का पहला अध्याय 'सुर्जकुमार तिवारी' हमारे अध्ययन का विषय है। आइए, पहले हम जीवनी के अंश का पठन करें।

11.5 'निराला की साहित्य साधना' का पठन

माघ शुक्ल 11, संवत् 1955, तद्नुसार 29 फरवरी, 1899 को रामसहाय तेवारी के घर पुत्र जन्म हुआ। उस दिन मंगल था; ईश्वर ने अपनी पूजा के ही दिन रामसहाय को पुत्र का मुँह दिखाया। दरवाजे पर बाजे बजे; नाई, धोबी, डोम वगैरह नेग माँगने आए। महिषादल में अवध के और परिवार भी रहते थे, कई घर बैसवाड़े के ही लोगों के थे। इन सबसे स्त्रियाँ आईं; सोहर होने लगे। थोड़ी देर के लिए रामसहाय को लगा कि वह गढ़ाकोला में ही उत्सव मना रहे हैं। खैर, अभी न सही, जैसे ही मौका मिला, वह पुरखों की देहरी छुलाने बच्चे को गाँव जरूर ले जाएंगे। पंडित ने कहा - लड़का है बड़ा भाग्यवान, बड़ा नाम करेगा। इसका नाम रखो - सुर्जकुमार।

सुर्जकुमार अब आठ साल के हो गए थे। लोगों से सुनते कि जनेऊ हो जाने के बाद लड़के हर किसी के हाथ का छुआ खा-पी नहीं सकते। सुर्जकुमार सोचते, आखिर जनेऊ पहनने से ऐसा क्या हो जाएगा कि मैं दूसरे का छुआ खा न सकूँगा। पतुरिया* के लड़कों से दोस्ती थी। उसके यहाँ आना जाना बंद करना पड़ेगा। अब ताल्लुकदार भगवानदीन दुबे नहीं थे। समाज में इस परिवार का मान घट गया था। जब ताल्लुकदार ने बड़े लड़के शमशेर बहादुर का जनेऊ किया था, तब ब्रह्मभोज में सब बाम्हन शामिल हुए थे। पर अब इन्हीं लोगों ने उनके यहाँ खाना-पीना बंद कर दिया था। पतुरिया के छोटे लड़के फतहबहादुर ने सुर्जकुमार से कहा, 'अभी तुम हमारे यहाँ खाते हो, जब जनेऊ हो जाएगा, न खाओगे।' उन्हें यह भी याद दिलाया कि उनके ताल्लुकदार पिता ने सुर्जकुमार के बड़े चाचा को जमीन माफी दी थी। फतहबहादुर की बहन परागा ने कहा, 'बदलू सुकुल के यहाँ महुए की लप्सी खाओगे, हमारे यहाँ हलुआ नहीं।' सुर्जकुमार ने तय किया कि जनेऊ के बाद भी इनके यहाँ खाएँ-पीएँगे, देखें कोई क्या कर लेता है।

भैयाचार आए। यज्ञोपवीत* संस्कार पूरा हुआ। प्रथा के अनुसार सुर्जकुमार ने हठ किया कि विद्या पढ़ने जाएँगे; माँ की जगह काकी ने मनाते हुए कहा, बेटा मान जाओ, घर छोड़कर मत जाओ। पंडितजी ने मंत्र पढ़े। सुर्जकुमार ने जनेऊ पहना, अब वह बाकायदा द्विज हुए। पिता ने सावधान किया, 'अब आज से, खबरदार, पतुरिया के घर का कुछ खाना-पीना मत।' सुर्जकुमार को याद आया कि पतुरिया मुसलमान है, उसके लड़के अपने को पंडित समझते हैं, इसलिए माँ होने पर भी उसे भोजन दूर से देते हैं। पिता से बोले, 'पतुरिया का छुआ तो उसके लड़के भी नहीं खाते-पीते।' रामसहाय ने कहा, 'उनके हाथ का भी मत खाना।' पर सुर्जकुमार ने हुज्जत की 'जब ताल्लुकदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे?' इस पर रामसहाय ने डाँटकर कहा, 'हम जैसा कहते हैं कर।'

एक दिन पतुरिया-पुत्र फतहबहादुर कुएँ पर नहा रहे थे कि उधर सुर्जकुमार निकले। इन्हें देखकर फतहबहादुर व्यंग्य से मुस्कराए। मतलब यह कि अब तुम्हारी हिम्मत नहीं कि हमारे यहाँ खाओ-पियो। सुर्जकुमार ने मतलब समझकर कहा, 'भैया, पानी पिला दीजिए।' फतहबहादुर ने प्रसन्न होकर पानी पिलाया, गाँव के जो ब्राह्मण उन्हें अपमानित करते थे, उनसे उन्होंने इस तरह बदला लिया। ब्राह्मणों को मालूम हुआ। उन्होंने जाकर रामसहाय से शिकायत की - 'आपका लड़का सबके सामने पतुरिया के छोटे लड़के का भरा पानी उन्हीं के लोटे से पी रहा था। अभी नादान है, इसलिए इस दफा माफ किए देते हैं; फिर अगर हरकत करते देखा गया, तो हमें लाचार होकर आपसे व्यवहार तोड़ना होगा।' शिकायत सुनकर रामसहाय तेवारी को बड़ा क्रोध आया, सुर्जकुमार की अच्छी तरह मरम्मत कर डाली। पर इससे पतुरिया-परिवार से सुर्जकुमार का स्नेह-संबंध टूटा नहीं। कुछ दिन बाद उन्होंने फिर वैसी ही हरकत की। और यह चोरी-छिपे नहीं वरन् खुलकर, जिससे दम्भी विप्रवर्ग* को सब-कुछ मालूम हो जाए। गाँव के मुखिया ने रामसहाय से कहा, 'क्या तुम दूसरों का धर्म लेना चाहते हो? आज तुम्हारा लड़का पतुरिया के लड़के से ले-लेकर भुने चने चबा रहा था। आज से गाँव के ब्राह्मणों में तुम्हारा व्यवहार बंद है।'

रामसहाय तेवारी के स्वभाव में क्रोध और स्वाभिमान की मात्रा बराबर थी। इसके सिवा वह सुर्जकमार को प्यार भी करते थे; क्रोध में आकर जब-तब हाथ छोड़ बैठते थे पर यह आवेश क्षणिक होता था। जाति-बिरादरी की मर्यादा के लिए वह अपने प्यारे पुत्र की फिर ठुकाई करें, यह असंभव था। इस बार उनका सारा क्रोध मुखिया पर बरस पड़ा। उन्होंने डाँटकर कहा, 'तू हमारा पानी बंद करेगा? शहर में होते तो देखते हम, कितने आदमियों का बम्बे का पानी और डाक्टर की दवा छुड़ाते हो। यहाँ क्या नाम करने को कौन-सा काम और गाने को छीता हरन।' मुखिया से कुछ जबाब देते न बना। अपना-सा मुँह लेकर चले गए। रामसहाय ने बेटे का पक्ष ही नहीं लिया, मुखिया के विरुद्ध उसी का दिया हुआ तर्क भी

इस्तेमाल किया। सुर्जकुमार ने ही उनसे पूछा था, 'जब ताल्लुकेदार थे, तब आप लोग उनका छुआ खाते थे? रामसहाय ने पुत्र को डाँट दिया था, पर मन में उसकी तर्क-बुद्धि के कायल थे।

जनेऊ के बाद सब लोग महिषादल आए। रामसहाय ने अब सुर्जकुमार की पढ़ाई की ओर ध्यान दिया। महिषादल में हाई स्कूल था ही। उन्होंने सुर्जकुमार को उसी में भर्ती कराने का विचार किया। 13 सितम्बर 1907 को महिषादल स्कूल की कक्षा 8 सेक्शन-बी (अब के हिसाब से तीसरी कक्षा) में सुर्जकुमार का नाम लिखा दिया। पिता और गार्जियन - रामसहाय तेवारी; निवास स्थान - गढ़ाकोला, उन्नाव; पेशा - नौकरी; 'रिमार्क्स' के खाने में हेडमास्टर जे.एन.कुंजीलाल ने लिखा - 'ऐडमिशन फ्री'। राजकर्मचारी का लड़का था, भर्ती होने की फीस नहीं ली गई। उम्र दो साल बढ़ाकर लिखाई गई - दस साल आठ महीने। सुर्जकुमार की क्लास के दूसरे लड़के ज्योतीषचन्द्र, विभूतिभूषण आदि चौदहवें, पन्द्रहवें साल में थे; सुर्जकुमार का अभी नवाँ ही चल रहा था। कद में लम्बे होने पर भी वह अपनी कक्षा में सबसे कम उम्र वाले लड़कों में थे। अब तक घर में कोई नियमित पढ़ाई भी न हुई थी, इसलिए दर्जे में उनका कमजोर रहना अनिवार्य था।

स्कूल में पढ़ते हुए सुर्जकुमार तेवारी राजा, अंग्रेज, जमादार - इन शब्दों का अर्थ समझने लगे। गढ़ाकोला से महिषादल कितना भिन्न है! कहाँ वह छोटी-सी लोन नदी, कहाँ यह विशाल नद रूपनारायण! हर तरफ पानी-ही-पानी दिखाई देता है; नदियाँ, नाले, तालों की तो गिनती नहीं। उपजाऊ धरती, हर तरफ वृक्ष, लताएँ, घास, फूल और काँटे, सब बेसँभाल बढ़ते-फैलते हुए; क्षितिज तक फैले हुए सुनहले धान के खेत, बीच में खेतों को चीरती हुई सड़क, आस-पास और क्षितिज पर गहरे हरे रंग के वृक्षों की पाँति। दृश्य सुंदर किंतु मलेरिया का प्रकोप, सारा क्षेत्र विषैले साँपों से भरा हुआ।

राजमहल के चारों ओर प्रशस्त* उद्यानभूमि, हरी दूब वाले बड़े-बड़े पार्क, पानी से भरी हुई परिखा में कमल, बड़े-बड़े लाल गुलाबों से भरा हुआ पूरा एक मैदान; बेला, जुही, हरसिंगार, बकुल, चम्पा के ऋतु-अनुसार फूल; आम, जामुन, लीची, फालसे, अनार, कटहल के वृक्ष; जगह-जगह बाँसों के झाड़; नारियल के पेड़ हर तरफ। सुर्जकुमार ने पिता के साथ उन कमरों की झलक भी देखी जिनमें जरी के काम वाले वस्त्र, जवाहरात, सोने के आभूषण, कीमती बर्तन रखे जाते थे। बड़े-बड़े संदूकों में राजकोष यहाँ रखा रहता है, इसका आभास भी उन्हें था। महल के हर निकास पर पहरा रहता है, यह भी उन्हें मालूम था। चौधरी भगवानदीन दुबे गढ़ाकोला में ताल्लुकेदार कहलाते थे; महिषादल में उनकी हैसियत एक मामूली नौकर से ज़्यादा न होती। महिषादल राज्य लगभग चार सौ वर्गमील का क्षेत्र घेरे हुए था, सालाना आमदनी बारह लाख थी। तीन लाख छत्तीस हजार तो सरकारी मालगुजारी देनी होती थी।

एक दिन सुर्जकुमार ने पिता से कहा, 'तुम्हारे मातहत'* इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते?' रामसहाय को शक हुआ कि उनके बेटे को किसी दुश्मन ने बरगलाया है। उन्होंने पूछा - किसने सिखाया है? सुर्जकुमार ने जितना ही इंकार किया, उतना ही उनका शक पक्का होता गया। उन्होंने लड़के को बहुत मारा, इतना मारा कि सुर्जकुमार बेहोश हो गए। राजा ईश्वरप्रसाद ने रामसहाय को अपने यहाँ नौकर रखा था, उनके पुत्र सतीप्रसाद पर रामसहाय की सहज ममता थी। अब वह साठ के नजदीक पहुँच रहे थे। इस उम्र में राजा के खिलाफ बगावत? पुत्र पर क्रोध करना स्वाभाविक था। फिर राजा क्षत्रिय न होकर ब्राह्मण थे। अलबत्ता कान्यकुब्ज न थे, सरयूपारीण ही थे, पर थे तो ब्राह्मण। पछाँह से उनका संबंध था। घर के लोग साफ हिंदी बोलते थे। हर दृष्टि से सुर्जकुमार का सुझाव उन्हें किसी शत्रु का रचा हुआ षड्यंत्र ही लगा।

सुर्जकुमार को राह पर लाने के लिए उन्होंने एक काम और किया। अपने गुरुजी के पास ले जाकर उन्हें गुरुमंत्र दिला लाए, सुर्जकुमार और अपने भतीजे बदलूप्रसाद का भविष्य सुखी बनाने के लिए उन्होंने गढ़ाकोला वाला घर नये सिरे से बनवाया। नया घर भी कच्चा था, पर बड़ा था और परिवार के रहने लायक था।

सुर्जकुमार के दिन मजे में कट रहे थे। स्कूल में भर्ती होने से उनके खेलकूद में कोई तब्दीली न हुई थी। मुहल्ले में लड़कियाँ हैं, उन्हें देखना अच्छा लगता है, सुर्जकुमार यह समझने लगे थे। कोर्स की किताबें अच्छी न लगती थीं पर इंद्रजाल की पोथी पढ़कर मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के बारे में वह बहुत कुछ जान गए थे। एक दिन इन्द्रजाल की पोथी के अनुसार उन्होंने मंत्र सिद्ध करने का विचार किया। रात के नौ बजे होंगे। वह भाभी की कोठरी में थे कि छछूँदर दिखाई दी। उन्होंने उठकर तुरंत किवाड़ बंद किए, फिर धोती उतारकर फेंक दी, हाथ में जूता लेकर छछूँदर के पीछे दौड़ने लगे। उल्टे जूते से छछूँदर मारनी थी। बड़ी मुश्किल से मार पाए। फिर हाँडी में भरकर उसे बाहर गाड़ आए। लौटकर धोती पहनी।

स्त्रियों में चर्चा होने लगी कि सुर्जकुमार को मंत्र-सिद्ध है, उनकी झाड़-फूंक से रोगी अच्छे हो जाते हैं। पड़ोस में सुकुलाइन नाम की युवती को यह सब ढोंग मालूम हुआ। उन्होंने अपनी शंका सुर्जकमार की भाभी के सामने प्रकट की। भाभी ने सुर्जकुमार को ललकारा - 'लोग कहते हैं, तुझे जंत्र-मंत्र कुछ नहीं आता, तू ढोंग करता है।' सुर्जकुमार ने सिद्ध पुरुष की तरह आत्मविश्वास से जवाब दिया, 'जिसको विश्वास न हो, आजमा ले। भाभी ने कहा कि सुकुलाइन को अपनी करामात दिखाओ। सुर्जकुमार एक कनेर का फूल तोड़ लाए और बोले - 'मैं मंत्र पढ़कर यह दूंगा। इसे लेना होगा। बस, इसके बाद मैं सिद्ध हूँ या नहीं, देख लेना।' भाभी फूल लेने से डरी, सुकुलाइन से कहा, फूल ले लो। वह बोलीं, 'फूल लेने से क्या होगा?' सुर्जकुमार ने जवाब दिया, 'मंत्र के जोर से हमेशा मेरे पीछे लगे रहना होगा। मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, पीछे-पीछे जाना होगा।' सुकुलाइन की हिम्मत पस्त हो गई। भाभी से बोली, 'भई, मैं बहन हूँ, मैं कैसे फूल ले लूँ? तुम भाभी हो, तुमको उतना दोष नहीं।' इस तरह कनेर का फूल दिखाने से ही सुर्जकुमार इस मारण-उच्चाटन युद्ध में विजयी हुए।

रामसहाय तक ये बातें पहुँची हों चाहे नहीं, कुलरीति के अनुसार पुत्र का ब्याह कर देना जरूरी था। अभी उम्र बारह के आस-पास थी, ब्याह की कोई जल्दी न थी, पर गाँव में लड़कों का ब्याह इस उम्र तक कर दिया जाता था। डलमऊ में राम-दयाल द्विवेदी के यहाँ बात पक्की हुई लड़की की उम्र करीब ग्यारह साल।

रामसहाय गाँव आए और सुर्जकुमार के ब्याह की तैयारी शुरू हो गई। सात सुहागिनों ने एक साथ मूसल पकड़कर धान कूटे, एक साथ दरेती का खूटा पकड़कर उड़द दले। उड़द की दाल भिगोई गई। रामसहाय को बूढ़ी भौजाई के साथ चौके पर बिठाया गया। दोनों की गाँठ जोड़ी गई और दोनों ने दाल पीसने की रस्म पूरी की। फिर उड़द की धोई दाल के बड़े तले गये। गेरू से दरवाजे पर माँई बनाई गईं, उन्हें बड़ी-भात खिलाया गया। हर रोज ढोलक बजती, गीत होते। नाइन सुर्जकुमार के उबटन लगाती। आखिर निकासी का दिन आया। सुर्जकुमार को हाथ-पैरों में कड़े पहनाये गये, गले में कंठा, पीली धोती, पीला जामा, पीली पगड़ी पहनाई गई। सिर पर मौर रखा गया। झैयम-झैयम करते बरात गढ़ाकोला से रवाना हुई।

डलमऊ पहुँचने पर बरातियों को मिर्चवान पिलाई गई, फिर नाश्ते के लिए पूड़ियाँ आईं। बरातियों ने हाथ-मुँह धोया, नाश्ता किया, कपड़े बदले। अगवानी हुई। हँसी-मजाक करते लोग फिर जनवासे लौट आए। कुछ देर बाद भाँवरों के लिए बुलावा आया। मंडप के नीचे

पंडित ने मंत्र पढ़े, सुर्जकुमार और मनोहरादेवी की गाँठ जोडी गई। दोनों ने भाँवरें घूमी। फिर देवताओं के सामने वर-वधू ने एक-दूसरे को दही-बताशे खिलाए। मनोहरादेवी घूँघट मारे थीं, सुर्जकुमार उनका मुँह देखने में असफल रहे। दूसरे दिन भात के समय सुर्जकमार ने स्त्रियों को गालियाँ गाते सुना। शाम को छोटी बढ़ार और तीसरे दिन बड़ी बढ़ार के समय भी यह सिलसिला जारी रहा। ब्याह हो गया पर बहू अपने मायके ही रही। सुर्जकुमार पिता और बरातियों के साथ गढ़ाकोला वापस आए। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद सब लोग फिर महिषादल आ गए।

सुर्जकुमार महिषादल में फिर पहले जैसा जीवन बिताने लगे। खेल-कूद में ज्यादा समय पहले ही जाता था, अब पढ़ने में मन और भी कम लगता! अब वह फुटबाल के अच्छे खिलाड़ी हो गये। तैरने में कुशल थे। नाटक देखने में उन्हें विशेष आनंद आता था। महल के पास ही नाट्यशाला थी जहाँ राजा सतीप्रसाद जब-तब नाटक कराते थे। बँगला नाटक 'तरुबाला' में सुर्जकुमार ने एक 'हिंदुस्तानी' का पार्ट किया। कुछ दिन बाद वहाँ स्टार थियेटर आया। उसके रंगमंच की चमक-दमक, अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के ठाट-बाट देखकर सुर्जकुमार को लगा - सबसे बढ़िया जीवन इन्हीं का है। नाटक, खेल कूद के साथ सुर्जकुमार ने अपने शरीर को सुदृढ़ और सुंदर बनाने की ओर ध्यान दिया। महिषादल का वातावरण ही ऐसा था। हर सिपाही थोड़ी-बहुत डंड-बैठक करता था। दूसरे राजा-रईसों की तरह महाराज सतीप्रसाद गर्ग के यहाँ भी अच्छे-अच्छे पहलवान थे। स्वयं महाराज सतीप्रसाद अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध थे।

सुर्जकुमार कसरत करते, बादाम छानते, रामायण पढ़ते और मित्रों से गप लड़ाते। राजमहल के सामने जो बड़ी नहर थी, उस पर कलकत्ता जाने वाले स्टीमर देखते, किश्तियों में लोग माल ढोकर लाते, छोटा-सा बाजार, जैसा उन्होंने अपने गाँव से कुछ दूर पुरवा में देखा था, स्कूल के पास ताल के किनारे बैठकर मित्रों से सुनते, कैसे इसी मिदनापुर जिले में प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र सरकारी अफसर थे और यहाँ अपने एक-दो उपन्यास भी उन्होंने लिखे थे। बंगाली जाति महान् है, बँगला भाषा के समान भारत की कोई भाषा नहीं है, रवीन्द्रनाथ संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, सुर्जकुमार बंगाली नहीं 'हिंदुस्तानी' हैं, यह सब ज्ञान एंट्रेन्स परीक्षा देने से पहले ही मित्रों ने उन्हें करा दिया। सुर्जकुमार बँगला की अपेक्षा हिंदी ही ज्यादा जानते थे। उनका मन भक्ति-साहित्य और शृंगार-रस की कविता, दोनों में ही रमता था। उन्होंने ब्रजभाषा की काफी कविता पढ़ डाली थी। पद्माकर उनके प्रिय कवि थे। उनकी सानुप्रास शब्दावली, शृंगार-वर्णन में भी ओजगुण का पुट, सुर्जकुमार को विशेष पसंद था। पद्माकर के शृंगार-वर्णन की चित्रमयता उनका मन मोह लेती थी। स्मरण-शक्ति अच्छी थी, विशेषकर जहाँ शब्द योजना सुंदर हो और शृंगार के चित्र खींचे गये हों। सुंदर कवि ने राजा की लड़की विद्या से प्रेम किया, राजा ने उसे प्राणदंड दिया। जब प्रहरी उसे सूली देने ले जा रहे थे तब वह अपने और विद्या के प्रेम संबंध पर छंद पढ़ता हुआ राजप्रासाद के सामने से निकला। उनमें एक छंद यह था:

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीम्
फुल्लारविन्दनयनां तनुरोमराजिम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वलितां लसांगीम्
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि।

राजा ने छंदों पर मुग्ध होकर प्राणदंड की आज्ञा रद्द कर दी। सुर्जकुमार को 'विद्या सुंदर' की कहानी बहुत पसंद आई। 'चौर पंचाशिका' का उपर्युक्त छंद वह खूब रस लेकर गुनगुनाते रहते।

ब्याह हुए दो वर्ष बीत गये थे। सोलह के नजदीक पहुँच रहे थे। लोग कहते थे, कंठ फूट आया, मसें भीगने लगीं, बगलें निकल आईं, अब गौना कर देना चाहिए। सुर्जकुमार अपनी राने देखते, बोतल जैसी ढली हुई लगतीं। कमर बालिश्त भर, सीना खूब चौड़ा, सिर पर घने काले बाल,गोरा रंग, मदभरी आँखें, सुर्जकुमार अपनी ही छवि पर मुग्ध हो जाते। साथ ही कनकचम्पकदामगौरी विद्या का चित्र भी आँखों के सामने घूम जाता। रामसहाय तेवारी ने तै किया कि लड़के का गौना कर देना चाहिए और बहू को महिषादल ले आना चाहिए।

पत्र को लेकर रामसहाय गढ़ाकोला पहँचे, वहाँ से गौना लेने डलमऊ गए। सुर्जकुमार की ससुराल में इस बात की बड़ी चर्चा थी कि गौने के बाद बिटिया परदेस बड़ी दूर बंगाल - चली जाएगी। वर-वधू की गाँठ जोड़कर उनसे जब पूजा कराई जा रही थी, तब घर की एक वृद्धा ने कहा, दामाद जवान, बिटिया जवान, परदेस ले जाते हैं तो ले जाने दो।' लोग उन्हें जवान समझते हैं यह जानकर सुर्जकुमार को विशेष प्रसन्नता हुई। गौना हुआ। बहू को बिदा कराके रामसहाय गाँव आये। दुर्भाग्य से वहाँ उन दिनों प्लेग की बीमारी फैली हुई थी। लोग घरों से निकलकर बाग में झोंपड़े डालकर रहते थे। महुए के पेड़ के नीचे एक झोंपड़े में सुर्जकुमार का बिस्तर लगाया गया। जीवन में पहली बार उन्हें नारी-देह के स्पर्श का सुखद अनुभव हुआ। मनोहरादेवी कुल तेरह साल की थी।

गौना लेकर आये अभी चार-पाँच दिन ही बीते थे कि सुर्जकुमार के ससुर अपनी बिटिया बिदा कराने आ पहुँचे। गाँव में बीमारी फैली है यह उन्हें मालूम था। बेटी को बहुत प्यार करते थे, डर था कि महामारी में उसे कुछ हो न जाये। लड़की के यहाँ लोग खाते नहीं हैं, रामदयाल दुबे ने गढ़ाकोला में पानी भी न पिया। बिदा के लिए जल्दी की। रामसहाय को बहुत बुरा लगा। बंगाल से इतना रुपया खर्च करके आये हैं, लड़का पाँच दिन भी बहू के साथ न रह पाया। दुबे लड़की के स्वास्थ्य की चिंता के कारण इतनी जल्दी आये हैं, यह सोचकर उन्हें और भी क्रोध आया। आखिर महामारी का डर उनके बेटे के लिए भी है। बिटिया के लिए बड़ा डर लगा, दामाद के बारे में कुछ न सोचा। क्रोधी स्वभाव के थे ही। बोले - ले जाओ अपनी बिटिया, हम लड़के का दूसरा ब्याह कर लेंगे। दुबेजी कुछ ऊँचा सुनते थे। समधी की पूरी बात समझे बिना बिटिया को बिदा कराके चल दिये। पर बिटिया ने सारी बात सुनी और समझ ली थी।

मनोहरादेवी से उनकी माँ पार्वतीदेवी ने सब हाल सुना तो बहुत परेशान हुई। मेरी दो दाँत की लड़की, उसके सामने दूसरे ब्याह की बात! उन्होंने पंडित रामसहाय के नाम चिट्ठी भिजवाई, कसूर के लिए माफी माँगी, दामाद को गवहीं देने के लिए निमंत्रित किया। गौना हो जाने के बाद गवहीं की रस्म होती है। वर ससुराल जाकर कुछ हफ्ते या महीने वहाँ रहता है। फिर बहू को बिदा कराके अपने घर आता है।

रामसहाय को प्रस्ताव पसंद आया। लड़के से ससुराल जाने को कहा। समधी से बदला लेने के लिए ताकीद कर दी, यहाँ से तिगुना खाना। सुर्जकुमार ससुराल जाने को तैयार बैठे थे। पिता की आज्ञा तुरंत स्वीकार कर ली। कहा कि घी और बादाम की मात्रा तिगुनी कर देंगे! अफसोस इस बात का किया कि वहाँ बेदाना मिलता नहीं, वर्ना शरबत में ही रोज तीन रुपये खर्च करा देते। रामसहाय ने सुझाया, रूह की मालिश कराना रोज, होश दुरुस्त हो जाएंगे। बाप-बेटे घुल-घुलकर बतियाने लगे, रामदयाल दुबे को कैसे छकायें, इस बारे में दोनों ने षड्यंत्रकारियों की तरह योजना बनाई। इस समय उन्हें देखकर कोई यह न कहता कि इन्हीं रामसहाय ने कभी बेटे की मरम्मत भी की होगी।

गवहीं की तैयारी हुई। बक्से में धराऊ कपड़ों के अलावा एक जोड़ी जूते भी रख लिये। बैसवाड़े की धूल में जूते बेआब हो जाते, ससुराल में पहनने लायक न रहते। डलमऊ

कलकत्ता न था पर गढ़ाकोला को देखते तो कस्बा था। सुर्जकुमार को अपनी नागरिक सभ्यता से ससुराल वालों को प्रभावित करना था, वह बैसवाड़े के कोई ऐसे वैसे देहाती हूस नहीं हैं, यह बताना था। बंगाली ढंग से कीमती शांतिपुरी धोती बाँधी, उस पर कमीज पहनी, छाता लिया और स्टेशन के लिए रवाना हुए। गाड़ी शाम के चार बजे आती थी पर स्टेशन दूर था, इसलिए ढाई बजे घर से निकले। बैलगाड़ी का इंतजाम न था, पैदल ही स्टेशन चले। चन्द्रिका लोध को खिदमतगार बनाकर पहले ही सामान के साथ स्टेशन भेज दिया था।

सूरज डूबते डलमऊ स्टेशन आया। चन्द्रिका से सामान उठवाकर चले तो गेट पर टिकट क्लेक्टर के पास एक नौजवान ने पूछा, कहाँ जाइएगा? शेरंदाजपुर का नाम सुनकर उसने कहा, आइये हमारा इक्का है। किसके यहाँ जाना है, यह भी उसने मालूम कर लिया। सुर्जकुमार ने देखा, चिकनाई जुल्फों पर दुपलिया टोपी लगाये, मूंछे ऐंठे, चिकन के कुर्ते पर वास्कट पहने, हाथ में बेंत लिये गाँव का छैला जैसा लगता है। उन्होंने यह भी नोट किया कि वह भी काली मखमली किनारे की कलकतिया धोती पहने है। पैरों में मेरठी जूते हैं। इस व्यक्ति का नाम पथवारीदीन भट्ट उर्फ कुल्ली भाट था।

सुर्जकुमार किसके इक्के पर बैठकर आये हैं, यह समाचार उनके ससुराल पहुँचने के साथ साथ-सास को मिल गया। गलीचा-बिछे पलँग पर बैठे ही थे कि उन्होंने पूछा, क्यों भइया तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो? उन्हीं के इक्के पर आये हैं, बात पक्की होने पर सास ने लम्बी साँस ली। सुर्जकुमार के लम्बे लहराते बाल और कोंछदार धोती देखकर बैसवाड़े के लोग यही कहते - जनाना है। वही भाव सास का था। शरबत-पानी के बाद उन्होंने रामसहाय की तीखी आलोचना की, अगर उन्होंने सुर्जकुमार का दूसरा ब्याह कर दिया तो इससे पिता-पुत्र की जो दुर्गति होगी - इस जन्म में और उसके बाद - उसका सजीव चित्र खींच दिया। साथ ही उन्होंने अपनी पुत्री के रूप गुण की प्रशंसा भी काफी की। दामाद को पढ़ाते हुए कहा - मैंने तुम्हारा ही मुँह देखकर ब्याह किया है, तुम्हारे पिता की तोंद देखकर नहीं।

सुर्जकुमार आज्ञाकारी दामाद की तरह सब-कुछ सुनते रहे। पिता का पक्ष लेकर उन्होंने लड़ाई करना उचित न समझा। पिता ने दूसरे ब्याह की धमकी देकर ठीक किया है, ऐसा दृढ़ विश्वास भी उन्हें नहीं था। रात में पत्नी के आने पर दिये के प्रकाश में पहली बार उन्होंने मनोहरादेवी की छवि देखी। पर माँ की तरह बेटी ने भी सवाल किया, 'तुम कुल्ली के एक्के पर आये हो?'

सबेरा होते ही कुल्ली आकर सुर्जकुमार को पूछ गये। अभी वह सो रहे थे। सास ने दामाद को चेतावनी दी, उनके साथ रहने पर तुम्हारी बदनामी हो सकती है। इससे मिलो, उससे न मिलो - यह सब सुर्जकुमार को अच्छा न लगता था। गढ़ाकोला में बाप कहते थे, पतुरिया के लड़कों से न मिला करो, यहाँ सास कहती हैं, कुल्ली से न मिल। पर ऐसे लोगों से मिलने में ही उन्हें विशेष आनंद आता था। कुल्ली आये, डलमऊ के इतिहास के बारे में बात कीं। शाम को गंगा का घाट, पुराना किला वगैरह दिखाने को कहा। सास ने मना किया पर इन्होंने जिद की। सास ने चन्द्रिका को साथ भेज दिया।

कुल्ली ने इशारा किया चन्द्रिका को बिदा कर देना चाहिए। सुर्जकुमार ने उसे रूह खरीदने भेज दिया। किले में एक स्थान उन्हें बहुत पसंद आया। काफी ऊँचाई पर बारहदरी बनी थी और नीचे गंगा बहती थी। नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई थीं जिनमें कुछ अब भी बची हुई थीं। कुल्ली ने सुर्जकुमार से गाने को कहा। गले की तारीफ की। ''पान भी क्या खूबसूरत बनाता है तुम्हें! तुम्हारे होंठ भी गजब के हैं। पान की बारीक लकीर, क्या कहूँ,

शमशेर बन जाती है।'' कुल्ली के प्रशंसा-वाक्य सुनकर सुर्जकुमार प्रसन्न मन घर लौटे। रास्ते में चन्द्रिका को समझा दिया, तुम्हारी नानी पूछे तो कहना, हम साथ थे।

सास को यह पता लगाते देर न हुई कि सुर्जकमार किला देखने गए तब चन्द्रिका साथ न था। उन्होंने डण्डा उठाकर चन्द्रिका से कहा, ''देख, दहिजार लोध! भले आदमी की तरह ठीक-ठीक बता, नहीं तो वह डण्डा दिया कि मुँह टेढ़ा हो गया।''

चन्द्रिका अपने मालिक सुर्जकुमार को पकड़कर रोने लगा। बोला - 'बाबा, मैं न रहूँगा। पूछने पर मालूम हुआ कि चन्द्रिका को रूह लेने के बहाने अलग करने का राज सास को मालूम हो चुका है। सुर्जकुमार ने तै किया, दबना नहीं है। चन्द्रिका से रूह की मालिश करने को कहा। चन्द्रिका जब - सुर्जकुमार के सीने पर रूह मल रहा था, तभी ससुर रामदयाल दुबे खुशबू के सहारे आ पहुँचे और बोले, ''अरघानें उठ रही हैं बच्चा! इतना इत्र-फुलेल न लगाया करो।'' सास ने आकर पूछा, रूह की मालिश से क्या होता है? दामाद ने जवाब दिया, सीना तगड़ा होता है। इस पर उन्होंने बड़ा टेढ़ा सवाल किया, ''तुम्हारे पिताजी तनख्वाह कितनी पाते हैं?'' तनख्वाह इतनी कम थी कि सुर्जकुमार सही बात कहने में शरमाये। कूटनीति का सहारा लेकर बोले, ''पिताजी की आमदनी की कितनी सूरतें हैं क्या कहूँ! उनकी आमदनी कब कितनी हो जाएगी, कहाँ से, कैसे, किससे, यह वही नहीं बता सकते।'' इस पर सास रोने लगीं। रामसहाय रूह से बेटे की मालिश करायें पर उनकी बेटी के लिए चढ़ावा ऐसा मामूली लाए! ऐसे घर में बेटी ब्याहने पर खुद ही पछताने लगीं - ''अरे राम रे! मुझे क्या हो गया, जो मैंने शादी की!''

रात को पत्नी ने विरोध किया। इत्र-फुलेल लगाना किसान परिवारों में अच्छा न समझा जाता था। मनोहरादेवी ने कहा, इत्र की इतनी तेज खुशबू है कि शायद आज आँख न लगेगी। सुर्जकुमार ने चुटकुला सुनाया। एक मछुआइन को नदी से लौटते देर हो गई, रास्ते में राजा की फुलवारी पड़ती थी, उसी में सो रही, पर फूलों की महक से नींद न आई। मछली वाली टोकरी सिरहाने रखी, तब नींद आई। पत्नी ने बिगड़कर कहा, ''तो मैं मछुआइन हूँ? मैं मछली-कलिया खाती हूँ?'' सुर्जकुमार ने जवाब दिया, ''अपने बाल सूँघो, तेल की ऐसी चीकट और बदबू है कि कभी-कभी मालूम देता है कि तुम्हारे मुँह पर कै कर दूँ।'' मनोहरादेवी ने और तेज होकर कहा, ''तो क्या मैं रण्डी हूँ जो हर वक्त बनाव-सिंगार के पीछे पड़ी रहूँ?'' और वह उठकर चल दीं।

सुर्जकुमार ने गाँव में पतुरिया का शृंगार देखा था। यद्यपि वह उम्र में बहुत बड़ी थी और उसके लड़के भी सुर्जकुमार से बड़े थे, फिर भी थी तो वह पतुरिया। वह गाँव की स्त्रियों से अलग निखर-सँवर कर रहती थी। उसके अलावा महिषादल में गायिकाओं, सुंदर स्त्रियों की कमी न थी, उनकी प्रसाधन-कला को गाँव की स्त्रियाँ कहाँ पातीं? मनोहरादेवी ने अपने पति की रुचि भाँपकर ही मानो कहा था, तो क्या मैं रण्डी हूँ जो बनाव-सिंगार के पीछे पड़ी रहूं?

सुर्जकुमार को लग रहा था, पत्नी उनके अधिकार में पूरी तरह नहीं आ रही। एक दिन उनका गाना सुना, लोगों को उनके गाने की प्रशंसा करते सुना। जिसे देखो वही मनोहरादेवी की चर्चा कर रहा था, मानो सुर्जकुमार उस घर में हों ही नहीं। मनोहरादेवी ने भजन गायाः

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभयदारुणम्

तुलसीदास की शब्द-योजना इतनी सुंदर है, सुर्जकुमार के ध्यान में यह बात पहले न आई थी। जब मनोहरादेवी ने गायाः

तब सुर्जकुमार को लगा, गले में मृदंग बज रहा है।

मनोहरादेवी के कंठ से तुलसीदास का यह छंद सुनकर सुर्जकुमार के न जाने कौन-से सोते संस्कार जाग उठे। साहित्य इतना सुंदर है, संगीत इतना आकर्षक है, उनकी आँखों ने जैसे नया संसार देखा, कानों ने ऐसा संगीत सुना जो मानो इस पृथ्वी पर दूर किसी लोक से आता हो। अपनी इस विलक्षण अनुभूति पर वह स्वयं चकित रह गए। अपने सौंदर्य पर जो अभिमान था, वह चूर-चूर हो गया। ऐसा ही कुछ गायें, ऐसा कुछ रचकर दिखायें, तब जीवन सार्थक हो। पर यहाँ विधिवत् न साहित्य की शिक्षा मिली, न संगीत की।

सुर्जकुमार को पढ़ाई का ध्यान आया। बिदा कराके गाँव आए, गाँव से महिषादल। स्कूल जाने का क्रम फिर शुरू हुआ। अब एक कठिनाई और हो गई थी, किताब लेकर बैठते तो पृष्ठों से अक्षर गायब हो जाते और उनकी जगह मनोहरादेवी की छवि तैरने लगती। पद्माकर के कवित्तों का अर्थ अब और भी अच्छी तरह समझ में आने लगा। एन्ट्रेंस परीक्षा के दिन नजदीक आए। परीक्षा में पास न हो पायेंगे, सुर्जकुमार को निश्चय हो गया था। गणित के दिन वह कापी में पद्माकर के शृंगार रस वाले कवित्त लिखकर घर चले आये।

जैसे-जैसे परीक्षाफल निकलने के दिन पास आने लगे, वैसे-वैसे सुर्जकुमार के मन में शृंगार के बदले वैराग्य के भाव उदय होने लगे। रामायण का पाठ वह और भी मनोयोग से करने लगे। पर इससे कोई लाभ न हुआ। सफल विद्यार्थियों में कहीं उनका नाम न था। रामसहाय तेवारी ने समझ लिया, लड़का आवारा हो गया, सजा दिए बिना काम न चलेगा। बुलाकर कहा, जो कुछ पढ़ना था, पढ़ चुके, हमने अपना फर्ज पूरा किया, अब अपनी मेहरिया संभालो और कमाओ-खाओ।

उन्होंने बहू का सारा गहना रखवा लिया, सुर्जकुमार के धराऊ कपड़े रखवा लिये। भाग्य के सहारे कमाने-खाने के लिए घर से बाहर कर दिया। सुर्जकुमार के मन को एक चोट लगी परीक्षा में फेल होने की। खैर, पास होने की तो वैसे भी बहुत आशा न थी। दूसरी चोट अब यह घर से निकाले जाने की, वह भी अकेले नहीं, पत्नी के साथ। कहाँ जाएँ, किससे नौकरी माँगें? महिषादल छोड़ अभी दूसरी जगह विशेष परिचय न था। कलकत्ते में इधर-उधर भटकने पर कुछ-न-कुछ काम मिल जाता पर पत्नी को लिये-लिये कहाँ घूमें? एक ही रास्ता था। किसी तरह ससुराल पहुँचकर वहीं शरण लें। सुर्जकमार दुखी मन से पत्नी को लिये डलमऊ पहुँचे। सास ने सारा हाल सुना, सहानुभूति प्रकट की। रामसहाय के व्यवहार से वह पहले ही नाराज थीं, वह जंगली हूस हैं, इस घटना से उनकी यह राय और भी पक्की हो गई। सुर्जकुमार पिता की आलोचना सुनकर चुप रहे। जिस घर में रूह की मालिश कराके उन्होंने अपनी नागरिक सभ्यता का परिचय दिया था, उसी में दीन-मलीन वेश में निठल्ले दामाद की तरह उन्हें आश्रय लेना पड़ा। अब उनसे कहने की जरूरत न थी, कुल्ली के यहाँ मत जाना। कुल्ली का साथ करके वह सास को नाराज न करना चाहते थे। पार्वती देवी काफी सहानुभूति से पेश आईं। बेटी के लिए नए सिरे से गहने और दामाद के लिए कपड़े बनवाए, और बातें दर-किनार, कस्बे में खुद अपनी इज्जत का सवाल था।

सुर्जकुमार भविष्य की चिंता करना छोड़कर पत्नी के साथ सुख से दिन बिताने लगे। अब उन्हें उनके बालों या वेशभूषा से कोई शिकायत न रही। उनकी पत्नी कितनी कर्मठ है और वह स्वयं कितने निकम्मे हैं, इसका बोध उन्हें होने लगा। छह महीने बीत गए। बाप-बेटा दोनों जिद्दी। आखिर रामसहाय तेवारी ही झुके। खुद डलमऊ आए और बेटे-बहू को गाँव लिवा लाए।

मनोहरादेवी साध्वी महिला थीं। उनकी माँ लम्बे कद, गौरवर्ण की सतेज व्यक्तित्व वाली देवी थीं। माँ के समान मनोहरादेवी सुंदर थीं। पर वह अपना समय शृंगार-प्रसाधन में न खर्च करती थीं। उस समय तक गाँव में क्रीम-पाउडर की पहुँच न हुई थी। मनोहरादेवी रोटी बनातीं, बर्तन माँजतीं, टोला पड़ोस के लोगों के लिए चिट्ठी लिखतीं। इन चिट्ठी लिखाने वालों में एक साँवला चमार युवक था - चतुरी। वह दहलीज़ में बैठकर रामायण पढ़तीं, बाहर चबूतरे पर सुर्जकुमार के काका रामलाल बैठकर सुना करते। कभी-कभी वह भजन गातीं और चतुरी भी मगन मन सुनता रहता।

सुर्जकुमार को एक दिक्कत थी। मनोहरादेवी शाकाहारी थीं और सुर्जकुमार को गोश्त खाने का शौक था। वैसे वह गुरुमुख हो चुके थे पर लाड़-प्यार में पले बेटे ने मन की इच्छाओं का दमन करना न सीखा था। मनोहरादेवी ने कहा - ''विश्राम-सागर में लिखा है कि माँस खाने से बड़ा पाप होता है, तुम मांस खाना छोड़ दो।'' उनके कहने से सुर्जकुमार ने मांस खाना छोड़ दिया। मांस छोड़ने के कारण हो अथवा पत्नी के साथ रहने से हो, सुर्जकुमार बहुत दुबले हो गए। एक दिन उघारे बदन जब नहाने जा रहे थे, तब गाँव के एक बूढ़े पंडितजी ने इन्हें देखकर ताज्जुब से कहा -''तुम क्या हो गए?' सुर्जकुमार ने जवाब दिया, मांस छोड़ दिया, इसलिए दुबला हो गया हूँ।' उन्होंने पूछा, ''तो मांस क्यों छोड़ा? इन्होंने बताया विश्रामसागर में लिखा है, बड़ा पाप होता है, मरने पर मांसाहारी को यम के दूत बड़ा दण्ड देते हैं।' पंडितजी ने पूछा, ''तुमने अपनी इच्छा से छोड़ा या किसी के कहने पर, सुर्जकुमार ने बताया कि पत्नी के उपदेश से ऐसा किया है। पंडित जी ने कहा, ''तो फिर तुम खाओ। कनवजियो को पाप नहीं होता। उनको वरदान है।'' इन्होंने जिज्ञासा की, कहीं लिखा भी है?'' पंडितजी ने विश्वासपर्वक कहा, ''हाँ, है क्यों नहीं? वंशावली में लिखा है।''

सुर्जकुमार चिकवे के यहाँ गए और आधा सेर मांस ले आए। रूमाल में खून के धब्बे देखकर मनोहरादेवी ने पूछा, ''यह क्या है?'' उत्तर मिला, ''मांस।'' उन्होंने पूछा, तो फिर खाओगे?'' सुर्जकुमार ने कहा, ''हाँ, हमें वरदान है। वंशावली में लिखा है।'' मनोहरादेवी ने कहा, ''अपने मांस वाले बरतन अलग कर लो। जिस दिन मांस खाओ, उस दिन न मुझे छुओ और न घर के और बरतन। तीन दिन तक कच्चे घड़े न छू पाओगे।'' सुर्जकुमार ने कहा, ''इस समय तो रोज खाने का विचार है क्योंकि पिछली कसर पूरी करनी है।'' मनोहरादेवी ने कहा, ''तो मुझे मेरे मायके छोड़ आओ।'' सुर्जकुमार ने जवाब दिया ''लिख दो कोई ले जाए, नहीं तो नाई भेज दो, किसी को बुला लाए। मैं जहाँ मांस पकाता हूँ वहाँ दो रोटियाँ भी ठोंक लूँगा।'' मनोहरादेवी मायके चली गईं।

सन् 14 की लड़ाई शुरू हो गई थी। देश में महँगाई बढ़ रही थी। रामसहाय बुढ़ा रहे थे पर सुर्जकुमार को अभी घर का भार उठाने की कोई फिक्र न थी। इसी साल कुँवार के महीने में मनोहरादेवी ने मायके में ही पुत्र को जन्म दिया। रामसहाय अब बाबा हुए। पोते के जन्म पर उन्होंने धूमधाम से उत्सव किया। सुर्जकुमार की जिम्मेदारी बढ़ गई। लेकिन जब तक रामसहाय जिए, इन्होंने घर-गृहस्थी की कोई चिंता न की। अब स्कूल जाना भी बंद था। कसरत, खेलकूद, सैर-सपाटा, स्वेच्छानुसार अध्ययन - यही जीवन-क्रम था।

रामसहाय का शरीर शिथिल हो रहा था, पेट बढ़ गया था। डॉक्टरों ने कहा, हर्निया है। महिषादल के अस्पताल में उनका आपरेशन हुआ। आपरेशन सफल हुआ पर रामसहाय पूरी तरह स्वस्थ फिर भी नहीं हुए। वह गाँव चले आये। सलेथू जिला उन्नाव की एक स्त्री, जिसका परिवार महिषादल में था, गौरी की माँ के नाम से प्रसिद्ध, गढ़ाकोला में उनकी देखभाल करती रहीं। सन 17 में मनोहरादेवी ने दूसरी संतान, कन्या सरोज को जन्म दिया। उसी वर्ष रामसहाय तेवारी का देहांत हुआ।

सुर्जकुमार को अब अपने उत्तरदायित्व का बोध हुआ। उम्र उन्नीस साल, दो बच्चों के बाप, पिता अब नहीं हैं, उन्हें अब दूसरों के सहारे जीने का अधिकर नहीं है - यह सब उनकी समझ में अपने-आप आ गया। इसके सिवा पिता के न रहने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि बुढ़ऊ उन्हें कितना प्यार करते थे! माँ के न रहने पर माँ-बाप वह दोनों थे। जो कुछ कमाया था, वह सब सुर्जकुमार के लिए। गाँव से इतनी दूर परदेस में और किसके लिए मर-खप रहे थे? क्रोध आने पर कई बार उन्होंने मारा भी था, पर यह भी सुर्जकुमार के भले के लिए। उन्होंने लाड़-प्यार भी कम न किया था। देशी रियासत में सिपाहियों के मामूली जमादार की हैसियत ही क्या? पर उन्होंने सुर्जकुमार को राजकुमारों की तरह रखा। कौन जनेऊ, ब्याह, गौने के लिए बंगाल से बैसवाड़े के दरिद्र गाँव में आकर इतना पैसा खर्च करता है? गाँव में किस नौजवान को शांतिपुरी धोती और पम्पशू पहनने का सौभाग्य मिलता है? बादाम और बेदाना कितनों को मयस्सर होता है? उस पर इत्र-फुलेल, नाटक-तमाशे, सैर-सपाटा! यह सब रामसहाय तेवारी की बदौलत। अब वह साया उठ गया था।

बाप की सेवाओं का विचार करके राजा सतीप्रसाद गर्ग ने सुर्जकुमार को अपने यहाँ नौकर रख लिया। सिपाही के बेटे को उन्होंने सिपाहियों में भर्ती नहीं किया। सुर्जकुमार बाप से ज्यादा पढ़े लिखे थे। उन्हें चिट्ठी-पत्री, तहसील-वसूली, कचहरी अदालत से संबंधित काम मिल गया। तनखाह मामूली थी, पर चचेरे भाई बदलूप्रसाद भी यहीं नौकर थे, खर्च चल जाता था। सुर्जकुमार अब राजा के और निकट सम्पर्क में आये। एक नाटक में सुर्जकुमार को संस्कृत श्लोक पढ़ने का छोटा-सा पार्ट दिया गया। राजा को इनका श्लोक-पाठ पसंद आया। उन्होंने अपने यहाँ के एक राज-कर्मचारी को आज्ञा दी कि वह सुर्जकुमार को गाना सिखाया करें। सुर्जकुमार ने भी अब राजा को निकट से देखा। कद में सुर्जकुमार से कई इंच छोटे हैं। रंग हल्का साँवला है, होंठ मोटे हैं, नीचे का होंठ आगे को कुछ निकला हुआ है। सुर्जकमार से ज्यादा सुंदर नहीं हैं पर चेहरे से तेज झलकता है, और हाथ-पैर भी फौलाद के हैं। राजा ब्राह्मण हैं, नौकर-चाकर रिआया-आसामी जमीन में लेटकर उनके चरणों में माथा टैककर, साष्टांग दण्डवत् करते हैं - उन्होंने देखा। हुजूर कहे बिना उनसे बात करना गुस्ताखी में शामिल है। नौकरी और आत्म-सम्मान में परस्पर क्या संबंध है, सुर्जकुमार को मालूम होने लगा।

एक दिन सुर्जकुमार को तार मिला - तुम्हारी स्त्री सख्त बीमार है, फौरन आओ। सुर्जकुमार ने तुरंत डलमऊ के लिए कूच किया। राम-राम करते जब ससुराल पहुँचे, तब मालूम हुआ, मनोहरादेवी पहले से चिता में जल चुकी हैं। फेफड़े कफ से जकड़ गये थे। डॉक्टर ने पानी की जगह यखनी पिलाने को कहा था। पर यखनी पीना-तो दूर, मनोहरादेवी ने अंग्रेजी दवा पीने से भी इंकार कर दिया। कहा - दस बार नहीं मरना है, कौन धरम बिगाड़े?

चार साल के रामकृष्ण, साल-भर की सरोज - दोनों संतानों को वहीं उनकी नानी के पास छोड़कर सुर्जकुमार अपने गाँव चले। अभी गाँव पहुँचे न थे कि देखा, लोग बड़े भाई बदलू की लाश लिये जा रहे हैं। सुर्जकुमार को चक्कर आ गया। राह में वहीं सिर पकड़कर बैठ गये। किसी तरह पहुँचे तो देखा, भौजाई बीमार हैं। उन्होंने पूछा, ''तुम्हारे दादा को कितनी दूर ले गये होंगे?'' सुर्जकुमार से कुछ जवाब देते न बन पड़ा। काका रामलाल भी बीमार थे भतीजे को देखकर बोले, ''तू यहाँ क्यों आया?'' सुर्जकुमार ने कहा, ''आप अच्छे हो जाएँ तो सबको लेकर बंगाल चलूँ।''

बदलूप्रसाद के पांच बच्चे थे - चार लड़के और एक दूध-पीती बच्ची बड़ा लड़का महिषादल में सुर्जकुमार के साथ रहता था, बाकी तीन गांव में थे। बड़े भाई के देहांत के तीसरे दिन भाभी भी गुजर गई। दूध-पीती बच्ची अकेली रह गई। सुर्जकुमार रात को उसे अपने पास लिटाकर सोये। घर में बिल्ली उछल-कूद मचाये थी। सुर्जकमार को नींद न आई। सबेरे

उठकर देखा तो खाट पर लेटी बच्ची का शरीर ठंडा था। सुर्जकुमार ने बच्ची का शव उठाया। उसे नदी किनारे ले गये। गड्ढा खोद कर उसे गाड़ा, फिर घर लौटे। इसके बाद काका रामलाल का देहांत हआ। बदलूप्रसाद के लड़के बीमार हुए पर सौभाग्य से अच्छे हो गए। मृत्यु-लीला समाप्त हुई। परिवार में रह गए सुर्जकुमार और उनके चचेरे भतीजे, पुत्र और कन्या ननिहाल में थे।

ज़िंदगी का यह दौर एक भयानक सपने जैसा था। सारा कुनबा ही उजड़ गया। अब सर पर किसी का साया नहीं। रामसहाय-रामलाल की पीढ़ी तो खत्म हो ही गई, बदलू-सुर्जकुमार की पीढ़ी में भी अकेले सुर्जकुमार रह गये। एक आदमी की कमाई से इतने बच्चों का खर्च कैसे चलेगा? इतनी मौतें एक साथ देखकर कोई अपने औसान* कैसे कायम रखे? कोई ऐसी पाठशाला नहीं जहाँ ऐसी परिस्थिति का सामना करने की शिक्षा आदमी को पहले से दी जा सके। फिर सुर्जकमार के दिन लाड़ प्यार में बीते थे। जिंदगी के बीस साल निश्चिंत बिताने के बाद सर पर यह आफत का पहाड़ ही टूट पड़ा।

सबसे बड़ा धक्का लगा, मनोहरादेवी के गुजर जाने का। उनके विवाहित जीवन की शुरुआत अब होनी चाहिए थी पर शुरू होने के बदले उसका अंत हो गया। मनोहरादेवी के जीवित रहते उन्होंने उनकी कद्र न की। गवहीं के दिनों उनके बालों को लेकर ताने कसे। गोश्त खाने के पीछे गढ़ाकोला में अपने साथ रहना दूभर* कर दिया। अपने निठल्लेपन के कारण एन्ट्रेंस परीक्षा पास न कर पाए, इससे अपने साथ उन्हें भी अपमानित कराके घर से निकले। पर वह कितनी उदार थीं। कभी पति या ससुर के रूखे व्यवहार की शिकायत न की। कितनी कम उम्र में संसार छोड़ गई। अभी अठारह की भी तो न थी। कैसा सुंदर कंठ, कैसा मृदुल स्वभाव, कैसा सात्विक सौंदर्य, सुर्जकुमार ने देखा, उनके हृदय में पत्नी के लिए अगाध प्यार है। यह प्यार अब तक क्यों न दिखाई दिया था? किस मोह ने उनकी आँखों पर पर्दा डाल दिया था? क्या मृत्यु ही यह पर्दा उठा सकती थी कि वह मनोहरादेवी की वास्तविक छवि देखें?

सुर्जकुमार गढ़ाकोला से डलमऊ गए। गंगा के किनारे रात-रात भर वह शमशान में घूमा करते जहाँ मनोहरादेवी की चिता जली थी। दिन में वह अवधूत टीले पर बैठ जाते और गंगा में बहती हुई लाशें देखा करते। पत्नी और भाई के निधन के बाद अब मृत्यु का ऐसा कोई दृश्य न था जिसे सुर्जकमार को भय होता। जीवन में जो सबसे वीभत्स और भयानक है, उसे भर आँखों देखना वह सीख गए थे।

एक दिन वह अवधूत टीले पर बैठे थे, तभी कुल्ली ने आकर कहा, मैं जानता हूँ, आप मनोहरा को बहुत चाहते थे। ईश्वर चाह की जगह मार देता है, होश कराने के लिए।''

सुर्जकुमार को ब्रह्मज्ञान मिला। वह अभी तक बेहोश थे। न अपने को समझते थे, न मनोहरा को, न संसार को। दुख के अंकुश द्वारा अब ब्रह्म ने उन्हें अपना और संसार का ज्ञान कराया।

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भवभयदारुणम्।

कितना सुंदर भजन! दारुण भव भय को हरने वाला वही एक है राम। राम छोड़ कौन ऐसे समय मन को शांति दे सकता है।

सन् 20 में गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया। हिन्दुओं और मुसलमानों की मैत्री के अभूतपूर्व दृश्य देखे गए। दूर-दूर देहात तक चरखे का प्रचार होने लगा। बँगला पत्रों में सुर्जकुमार रूसी क्रान्ति और वहाँ एक नये समाज की रचना का हाल पढ़ते। महिषादल के आसपास के गाँवों में जाते; मित्रों के साथ वहाँ किसानों, जुलाहों आदि का संगठन करते,

उन्हें स्वदेशी का महत्व समझाते। हर जगह राष्ट्रीय गीतों की धूम थी। सुर्जकुमार बड़े प्रेम से ये गीत पढ़ते और गाते। उन्हें द्विजेन्द्रपाल राय के गाने विशेष रूप से पसन्द थे। उन्होंने स्वयं राष्ट्रीय गीत लिखने का विचार किया। सन् 20 के वसन्त में सुर्जकुमार ने जन्मभूमि पर एक गीत लिखाः

बन्दूं, मैं अमल–कमल
चिर सेवित चरण युगल –
शोभामय शान्ति निलय पाप ताप हारी,
मुक्तबन्ध, घनानन्द मुद मंगलकारी।।
बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।।
मुकुट शुभ्र हिमागार।
हृदय बीच विमल हार –
पंच सिन्धु ब्रह्मपुत्र रवितनया गंगा।
विन्ध्य विपिन राजे धनघेरि युगल जंघा
बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।। त्रिदश कोटि नर समाज।
मधुर–कण्ठ–मुखर आज।।
चपल चरण भंग नाच तारागण सूर्यचन्द्र।
चूम चरण ताल मार गरज जलधि मधुर मन्द्र।।
बधिर विश्व चकित भीत सुन भैरव वाणी।
जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।।

सुर्जकुमार का नया जीवन आरम्भ हुआ - कवि का जीवन। पर उन्हें अपना नाम सुर्जकुमार तेवारी जरा भी कवित्वपूर्ण न लगता था। इसे शुद्ध करके यदि सूर्य कुमार तेवारी कर दिया जाय, तब भी गिरीशचन्द्र घोष, द्विजेन्द्रलाल राय, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय अथवा रवीद्रनाथ ठाकुर के नामों के मुकाबले वजन में कुछ हल्का बैठता था। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने अपना नया नाम रखा सूर्यकान्त त्रिपाठी। सूर्यकुमार से सूर्यकान्त नाम सुनने में और अर्थ के विचार से भी ज्यादा अच्छा लगा। बहुत-से तेवारी अपने को त्रिपाठी लिखने लगे थे। अब कुछ साहित्यकार अपना नाम शुद्ध रूप में लिखते थे जैसे महावीरप्रसाद दुबे अपने को महावीरप्रसाद द्विवेदी लिखते थे। जन्मभूमि की वन्दना से रामसहाय तेवारी के पुत्र सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपनी साहित्य-साधना आरम्भ की।

बोध प्रश्न 2

1) सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म हुआ था?

   क) इलाहाबाद

   ख) महिषादल

   ग) गढ़कोला

   घ) कलकत्ता

2) निरालाजी ने यह कथन किससे कहा था : 'तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजा को लूट क्यों नहीं लेते?'

क) मित्र से

ख) पिता से

ग) पड़ोसी से

घ) बेटे से

3) मनोहरा देवी से निराला को किस बात की प्रेरणा मिली? तीन-चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4) सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के प्रिय कवि थेः

क) पद्माकर और तुलसीदास

ख) घनानंद और बिहारी

ग) भारतेन्दु और जयशंकर प्रसाद

घ) महादेवी और सुमित्रानंदन पंत

5) निराला की बेटी का नाम क्या था?

क) मनोहरा देवी

ख) सरोज

ग) पार्वती देवी

घ) चन्द्रिका

6) उन्होंने साहित्य सृजन के लिए अपना नाम क्यों बदला था?

.....

.....

.....

.....

11.6 'निराला की साहित्य साधना' का विश्लेषण

यहाँ हम जीवनी के उक्त अंश का वस्तु और शिल्प की दृष्टि से मूल्यांकन करेंगे। निराला जी बचपन से ही विद्रोही और अक्खड़ स्वभाव के थे। वे अपने वातावरण के प्रभाव के कारण सर्जन की अपेक्षा सजने पर अधिक बल देते थे। पत्नी के स्वभाव और त्याग ने उन्हें उदात्त भावनाओं की ओर मोड़ा। इस यात्राक्रम को रामविलास शर्मा ने बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है।

11.6.1 प्रतिपाद्य

'निराला की साहित्य साधना' में रामविलास शर्मा ने महाकवि निराला का संपूर्ण जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया है। निराला के पुरखों की देहरी वाले क्षेत्र अवध में गढ़ाकोला - को पहली बार देखकर सुर्जकुमार की मनोदशा का वर्णन लेखक ने विस्तारपूर्वक किया है। बंगाल की शस्य श्यामला धरती पर बिताए बचपन के बाद पहली बार सुर्जकुमार बेर और बबूल के जंगल, बड़े-बड़े ऊसर और गाँव के किनारे बहती क्षीण-सी लोन नदी को देखता है। बंगाल की तरह यहाँ भी आमों के बाग थे, लेकिन वैसी सघन हरियाली नहीं थी। महिषादल के राज दरबार में और उस समाज में ऊँच-नीच का जो भेद-भाव उसने देखा और अनुभव किया था, वह जैसे यहाँ और दृढ़ होता है। उसका अपना घर यहाँ भी वैसा ही टूटा-फूटा और कच्चा था जबकि जमींदार भगवानदीन दुबे का मकान पक्का और बड़ा था यद्यपि महिषादल में राजा के महल की तुलना में वह बिल्कुल टुच्चा था। इसी प्रकार सुर्जकुमार इस बात को नहीं समझ पाता कि जमींदार दुबे की मुसलमान पतुरिया-पत्नी के उसे अच्छी लगने पर भी उसके पास क्यों नहीं जाना चाहिए और उसकी छुई हुई चीजें क्यों नहीं खाना चाहिए। सुर्जकुमार ने यह भी देखा था कि पतुरिया मुसलमान है और उसके लड़के अपने को पंडित समझने के कारण, माँ होने पर भी, उसे भोजन दूर से देते हैं।

महिषादल में एक साधारण जमादार पिता के पुत्र होने का हीनता बोध सुर्जकुमार को परेशान करता है। इस छोटे मगर समृद्ध राज्य में राम सहाय तिवारी की हैसियत सिर्फ एक वफादार सिपाही की थी - जो मालिक का नमक खाकर उसका हक अदा करने में विश्वास रखता था। लेकिन पिता की कद-काठी और आकर्षक व्यक्तित्व देखकर उसे स्वाभाविक रूप से गर्व होता है। बंगाल के गवर्नर सर फ्रांसिस ड्यूक जब महिषादल आए तो दरबार का एक सामूहिक चित्र उनके साथ खिंचा। उस चित्र में राम सहाय तिवारी भी हैं - 'पीछे एक चपरासी शेष सिपाही हाथ में तलवारें खींचे खड़े हुए। इस लाइन में गवर्नर की बाईं ओर एकदम सिरे पर राम सहाय तिवारी खड़े हुए 'लाइन में खड़े हुए लोगों में वह सबसे लंबे थे। सिर पर कामदार गोली टोपी गले में सोने का कंठा, भव्य दाढ़ी, मूंछे लंबी नाक, बड़ी आंखें, बिर्जिस पर फौजी कोट, आँखों में थकन हाथ में नंगी तलवार, बढ़ते हुए पेट को पेटी से कसे हुए .....' लाट साहब के साथ पिता का यह चित्र सुर्जकुमार के मन में जैसे आत्म गौरव का बोध जगाता है। अपनी क्षुद्र स्थिति में भी जैसे गर्व करने को कुछ उसके पास है। लंबी और आकर्षक कद-काटी निराला को जैसे विरासत में मिली थी। निराला संबंधी अपने संस्मरणों में रामविलास शर्मा ने लिखा है कि कलकत्ता में फुटबाल का मैच देखने वाले दर्शकों के बीच अपने लंबे, औरों से एक मुट्ठी उंचे कद के कारण ही उस भीड़ में इधर-उधर हो जाने पर निराला को आसानी से ढूँढा जा सकता था। बाद में अपनी देह को पालने-पोसने का शौक शायद निराला के इसी आत्म बोध का एक अंग था। अपनी देह की इस पूंजी के कारण ही स्कूल में सुर्जकुमार अपने साथियों का नेता था। पढ़ने की कमी को वह जैसे खेल-कूद की ढाल पर सहने-झेलने की तैयारी में लगा था। फुटबाल में वह उम्दा खिलाड़ी था और तैरने में कुशल। पहली बार ससुराल आने पर लंबे बालों के कारण उसे शंका की दृष्टि से देखा जाता है। बनाव-शृंगार के प्रति आकर्षण और पहनने ओढ़ने का शौक शायद उसकी क्षतिपूर्ति का ही एक रूप था। अपने शरीर को सुदृढ़ और सुंदर बनाकर जैसे वह पढ़ाई-लिखाई में अपने पिछड़ेपन की भरपाई करना चाहता है।

सुर्जकुमार की साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिरुचियों का विकास भी हुआ। महल के पास ही नाट्यशाला थी जहाँ राजा सती प्रसाद जब-तब नाटक करते थे। वहीं सुर्जकुमार ने बांग्ला नाटक 'तरुबाला' में एक 'हिंदुस्तानी' का पार्ट किया था। बाद में आए स्टार थियेटर के रंगमंच और उसके अभिनेताओं की चमक-दमक ने उसे कहीं गहरे में अभिभूत किया था।

उन्हें देखकर उसे यह लगे बिना नहीं रहा कि सबसे बढ़िया जीवन इन्हीं लोगों का है। बांग्ला उपन्यासकार बंकिमचंद्र सरकारी अफसर की हैसियत से मिदिनापुर में रहे थे। स्कूल के पास, ताल के किनारे बैठकर, उसने दोस्तों से यह भी सुना था कि यहाँ रहने पर बंकिमचंद्र ने एक-दो उपन्यास भी लिखे थे। अपने बंगाली साथियों की बातचीत में यह बोध भी जब-तब उसे कराया जाता था कि बंगाली जाति महान् है, बांग्ला भाषा संसार की सर्वश्रेष्ठ भाषा है और रवीन्द्रनाथ संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। यह भी सुर्जकुमार स्वयं बंगाली नहीं, 'हिंदुस्तानी' हैं। घर के परिवेश और संस्कारवश सुर्जकुमार बांग्ला की अपेक्षा हिंदी ही अधिक जानता था। भक्ति और शृंगार-रस दोनों ही प्रकार की कविताओं में उसका मन खूब रमता था। ब्रजभाषा की काफी कविता उसने पढ़ रखी थी। पद्माकर उसके प्रिय कवि थे। उनकी सानुप्रास शब्दावली, शृंगार वर्णन में भी ओजगुण का पुट उसे विशेष प्रिय था। पद्माकर के काव्य की चित्रमयता उसे आकृष्ट करती थी। स्मरण-शक्ति अच्छी होने से उसके अनेक छंद उसे कंठस्थ हो गए थे। तुलसीदास से वह पूर्व परिचित था। लेकिन विवाह के बाद पत्नी मनोहरा देवी के कंठ से उनके छंद और भजन सुनकर उसने जैसे एक नए रूप में उन्हें पाया और आत्मसात किया। साहित्य और संगीत में इतना आकर्षण इसके पूर्व उसे कभी अनुभव नहीं हुआ था। पद्माकर के कवित्तों का अर्थ भी जैसे अब और स्पष्ट होने लगे। रामचरित मानस का पाठ और भी मनोयोग से करने लगा। पत्नी के मायके में होने पर पढ़ने पर पृष्ठों के अक्षर गायब हो जाते और उनकी जगह मनोहरा देवी की छवि तैरने लगी। एंट्रेंस की परीक्षा में, गणित के पर्चे में, पद्माकर के शृंगारी पद कापी में लिखकर वह घर चला आया था।

ससुराल-प्रवास में सुर्जकुमार की ऐंठ, वर्जनाओं के प्रति तीखे विरोध की प्रवृत्ति और पत्नी के आकर्षण के बावजूद अनेक बातों को लेकर उससे हुए मतभेद और तना-तनी का चित्रण लेखक ने बहुत सहज और आकर्षक रूप में किया है। अपने गाँव में जैसे पतुरिया के हाथ खाना मना था यहाँ कुल्ली भाट को लेकर भी वैसी ही मनाही थी। लेकिन कभी झूठ बोलकर और कभी मुँह जोरी से सुर्जकुमार ने इसका विरोध किया। मनोहरादेवी द्वारा तुलसीदास का भजन गाने पर उसे लगता है जैसे गले में मृदंग बज रहा है। इस भजन को सुनकर सुर्जकुमार के न जाने कौन से सोते संस्कार जाग उठे। साहित्य और संगीत इतने सुंदर हैं इसका बोध जैसे उसे अब हुआ। कानों को वह संगीत किसी दूसरे लोक से आया जान पड़ा। अपने सौंदर्य का अभिमान जैसे चूर-चूर हो गया। उसे लगा कि ऐसा ही कुछ गाने और कर दिखाने में जीवन की सार्थकता है।

निराला के जन्म से लेकर उनकी बीस वर्ष की आयु तक का आरंभिक जीवन जीवनी के उस प्रथम अध्याय में अंकित है। इसमें लेखक ने उनके मानसिक विकास और कवि-कर्म की तैयारी को पर्याप्त प्रमाण देकर अंकित किया है। इसी अध्याय में निराला के विवाह और संक्षिप्त दाम्पत्यजीवन का भी बहुत संवेदनापूर्ण अंकन किया गया है। इसी प्रसंग में अपनी कन्या के लिए माता की चिंता, निराला के पिता पं. राम सहाय तिवारी का छोटी-छोटी बातों पर रूसना- रूठना और अनेक सामाजिक कुरीतियों और जातिगत दंभ के संकेत भी जीवनी में बहुत कुशलतापूर्वक गूंथे गए हैं। बांगला भाषा और साहित्य की सुगंभीर जानकारी के बावजूद निराला हिंदी के पक्ष में खड़े होते हैं। अपनी पद्य और गद्य रचनाओं के द्वारा इस आरंभिक दौर में ही वे अपनी संभावनाओं को प्रकट कर पाने में सफल होते हैं।

11.6.2 भाषा-शैली

किसी भी रचना के निर्माण में भाषा एक अनिवार्य और महत्वपूर्ण घटक है। लेखक के प्रतिपाद्य का संप्रेषण भाषा के माध्यम से ही होता है और भाषा ही रचना के प्रभाव को बढ़ाती

या घटाती है। बड़े आकार और फलक वाली रचना में, जैसी निराला की यह जीवनी अपने मूल रूप में है, भाषा का एक महत्वपूर्ण कार्य उसकी पठनीयता को बनाए रखना भी है। रामविलास शर्मा सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में बैसवाड़ी की छौंक, मुहावरों और लोकोक्तियों के साथ जीवनी में घटित प्रसंगों का वर्णन करते है। निराला के जन्म का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं - 'उस दिन मंगल था, महावीर स्वामी ने अपनी पूजा के ही दिन राम सहाय को पुत्र का मुंह दिखाया। दरवाजे पर बाजे बजे, नाई, धोबी, डोम वगैरह नेग मांगने आये। महिषादल में अवध के और परिवार भी रहते थे, कई घर वैसवाड़े के ही लोगों के थे। इन सबसे स्त्रियाँ आईं, सोहर होने लगे। थोड़ी देर को राम सहाय को लगा कि वह गढ़ाकोला में ही उत्सव मना रहे हैं। खैर अभी न सही, जैसे ही, मौका मिला, वह पुरखों की देहरी छुलाने बच्चे को गाँव जरूर ले जायेंगे.....'

राम सहाय तिवारी अपने घर से सैकड़ों मील दूर परदेस में पड़े थे। शादी-विवाह के लिए वे अपने घर गढ़ाकोला आते थे। अपने पुरखों की धरती के प्रति उनका आत्मीय लगाव, उत्सव-पर्वों में वहाँ के लोकाचार और रीति-रिवाजों के प्रति आग्रह और अपने बैसवाड़ी समाज से जुड़ने की उनकी ललक आदि को यह भाषा गहरी पारदर्शिता के साथ उद्घाटित करने में सक्षम है। इसी के तत्काल बाद, जब अपने रंग-रूप के कारण बच्चा - पंडित ने जिसका नामकरण सुर्जकमार किया था - पड़ोस की स्त्रियों का खिलौना हो जाता है तो वे बैसवाड़ी शब्दो में ही अपने उद्गार प्रकट करती हैं - महतारी, बेटवा आदि शब्द इसके उदाहरण हैं।

रामविलास शर्मा अपनी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग करते हैं क्योंकि वे इसे अच्छी तरह जानते हैं कि भाषा जनता की थाती है और इसी जनता द्वारा बोले गए शब्द और मुहावरे शरीर में स्वस्थ शुद्ध रक्त की तरह भाषा को निखारते हैं। इस जीवनी में प्रयुक्त कुछ मुहावरों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। हाथ छोड़ बैठना, पानी बंद करना, कंठफूट आना, मसें भीगना, बगलें निकलना और दो दांत की लड़की आदि इसी प्रकार के कुछ उदाहरण हैं जो पाठ्यक्रम में निर्धारित अंश से ही बहुत सहज रूप में जुटाए गए हैं। इन मुहावरों का अर्थ समझकर भाषा की व्यंजना-शक्ति की सामर्थ्य को आसानी से समझा जा सकता हैः

हाथ छोड़ बैठना	:	क्रोधावेश में मार बैठना
पानी बंद करना	:	समाज और बिरादरी से बाहर कर देना
कंठ फूट आना	:	मसें भीगना और बगलें निकलना

ये सारे प्रयोग यौवनागम के संकेत हैं। कंठ में गट्टा निकलना और आवाज में भारीपन का आ जाना, मूंछों के स्थान पर बालों की रेख दीखने लगना और बगलों में बाल निकलना आदि सारे चिह्न बालक से युवा हो जाने के चिह्न हैं। लेखक इन्हें निराला के प्रसंग में प्रयुक्त करके उनके गौने की भूमिका बनाता है अर्थात् अब उम्र के हिसाब से वे इस लायक हैं कि उनका गौना किया जा सके।

दो दांत की लड़की : कम उम्र की लड़की, दुनियादारी से अनजान और भोली-भाली। रामविलास शर्मा प्रसंगानुसार जीवन के विविध और विभिन्न क्षेत्रों के शब्दों से अपनी भाषा को सहज, सरल और स्वाभाविक बनाते हैं। गाँव-जवार, कोर्ट-कचहरी, लगान-वसूली, साहित्य-संस्कृति और प्राकृतिक सौंदर्य के वर्णन में उनकी भाषा के बदलते हुए तेवर और छवियों को देखा जा सकता है।

निराला की जीवनी का जो अंश हमारे सामने है उसमें अवध और बंगाल की परिवेशगत विशिष्टताओं और प्राकृतिक छटाओं में उपलब्ध भौगोलिक अंतर के ब्यौरे बहुत प्रामाणिक एवं

विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। लेखक का मुख्य काम अपने चरित नायक के चारित्रिक और सांस्कृतिक विकास पर केंद्रित होने पर भी उसके संपर्क के अन्य प्रमुख व्यक्तियों के चरित्र पर भी लेखक बहुत सजग दृष्टि रखता दिखाई देता है। राम सहाय तिवारी का क्रोधी और वत्सल स्वभाव, स्वाभिमान और स्वामिभक्ति का द्वंद्व, पुत्री के भविष्य के प्रति मनोहरा देवी की माँ की सहज चिंता द्वारा लेखक अपने इन अपेक्षाकृत गौण पात्रों को भी बहुत विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत कर पाने में सफल हुआ है। छोटे-छोटे प्रसंगों द्वारा लेखक ने मनोहरादेवी का चरित्र गहरी संवेदनशीलता से अंकित किया है। निराला के युवा मन पर उनके गहरे प्रभाव की दृष्टि से यह जरूरी था। पहली बार ससुराल जाने पर पिता की सलाह पर निराला अपनी शान और ऐंठ का झूठा प्रदर्शन करते हैं। रूही की मालिश इसी का एक हिस्सा है। पिता-पुत्र दोनों के मन में यही भाव है कि इससे ससुराल वालों पर रोब तो पड़ेगा ही, खर्च भी खूब होगा और वे लोग अपनी हार मान लेंगे। लेकिन हुआ इसका उल्टा ही। निराला की सासू जी इस पर ताना मारती हैं - ''अपने बेटे की मालिश रूह से करायें और उनकी बेटी के लिए चढ़ावा इतना मामूली''! रात को पत्नी मनोहरादेवी निराला को समझाती हैं - 'इत्र-फुलेल लगाना किसान परिवार में शोभा नहीं देता। और जब बात बढ़ने लगती है, निराला उन्हें मछुआइन का किस्सा सुनाने लगते हैं तो वह बिगड़ जाती है। वह कमरे से उठकर चल देती है। इस आरंभिक भेंट में ही निराला को लगता है कि पत्नी जैसे उनकी पकड़ के बाहर है। उसका तेजस्वी और घर-गृहस्थी के काम में कुशल रूप उन्हें गहरे में कहीं प्रभावित भी करता है। उनके कंठ से तुलसी का भजन सुनकर तो उन्हें लगता है जैसे गले में मृदंग ही बज रहा है। वस्तुतः पत्नी को इस रूप में देखकर ही निराला के, सोते संस्कार जैसे जाग उठते हैं। साहित्य और संगीत के प्रति उनका आकर्षण जैसे स्वयं उन्हें ही एक नए रूप में दिखाई देने लगता है। मनोहरादेवी के इस रूप को देखकर ही अपने सौंदर्य का उनका अभिमान चूर-चूर हो जाता है। उनके मन में यह भाव बहुत उत्कटता से जागता है कि वे ऐसा कुछ करें जिससे यह जीवन सार्थक हो जाए। पत्नी की तुलना में अपना निकम्मापन उनके आगे स्पष्ट होने लगता है। घर-परिवार की ही नहीं, पड़ोसियों की भी सेवा और सहायता का उनका स्वभाव निराला को गहराई से प्रभावित करता है। पत्नी का चरित्र ही जैसे पति का प्रेरणा-स्रोत बन जाता है।

उपन्यास की तरह जीवनी भी अपने चरित नायक समेत अनेक व्यक्तियों का एक जीवित संसार अपने में समाये रहती है। पात्रों के बीच होने वाले संवाद उसी रूप में घटित होने का कोई प्रमाण नहीं होता है। उनकी सहजता और विश्वसनीयता ही उनकी सफलता की कसौटी होती है। उपन्यास की तरह जीवनी में भी ये संवाद कथा के विकास में सहायक होते हैं और पात्रों के चरित्र की विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं। इस जीवनी में भी अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनमें संवादों की यह सहजता और विश्वसनीयता देखी जा सकती है। इन संवादों में भी निराला और मनोहरादेवी के बीच के संवाद कदाचित जीवनी के सफलतम संवाद हैं। जैसा कि बताया जाता रहा है इन संवादों के माध्यम से ही मनोहरा देवी का तेजस्वी और स्वाभिमानी रूप बहुत सहज रूप में सामने आता है और अपनी सहजता में ही वह रूप निराला को अभिभूत करता है। सादगी और सहजता का प्रभाव ही सबसे गहरा होता है और वही निराला के जीवन की दशा बदलता है।

बोध प्रश्न 3

1) 'निराला की साहित्य साधना' शीर्षक जीवनी के अंश की विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

आपने इस इकाई में रामविलास शर्मा जी द्वारा लिखित 'निराला की साहित्य साधना' नामक जीवनी का एक अंश पढ़ा।

निराला जी हिंदी के महान कवि हैं। लेकिन उनकी यह महानता उनका अर्जित गुण है। बचपन में अपने अक्खड़पन और विद्रोही स्वभाव के कारण वे अपने कृत्यों से संसार से बगावत करते थे। पढ़ाई छोड़ उनका मन सजने-संवरने में ज्यादा लगता था। उनके जीवन के इस प्रसंग को लेखक ने बिना छिपाए निष्पक्ष रूप में प्रस्तुत किया है। पत्नी की मृत्यु के बाद पश्चाताप की अग्नि में तपकर और पत्नी के गायन से प्रेरणा पाकर उनकी सृजनात्मक प्रतिभा फूट पड़ती है। लेखक ने निराला जी की कवित्व शक्ति के इस प्रकरण को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

प्रामाणिक जीवनवृत्त होने के बावजूद यह अंश काव्य का आस्वादन लिए हुए है, लेखक ने घटनाओं के सुंदर चित्रण खींचे हैं और संवाद को ओजपूर्ण बनाया है। इस दृष्टि से यह अंश न केवल उद्देश्यों के संप्रेषण में सफल है, बल्कि अतिरोचक भी है।

11.8 शब्दावली

पतुरिया	:	वेश्या, कुलटा
यज्ञोपवीत	:	जेनऊ
विप्रवर्ग	:	ब्राह्मण वर्ग
प्रशस्त	:	विशाल, चौड़ा
मातहत	:	अधीन
मंत्र-सिद्ध	:	मंत्र उनके वश में है
रूह	:	इत्र
औसान	:	होश-हवास
दूभर	:	मुश्किल

दारुण : भीषण, भयंकर

भव : संसार

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (क) आदर्श चरित्र (ख) प्रामाणिक तथ्य (ग) संवेदना (घ) तटस्थ वर्णन

2) रेखाचित्र किसी भी व्यक्ति पर लिखा जाता है; जीवनी का प्रधान चरित्र आदर्श हो, प्रमुख हो, विख्यात हो। रेखाचित्र में लेखक के भाव महत्वपूर्ण हैं; जीवनी में चरित्र नायक (या नायिक) प्रधान है।

बोध प्रश्न-2

1) ख)

2) ख)

3) सहन शक्ति, सेवा भाव, भक्ति भाव की चर्चा कीजिए।

4) i)

5) ii)

6) ओजस्वी लगे, आकर्षक हो।

बोध प्रश्न-3

1) पूरी इकाई के आधार पर एक पृष्ठ में उत्तर लिखिए। वस्तु, शिल्प दोनों पर विचार प्रकट कीजिए। आप पर किसका प्रभाव पड़ा - निराला जी के व्यक्तित्व का या रामविलास शर्मा जी के लेखन का?

इकाई 12 संस्मरण (महादेवी वर्मा)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 संस्मरण : एक साहित्यिक विधा

12.3 संस्मरण और अन्य विधाएं

12.4 'पथ के साथी' संस्मरण का पठन

12.5 संस्मरण का सार

12.6 संस्मरण की अंतर्वस्तु

12.7 संस्मरण की भाषा-शैली

12.8 सारांश

12.9 शब्दावली

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

'हिंदी साहित्य : विविध विधाएँ' पाठ्यक्रम की यह अंतिम इकाई है। इस इकाई में आप महादेवी वर्मा द्वारा हिंदी कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान के बारे में लिखा संस्मरण 'पथ के साथी' का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संस्मरण की प्रकृति और विशिष्टता का उल्लेख कर सकेंगे;
- संस्मरण और अन्य साहित्यिक विधाओं के पारस्परिक संबंधों को बता सकेंगे;
- 'पथ के साथी' संस्मरण की अंतर्वस्तु संबंधी विशेषताएं बता सकेंगे और
- उक्त संस्मरण की भाषा और शैली की विशेषताओं को बता सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

भाषा संबंधी इस पाठ्यक्रम में आप साहित्य की विविध विधाओं का अध्ययन कर रहे हैं। इस खंड में अब तक आपने डायरी, पत्र, रिपोर्ताज, यात्रा-वृत्तांत और जीवनी विधाओं का अध्ययन किया है। यह इस खंड की अंतिम इकाई और पाठ्यक्रम की 12वीं इकाई है। इस इकाई में आप संस्मरण विधा का अध्ययन करेंगे।

आधुनिक गद्य विधाओं में संस्मरण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संस्मरण का अर्थ है बीते हुए को याद करना। जब हम किसी ऐसे व्यक्ति को याद करते हैं, जिसके साथ हमने अपने जीवन के कुछ अहम क्षण बिताए थे और इन क्षणों को जब दूसरों के साथ बांटना चाहते हैं तो हम संस्मरण लिखने की ओर प्रवृत्त होते हैं। हिंदी में संस्मरण लिखने की परंपरा बहुत पुरानी नहीं है। गद्य साहित्य के साथ ही संस्मरण लिखने की ओर भी लेखकों की प्रवृत्ति हुई। इनमें महादेवी वर्मा का योगदान सबसे अधिक है। रेखाचित्र और संस्मरण विधा को जितना महादेवी वर्मा ने समृद्ध किया है किसी और ने नहीं। महादेवी वर्मा मूलतः कवि हैं और छायावादी काव्य को समृद्ध करने में उनका योगदान अप्रतिम है।

हिंदी में संस्मरण-साहित्य के संदर्भ में महादेवी वर्मा द्वारा लिखित 'पथ के साथी' में संकलित उनके समकालीन साहित्यकारों के संस्मरणों की प्रकृति और पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना इस इकाई का उद्देश्य है। इन संस्मरणों में से एक - 'सुभद्रा कुमारी चौहान'- हमारे इस अध्ययन का मुख्य आधार है। अतः उसकी विशेषताओं का विश्लेषण इस इकाई का मुख्य अभिप्रेत है। इस प्रक्रिया में संस्मरण की प्रकृति को समझते हुए अन्य गद्य विधाओं से उसके अंतर को भी स्पष्ट किया जाएगा। पाठ्यक्रम में निर्धारित संस्मरण के विश्लेषण के अंतर्गत संस्मरण की भाषा, शिल्प का अध्ययन भी हमारा अभिप्रेत है।

12.2 संस्मरण : एक साहित्यिक विधा

संस्मरण एक अंतर्विरोधी प्रकृति वाला साहित्य रूप है। उसके लिखे जाने के लिए परिचय का विस्तार बहिर्मुखता की माँग करता है, जबकि उसका कलात्मक रचाव हार्दिकता एवं अंतर्मुखता की अपेक्षा रखता है। एक सीमा तक ही इन दोनों को साध पाना संभव होता है। यही कारण है कि अच्छे और उल्लेखनीय संस्मरण किसी भी भाषा में बहुत अधिक नहीं होते। लेखक की स्वभावगत संकोची वृत्ति, यात्रा-भीरुता और मित्र बनाने की कला का अभाव कुछ ऐसे कारक हैं जो संस्मरण-लेखन के विरोध में जाते हैं। अंतरंगता संस्मरण की शिराओं में प्रवाहित रक्त की तरह है जो उसके स्वास्थ्य में एक खास तरह की चमक पैदा करती है। इसके अभाव में संस्मरण के नाम पर लिखी जाने वाली कोई भी रचना रक्त शून्यता की शिकार हो सकती है। औपचारिकता और अविश्वसनीयता जैसे तत्व संस्मरण के सबसे बड़े शत्रु हैं। इसीलिए सामान्यतः संस्मरण परिचय की माँग करता है। जिस व्यक्ति के संस्मरण लिखे जा रहे हैं उसकी रचना-दृष्टि, सामाजिक दायित्व और विभिन्न मुद्दों पर प्रकट किए गए विचार पूरी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता के साथ उनमें आने चाहिए। अपनी प्रकृति में संस्मरण आगे-पीछे दोनों ओर लगे शीशे की तरह होता है जिसमें दीखने वाले के साथ दिखाने वाला भी कहीं न कहीं प्रतिबिंबित होता है। यही कारण है कि संस्मरण केवल उसे ही आलोकित नहीं करता जिस पर वह लिखा गया है। एक सीमा तक वह अपने रचयिता का भी परिचय देता है। राजेंद्र यादव जैसे लेखक जब अपने संस्मरणों को संकलित करते हुए 'औरों के बहाने' शीर्षक देते हैं तो उससे यही ध्वनित होता है कि औरों के बहाने इनका रचयिता अपने बारे में भी बहुत कुछ कहता है। अपने एक व्यंग्य-लेख में हरिशंकर परसाई ने उन संस्मरण लेखकों का मजाक उड़ाया है जो संस्मरण लिखते समय दूसरों से अधिक अपने बारे में लिखते हैं। ऐसे संस्मरण अपने विषय को गौण मानकर रचयिता को ही मुख्यतः केंद्र में रखते हैं। एक अच्छा और प्रामाणिक संस्मरण वही होता है जिसमें लेखक अपने को पृष्ठभूमि में रखकर अपने विषय के विविध पक्षों को समादर, आत्मीयता और विनम्रता के साथ धैर्यपूर्वक खोलता चलता है। संस्मरण का विषय अर्थात् वह व्यक्ति जिस पर संस्मरण लिखा जा रहा है, अपनी सारी विशिष्टताओं के साथ दूसरों की तरह एक सामान्य मनुष्य ही होता है। अतः यह जरूरी है कि उसे हाड़-मांस के एक मनुष्य की भांति ही प्रस्तुत किया जाए। किसी भी प्रकार की व्यक्ति-पूजा का भाव संस्मरण लेखन की प्रकृति से मेल नहीं खाता। जिस व्यक्ति को संस्मरण के लिए चुना गया है, उसके इस चुनाव में ही यह निहित है कि वह रचयिता का प्रिय और आदरणीय है। ऐसे व्यक्ति का जो प्रभाव लेखक पर पड़ा है उसका आकलन ही वह अपने संस्मरण में करता है। आदर्श संस्मरण वही है जिसमें लेखक अपने विषय के प्रति सारे समादर के साथ किसी प्रकार की एकांगिता से बचकर चलता है। अपने संस्मरण के लिए चुने गए व्यक्ति को संपूर्ण और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी यह जरूरी है कि संस्मरण में संतुलन और वस्तुपरकता के महत्व को समझा जाए। एक अच्छा संस्मरण अपने विषय के प्रति आत्यंतिक विनम्रता और वस्तुपरकता के योग से ही संभव होता है।

11.3 संस्मरण और अन्य गद्य विधाएं

परिचय के सघन वृत्त में आने वाले किसी भी व्यक्ति को केंद्र में रखकर लिखा जा सकता है लेकिन आमतौर पर साहित्यिक व्यक्तियों के संस्मरण ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। जिस व्यक्ति को केंद्र में रखकर संस्मरण लिखा जाता है, संस्मरण लेखक उस व्यक्ति के जीवन के किसी विशेष काल अथवा खंड को ही अपने लिए चुनता है। उस संबद्ध दौर में उस व्यक्ति के अनेक पक्षों की जानकारी उस संस्मरण से मिलती है। लेकिन किसी भी व्यक्ति का कोई काल खंड उसका संपूर्ण जीवन नहीं होता। भले ही संस्मरण से यह अपेक्षा न की जाती हो कि वह उस व्यक्ति को संपूर्णता में प्रस्तुत करेगा, लेकिन फिर भी एक अच्छा संस्मरण एकांगिता और पूर्वग्रहों से अपने को बचाता है। इसीलिए संस्मरण लेखक के लिए यह जरूरी होता है कि अन्य उपलब्ध स्रोतों से ही वह अपने विषय के बारे में जानकारी प्राप्त करे और उसके पिछले जीवन और उसके विभिन्न पक्षों की सापेक्षता में अपना पक्ष प्रस्तुत करे। संस्मरण बहुत कुछ लेखक पर पड़े उस व्यक्ति के निजी प्रभाव का ही आकलन होता है। लेकिन इस प्रभाव का आकलन संबद्ध व्यक्ति की संपूर्णता में ही अधिक विश्वसनीय और ग्राह्य होगा। संस्मरण लेखक का यह काम उसे एक जीवनीकार के निकट ले आता है। जीवनी लेखक की तरह अपने विषय के बारे में अपेक्षित पृष्ठभूमि तैयार करके ही कोई संस्मरण लेखक अपने संपर्क-काल को अधिक पूर्ण और ग्राह्य बना सकता है।

संस्मरण और रेखाचित्र

अपने मूल रूप में 'रेखाचित्र' भले ही चित्रकला की दुनिया से आया शब्द हो, लेकिन साहित्य में गद्य की एक विधा विशेष के रूप में भी वह स्वीकार्य माना जाकर अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका है। सामान्य अर्थ में रेखाचित्र व्यक्ति के बाह्य रूप का चित्र होता है जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है। उसके शरीर और विभिन्न अंगों की बनावट, उसके व्यक्तित्व को वैशिष्ट्य देनेवाले कुछ कारक, उसका पहनावा और बातचीत के बीच उसके क्रिया कलाप आदि का चित्रण उसका एक ऐसा रेखाचित्र प्रस्तुत करता है जो उसके सीधी-सादी पोशाक और बातचीत में जोरदार ठहाके उनकी एक स्थायी पहचान बन चुके हैं। जिस व्यक्ति से अपने संपर्क का चित्र कोई संस्मरण लेखक देता है तो वह आवश्यक तौर पर यह बताता है कि उससे हुई भेंट के समय वह व्यक्ति क्या पहने था, कैसे और किस परिवेश में यह भेंट हुई थी और होने वाली बातचीत के बीच वह कैसा व्यवहार कर रहा था। संबद्ध व्यक्ति का यह रेखाचित्र उसकी एक विशिष्ट पहचान बनाकर पाठक तथा लेखक के बीच विश्वास और संवाद की स्थिति को पक्का करती है।

संस्मरण, पत्र और साक्षात्कार

संस्मरण में दो व्यक्तियों के बीच होने वाले संवाद और अनेक मुद्दों पर होने वाली बातचीत की भी एक विशिष्ट भूमिका होती है। यह संवाद ही वस्तुतः किसी संस्मरण को साक्षात्कार के निकट लाता है। संस्मरण की अपेक्षा साक्षात्कार अधिक औपचारिक विधा है जिसमें परिचय का सघन वृत्त उतना जरूरी नहीं होता जितना वह संस्मरण में होता है। लेकिन फिर भी संस्मरण में से साक्षात्कार के तत्व को निष्कासित कर पाना कठिन है। जिस व्यक्ति के संबंध में संस्मरण लिखा जाता है उसका संस्मरण लेखक से पूर्व और दीर्घ परिचय भी हो सकता है। यह भी संभव है कि इस कालावधि में उस व्यक्ति ने संस्मरण लेखक को पत्र लिखे हों। अतः अपने संस्मरण में वह उन पत्रों का उपभोग भी करता है। पत्रों का ऐसा कोई उपयोग उस संस्मरण को प्रामाणिकता देता है। यह सारे उपकरण उस केंद्रीय व्यक्ति को अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण और विश्वसनीय रूप में हमारे सामने लाने में सहायक होते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) जैसे शरीर में रक्त प्रवाहित होता है, उसी प्रकार संस्मरण में :

   क) औपचारिकता

   ख) अंतरंगता

   ग) अविश्वसनीयता

   घ) उपर्युक्त तीनों ( )

2) रेखाचित्र का अर्थ क्या है?

   .....

3) जीवनी और संस्मरण में मूल अंतर क्या है?

   .....

12.4 'पथ के साथी' संस्मरण का पठन

हमारे शैशवकालीन अतीत और प्रत्यक्ष वर्तमान के बीच में समय-प्रवाह का पाठ ज्यों-ज्यों चौड़ा होता जाता है त्यों-त्यों हमारी स्मृति में अनजाने ही एक परिवर्तन लक्षित होने लगता है। शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखायें और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं। पर जिनसे ऐसा संबंध नहीं होता वे फीके होते-होते इस प्रकार स्मृति से धुल जाते हैं कि दूसरों के स्मरण दिलाने पर भी उनका स्मरण कठिन हो जाता है।

मेरे अतीत की चित्रशाला में बहिन सुभद्रा से मेरे सख्य का चित्र, पहली कोटि में ही रखा जा सकता है, क्योंकि इतने वर्षों के उपरान्त भी उनकी सब रंग-रेखायें अपनी सजीवता में स्पष्ट हैं।

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, क्या तुम कविता लिखती हो?' दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो कर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की संधि से खीझ कर कहा, तुम्हारी क्लास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो! दिखाओ अपनी कापी और उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर वह कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़ कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में आने वाली गणित की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबंदियाँ अनायास पकड़ में आ गईं। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इससे संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी और दूसरे में अभियुक्ता की उँगलियाँ कस कर पकडीं और वह हर कमरे में जा-जाकर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।

उस युग में कविता रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनने वालों के मुख की रेखायें इस प्रकार वक्रकुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटु-तिक्त पेय पीना पड़ा हो।

ऐसी स्थिति में गणित जैसे गम्भीर महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था। इससे बढ़कर कागज का दुरुपयोग और विषय का निरादर और हो ही

क्या सकता था। फिर जिस विद्यार्थी की बुद्धि अंकों के बीहड़ वन में पग-पग पर उलझती है उससे तो गुरु यही आशा रखता है कि वह हर साँस को अंक जोड़ने-घटाने की क्रिया बना रहा होगा। यदि वह सारी धरती को कागज बना कर प्रश्नों को हल करने के प्रयास से नहीं भर सकता तो उसे कम से कम सौ-पचास पृष्ठ, सही न सही तो गलत प्रश्न-उत्तरों से भर लेना चाहिए। तब उसकी भ्रान्त बुद्धि को प्रकृतिदत्त मान कर उसे क्षमा दान का पात्र समझा जा सकता है, पर जो तुकबन्दी जैसे कार्य से बुद्धि की धार गोंठिल कर रहा है वह तो पूरी शक्ति से दुर्बल होने की मूर्खता करता है, अतः उसके लिए न सहानुभूति का प्रश्न उठता है न क्षमा का।

मैंने होंठ भींच कर न रोने का जो निश्चय किया वह न टूटा तो न टूटा। अन्त में मुझे शक्ति परीक्षा में उत्तीर्ण देख सुभद्रा जी ने उत्फुल्ल भाव से कहा, 'अच्छी तो लिखती हो। भला सवाल हल करने में एक दो तीन जोड़ लेना कोई बड़ा काम है।' मेरी चोट अभी दुख रही थी, सहानुभूति और आत्मीय भाव का परिचय पाकर आँखें सजल हो आईं। 'तुमने सब को क्यों बताया का सहास उत्तर मिला 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।'

बहिन सुभद्रा का चित्र बनाना कुछ सहज नहीं है क्योंकि चित्र की साधारण जान पड़ने वाली प्रत्येक रेखा के लिए उनकी भावना की दीप्ति 'संचारिणी दीपशिखेव' बनकर उसे असाधारण कर देती है। एक-एक कर के देखने से कुछ भी विशेष नहीं कहा जाएगा, परन्तु सब की समग्रता में जो उद्भासित होता था, उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।

मझोले कद तथा उस समय की कृष देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी..... सब कुछ मिला कर एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे। पर उस व्यक्तित्व के भीतर जो बिजली का छन्द था, उसका पता तो तब मिलता था, जब उनके और उनके निश्चित लक्ष्य के बीच में कोई बाधा आ उपस्थित होती थी। 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वाली की हँसी निश्चय ही असाधारण थी। माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हँस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी में जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था। वह संक्रामक भी कम नहीं थीं क्योंकि दूसरे भी उनके सामने बात करने से अधिक हँसने को महत्व देने लगते थे।

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढने जायगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गईं। गोधूली वेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटे चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अँधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी

उनका विवाह हुआ और उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके विचारों से भी परिचित थीं। उनसे यह छिपा नहीं था कि नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुतः जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी चौरे पर जलते हुए घी के दीपक और हर कोने से स्नेहभरी बाहें फैलाए हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तौला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर उसके सुन्दर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अँधेरे रास्ते पर काँटों से उलझती चल पड़ी हो। उन्होंने हँसते-हँसते ही बताया था कि जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल-मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैय्या के सुख का अनुभव करती थीं।

एक बार भाई लक्ष्मणसिंह जी ने मुझ से सुभद्रा जी की स्नेहभरी शिकायत की, 'इन्होंने मुझ से कभी कुछ नहीं माँगा।' सुभद्रा जी ने अर्थ भरी हँसी में उत्तर दिया था, 'इन्होंने पहले ही दिन मुझसे कुछ माँगने का अधिकार माँग लिया था महादेवी! यह ऐसे ही होशियार हैं, माँगती तो वचन-भंग का दोष मेरे सर पड़ता, नहीं माँगा तो इनके अहंकार को ठेस लगती है।

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही माता थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा-मिष्ठान्न आता रहता था। सुभद्रा जी की आर्थिक परिस्थितियों में जेल-जीवन का ए और सी क्लास समान ही था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलने वाली महिला-कैदियों से थोड़ी-सी अरहर की दाल ली और उसे तवे पर भून कर बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी देकर बहलाना पड़ा था। पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रन्थि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अतः प्रायः हम दोनों प्रतियोगिता के लिए आँगन के भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरम्भ करते थे। लीपने में हमें अपने से बड़ा कोई विशेषज्ञ मध्यस्थ नहीं प्राप्त हो सका, अतः प्रतियोगिता का परिणाम सदा अघोषित ही रह गया पर आज मैं स्वीकार करती हूँ कि ऐसे कार्य में एकान्त तन्मयता केवल उसी गृहिणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थीं। उस छोटे से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संग्रहीत किया। छोटे-बड़े पेड़, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय, बछड़े आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा और न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच से उन्हें

मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीला नारी जानती थी कि काँटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है तभी वे टूट कर दूसरों को बेधने की शक्ति खोते हैं। परीक्षायें जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

नारी के हृदय में जो गम्भीर ममता-सजल वीर-भाव उत्पन्न होता है वह पुरुष के उग्र शौर्य से अधिक उदात्त और दिव्य रहता है। पुरुष अपने व्यक्तिगत या समूहगत रागद्वेष के लिए भी वीर धर्म अपना सकता है और अहंकार की तृप्ति-मात्र के लिए भी। पर नारी अपने सृजन की बाधायें दूर करने के लिए या अपनी कल्याणी सृष्टि की रक्षा के लिए रुद्र बनती है। अतः उसकी वीरता के समकक्ष रखने योग्य प्रेरणाएं संसार के कोश में कम हैं। मातृशक्ति का दिव्य रक्षक उद्धारक रूप होने के कारण ही भीमाकृति चंडी, वत्सला अम्बा भी है, जो हिंसात्मक पाशविक शक्तियों को चरणों के नीचे दबाकर अपनी सृष्टि के मंगल की साधना करती है।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी, उसकी वीरता का उत्स भी वात्सल्य ही कहा जा सकता है। न उनका जीवन किसी क्षणिक उत्तेजना से संचालित हुआ न उनकी ओज भरी कविता वीर-रस की घिसी-पिटी लीक पर चली। उनके जीवन में जो एक निरन्तर निखरता हुआ कर्म का तारतम्य है वह ऐसी अंतर-व्यापिनी निष्ठा से जुड़ा हुआ है जो क्षणिक उत्तेजना का दान नहीं मानी जा सकती। इसी से जहाँ दूसरों को यात्रा का अन्त दिखाई दिया वहीं उन्हें नई मंजिल का बोध हुआ।

थक कर बैठने वाला अपने न चलने की सफाई खोजते-खोजते लक्ष्य पा लेने की कल्पना कर सकता है, पर चलने वाले को इसका अवकाश कहाँ!

जीवन के प्रति ममता भरा विश्वास ही उनके काव्य का प्राण है :

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे।
विश्वास प्रेम साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

मधुमक्षिका जैसे कमल से लेकर भटकटैया तक और रसाल से लेकर आक तक, सब मधुर तिक्त एकत्र करके उसे अपनी शक्ति से एक मधु बनाकर लौटाती, बहुत कुछ वैसा ही आदान-सम्प्रदान सुभद्रा जी का था। सभी कोमल-कठिन, सह्य-असह्य अनुभवों का परिपाक दूसरों के लिए एक ही होता था। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनमें विवेचन की तीक्ष्ण दृष्टि का अभाव था। उनकी कहानियाँ प्रमाणित करती हैं कि उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चमत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था तब वे कहती हैं, 'मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरुष-शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, 'समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रखते हैं। ये बन्धन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बन्धन कितने ही अच्छे उद्‌देश्य से क्यों न नियत किये गये हों, हैं

बन्धन ही, और जहाँ बन्धन है वहाँ असन्तोष है तथा क्रान्ति है।' परंपरा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्त्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती हैं, 'चिर-प्रचलित रूढ़ियों और चिर-संचित विश्वासों को आघात पहुँचाने वाली हलचलों को हम देखना सुनना नहीं चाहते। हम ऐसी हलचलों को अधर्म समझ कर उनके प्रति आँख मींच लेना उचित समझते हैं, किंतु ऐसा करने से काम नहीं चलता। वह हलचल और क्रांति हमें बरबस झकझोरती है और बिना होश में लाये नहीं छोड़ती।'

अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रहीं, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतार कर उसे सृजन का रूप दिया था।

सुभद्रा जी के अध्ययन का क्रम असमय ही भंग हो जाने के कारण उन्हें विश्वविद्यालय की शिक्षा तो नहीं मिल सकी, पर अनुभव की पुस्तक से उन्होंने जो सीखा उसे उनकी प्रतिभा ने सर्वथा निजी विशेषता दे दी है।

भाषा, भाव, छंद की दृष्टि से नये, 'झांसी की रानी' जैसे वीर-गीत तथा सरल स्पष्टता में मधुर प्रगीत मुक्त, यथार्थवादी मार्मिक कहानियाँ आदि उनकी मौलिक प्रतिभा के ही सृजन हैं।

ऐसी प्रतिभा व्यावहारिक जीवन को अछूता छोड़ देती तो आश्चर्य की बात होती।

पत्नी की अनुगामिनी, अर्धांगिनी आदि विशेषताओं को अस्वीकार कर उन्होंने भाई लक्ष्मणसिंह जी को पत्नी के रूप में ऐसा अभिन्न मित्र दिया जिसकी बुद्धि और शक्ति पर निर्भर रह कर अनुगमन किया जा सके।

अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कस कर चूर-चूर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।

उस समय बच्चों के लालन-पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता-पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहँच जाते थे। सुभद्रा जी का कवि-हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था! अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देख कर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। उनके वात्सल्य का विधान ऐसा ही अलिखित और अटूट था।

अपनी संतान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

उन्होंने एक क्षण के लिए भी इस असत्य को स्वीकार नहीं किया कि जातिवाद की संकीर्ण तुला पर ही वर की योग्यता तोली जा सकती है। इतना ही नहीं, जिस कन्यादान की प्रथा का सब मूक-भाव से पालन करते आ रहे थे उसी के विरुद्ध उन्होंने घोषणा की, 'मैं कन्यादान नहीं करूँगी।'

क्या मनुष्य मनुष्य को दान करने का अधिकारी है? क्या विवाह के उपरांत मेरी बेटी मेरी नहीं रहेगी? उस समय तक किसी ने और विशेषतः किसी स्त्री ने, ऐसी विचित्र और परंपरा-विरुद्ध बात नहीं कही थीं।

देश की जिस स्वतत्रंता के लिए उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अंगारों पर रख दिए थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववन्द्य बापू की अस्थिविसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँचीं। पर अन्य सम्पन्न परिवारों की सदस्यायें मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थिप्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में सम्मिलित हुईं।

सातवीं और पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह ने ऐसी अमिट लक्ष्मण-रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। अपने भाई-बहिनों में सबसे बड़ी होने के कारण मैं अनायास ही सब की देखरेख और चिंता की अधिकारिणी बन गई थी। परिवार में जो मुझसे बड़े थे उन्होंने भी मुझे ब्रह्मसूत्र की मोटी पोथी में आँखें गड़ाये देखकर अपनी चिंता की परिधि से बाहर समझ लिया था। पर केवल सुभद्रा पर न मेरी मोटी पोथियों का प्रभाव पड़ा न मेरी समझदारी का। अपने व्यक्तिगत संबंधों में हम कभी कुतूहली बाल-भाव से मुक्त नहीं हो सके। सुभद्रा के मेरे घर आने पर भक्तिन तक मुझ पर रौब जमाने लगती थी। क्लास में पहँच कर वह उनके आगमन की सूचना इतने ऊँचे स्वर में इस प्रकार देती कि मेरी स्थिति ही विचित्र हो जाती 'ऊ सहोदरा विचरि अऊ तो इनका देखै बरे आइ के अकेली सूने घर माँ बैठी हैं। अउर इनका कितबियन से फुरसत नाहिन बा'। एम.ए., बी.ए. के विद्यार्थियों के सामने जब एक देहातिन बुढ़िया गुरु पर कर्त्तव्य-उल्लंघन का ऐसा आरोप लगाने लगे तो बेचारे गुरु की सारी प्रतिष्ठा किरकिरी हो सकती थी। पर इस अनाचार को, रोकने का कोई उपाय नहीं था। सुभद्रा जी के सामने न भक्तिन को डाँटना संभव था न उसके कथन की उपेक्षा करना। बँगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानमती का पिटारा खोले बैठी हैं और उसमें से अद्‌भुत वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली सुनहली चूड़ियाँ आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा! पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता था।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियाँ होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछती, 'पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए, दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो रहतीं।

हम दोनों जब साथ रहती थीं तब बात एक मिनट और हँसी पाँच मिनट का अनुपात रहता था। इसी से प्रायः किसी सभा-समिति में जाने के पहले न हँसने का निश्चय करना पड़ता था। एक दूसरे की ओर बिना देखे गंभीर भाव से बैठे रहने की, प्रतिज्ञा करके भी वहाँ पहुँचते ही एक-न-एक वस्तु या दृश्य सुभद्रा के कुतूहली मन को आकर्षित कर लेता और मुझे

दिखाने के लिए वे चिकोटी तक काटने से नहीं चूकतीं। तब हमारी शोभा-सदस्यता की जो स्थिति हो जाती थी, उसका अनुमान सहज है। अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परंतु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हैं, पर महादेवी नहीं जायगी, नहीं जायगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्धा, ईर्ष्या-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक दूसरे के साहित्य-चरित्र-स्वभाव संबंधी निंदा-पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना और उसके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

वसंत पंचमी को पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भर कर सुभद्रा ने विदा ली। उनके लिए किसी अन्य विदा की कल्पना ही कठिन थी।

एक बार बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। मैंने कहा, 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है। सुभद्रा बोली, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूँ, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियाँ गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

X X X

उस दिन जब उनके पार्थिव अवशेष को त्रिवेणी ने अपने श्यामल-उज्ज्वल अंचल में समेट लिया तब नीलम-फलक पर श्वेत चंदन से बने उस चित्र की रेखाओं में बहुत वर्षों पहले देखा एक किशोर-मुख मुस्कराता जान पड़ा।

'यही कहीं पर बिखर गई वह छिन्न विजय-माला-सी!

बोध प्रश्न 2

1) 'क्या तुम कविता लिखती हो ?' यह प्रश्न किसने और किससे किया?

.....

2) 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' गीत की रचना किसने की?

.....

3) सुभद्रा कुमारी चौहान को बार-बार जेल क्यों जाना पड़ता था?

.....

12.5 संस्मरण का सार

महादेवी वर्मा कवयित्री ही नहीं, चित्रकार भी थीं। सुभद्रा कुमारी चौहान संबंधी अपने संस्मरण का प्रारंभ वे चित्रों और चित्रशाला वाले रूपक की भाषा में करती हैं। स्मृतियों की वे दो कोटियाँ बनाती हैं। शैशव की चित्रशाला में जिन चित्रों से गहरा रागात्मक संबंध होता है, उन चित्रों की रेखाएँ स्थायी होती हैं जिन्हें वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी स्पष्ट और

प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इन रागात्मक संबंधों के अभाव में बने चित्र समय बीतने के साथ ही धुंधले पड़ कर मिटने लगते हैं। सुभद्रा के साथ स्कूली दिनों के अपने संबंध को वे प्रथम कोटि में रखती हैं - जिसकी रागात्मकता उस चित्र को कभी धुंधला नहीं होने देती । लगभग चार दशकों का यह संबंध सुभद्रा के असामयिक निधन से ही समाप्त होता है - लेकिन उनकी स्मृतियाँ फिर भी बनी रहती हैं।

सुभद्रा, महादेवी से उम्र में कुछ बड़ी थीं और क्रास्थवेट कालेज इलाहाबाद में ही उनसे दो कक्षाएँ आगे थीं। महादेवी कक्षा पाँच में थीं और सुभद्रा कक्षा सात में। कविता लिखने की समान रुचि उनकी मित्रता का मुख्य नियोजक सूत्र था। गणित की कापी पर चोरी-चोरी लिखी गई महादेवी की कविताओं को उन्होंने पकड़ा था और फिर इस बात से उन्हें बल मिला था कि अब इस क्षेत्र में वे अकेली न होकर दो हैं। उस दौर में किसी लड़की का कविता लिखना सामाजिक दृष्टि से अपराध की कोटि में आने वाला शौक ही था।

सुभद्रा के इस अन्वेषण के बाद इस संख्या को तेजी से विकसित होता देखा जा सकता है। उसके बाद दो सखियों की यह मित्रता पारिवारिक बहनापे में बदल जाती है। बाद के वर्षों में कई बार दोनों ने एक ही मंच से कविताएँ पढ़ीं। सुभद्रा का विवाह छोटी उम्र में ही लक्ष्मण सिंह से हो गया था जो स्वतंत्रता सेनानी होने के नाते अधिकतर समय जेल में ही रहते थे। सुभद्रा भी पति की आदर्श संगिनी बनीं और जेल में भी उनके स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं आया। उनकी काव्य पंक्ति 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना..... उनके मन की बनावट का बहुत अच्छा परिचय है। संक्रामक हँसी और स्वभाव की दृढ़ता - उनकी मुख्य पहचान के रूप में रेखांकित की जा सकती है। वे कविताओं में ही नहीं, जीवन में भी विद्रोहिणी थीं। सारे सामाजिक विरोध के बीच उन्होंने अपनी बेटी सुधा का अंतर्जातीय विवाह प्रेमचंद के छोटे बेटे अमृतराय से किया था और हिंदू विवाह की अनिवार्य प्रथा का विरोध करके कन्यादान नहीं किया था - क्योंकि कन्या कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसे दान में दिया जा सके। आर्थिक अभावों के बीच, उत्साहपूर्वक उन्होंने अपनी गृहस्थी जमाई थी। लेकिन उनके आर्थिक अभावों ने उनमें किसी प्रकार की दीनता नहीं आने दी। अपने घर की धरती को उन्होंने संपूर्ण निष्ठा के साथ चाहा और प्यार किया। विश्वास, प्रेम और साहस के सहारे वे जीवन भर 'सुख भरे सुनहरे बादल' से घिरी रहीं। एक आदर्श पत्नी और महिमामयी माँ का उनमें अद्‌भुत संयोग था।

संबंधों की यही ऊष्मा उन्होंने दूसरों को भी दी। महादेवी ने अपने संस्मरण में स्पर्द्धा-भाव से दो छोरों से शुरू करके गोबर से आँगन लीपने के प्रसंग की चर्चा की है। जीवन की व्यस्तताओं में बाद में उन दोनों को वैसे अवसर सुलभ न होने पर भी किशोरावस्था का यह सखी-भाव हमेशा बना रहा। कभी इलाहाबाद की ओर से निकलते हुए यदि सुभद्रा वहाँ रुक पाने की स्थिति में नहीं होतीं तो सूचना मिलने पर महादेवी उनसे स्टेशन पर ही मिल लेती थीं। जब रुकने का अवसर और संयोग बनता था तो महादेवी के साथ रुककर अपनी अमृत-वर्षा से वे उन्हें नहलाती थीं। कालेज से लौटने पर महादेवी देखती थीं कि बंगले के बरामदे में सुभद्रा भानुमती का अपना पिटारा खोले बैठी हैं। छोटे-छोटे पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली-सुनहरी चूड़ियाँ ..... और भी न जाने क्या-क्या। यह सब छोटी बहिन महादेवी के लिए होता था। कभी कवि सम्मेलन में भेंट की अपेक्षा में वे उनके लिए थैले में खरीदी गई चूड़ियाँ डालकर चलती थीं। मिलने पर बहुत स्नेह से निकालकर उन्हें दिखा कर उनकी पसंद पूछती थीं और फिर उनका हाथ अपने हाथ लेकर स्वयं ही पहनाती थीं कि स्वयं से महादेवी इन्हें तोड़ डालेगी। चूड़ियाँ पहनाकर वे बच्चों की तरह प्रसन्न हो जाती थीं।

अपनी उल्लासपूर्ण प्रकृति के अनुरूप ही, एक दुर्घटना में हुई मृत्यु से, पुष्पाभरणा, आलोकवसना धरती की छवि आँखों में भरकर वसंत पंचमी के दिन सुभद्रा ने संसार से विदा ली। अपनी समाधि पर मेले की उनकी कल्पना शायद साकार हुई थी। त्रिवेणी के श्यामल-उज्ज्वल अंचल में उनके पार्थिव अवशेष को प्रवाहित देख महादेवी के स्मृति-पटल पर उनका वही चेहरा था जो वर्षों पहले बचपन में उन्होंने देखा था।

12.6 संस्मरण की अंतर्वस्तु

महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरणों का संकलन 'पथ के साथी' 1956 में प्रकाशित हुआ था। इस शीर्षक से ही इस संकलन की प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। इसमें उनके उन सहयोगियों और सहकर्मियों की चर्चा है जो उनकी रचना-यात्रा में उनके साथ-साथ चले। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, पंत, सुभद्राकुमारी चौहान, नरेन्द्र शर्मा आदि हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान के बारे में लिखा उनका संस्मरण इस इकाई में पाठ के रूप में सम्मिलित किया गया है। हिंदी समाज उनके नाम से भली भांति परिचित है। देश भक्ति से परिपूर्ण वीरता और ओज से भरे गीतों के लिए वह अत्यंत प्रसिद्ध रही हैं'। 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झांसी वाली रानी थी' आज भी लोगों में देश भक्ति का जोश भर देता है। इसी तरह 'वीरों का कैसा हो बसंत' गीत भी अत्यंत लोकप्रिय रहा है। इन्हीं सुभद्रा कुमारी चौहान पर महादेवी वर्मा ने यह संस्मरण लिखा है।

सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा दोनों एक ही विद्यालय में पढ़े थे। सुभद्राजी, महादेवी से बड़ी थीं और अपने छात्र जीवन से ही कविता लिखने का उन्हें भी शौक था। यही वजह थी कि लड़कियाँ या तो कविताएं लिखती ही नहीं थीं या लिखती भी तो छुप-छुपाकर। महादेवी जी भी कविताएं लिखती थीं, यह बात सुभद्रा जी को पता चली और फिर इन्हीं कविताओं ने दो कवयित्रियों को एक दूसरे के इतने करीब ला दिया।

सुभद्राजी का विवाह उसी समय हो गया था, जब वह कक्षा आठ में पढ़ रही थीं। लेकिन ऐसे व्यक्ति के साथ जो स्वतंत्रता सेनानी था और जिसे लगातार कारागर की सजा होती रहती थी। ऐसे व्यक्ति की पत्नी बनने का अर्थ था, जीवन के दाम्पत्य सुखों को तिलांजलि देना और दुखों की शय्या पर ही जीवन काट देना। लेकिन सुभद्राजी ने ऐसा कुछ नहीं किया। अपने पति के साथ वह भी आजादी की लड़ाई में शामिल हो गईं और कारागर की यात्रा उनके जीवन की यात्रा भी बन गई। घर-गृहस्थी और बच्चों के लालन-पालन के साथ-साथ देश की आजादी को भी जीवन का हिस्सा बना लेना सरल काम नहीं था। यह किसी पुरुष के बस की बात नहीं हो सकती थी। महादेवी ने उनके जीवन के इस पक्ष को अत्यंत मार्मिक ढंग से उजागर किया है।

'घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरंभ हुआ था वह अंत तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थी यह सोचकर विस्मय होता है।'

सुभद्राजी के व्यक्तित्व पर रोशनी डालते हुए महादेवी जी लिखती हैं कि 'अपने निश्चित लक्ष्य पथ पर अडिग रहना और सब कुछ हँसते-हँसते सहना उनका स्वभावजात गुण था।' आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद उनके चरित्र का यह पक्ष उन्हें और महान बना देता है। लेकिन राजनीतिक जागरुकता ही उनके व्यक्तित्व में नहीं थी, सामाजिक जागरुकता भी उतनी ही अधिक थी। कविता लिखकर जिस विद्रोही स्वभाव का परिचय उन्होंने बचपन में दिया था, वह जीवन पर्यंत रहा। अपने बच्चों पर किसी तरह का अंकुश लगाने की बजाए उन्होंने उन्हें स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ने का अवसर दिया। इसी तरह अपनी बेटी का अंतर्जातीय विवाह कर उन्होंने सामाजिक रूढियों को तोड़ने में जो साहस का परिचय दिया

वह इस बात से और भी मुखर रूप में सामने आता है कि उन्होंने यह कहते हुए कन्यादान की प्रथा का विरोध किया कि स्त्री कोई निर्जीव वस्तु नहीं है जिसका कि दान किया जा सके।

अपने पारिवारिक जीवन में ही नहीं सामाजिक-राजनीतिक जीवन में भी उन्होंने अपने प्रगतिशील साहसपूर्ण व्यक्तित्व का परिचय बराबर दिया। महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद इलाहाबाद में अस्थिविसर्जन के अवसर पर हरिजन महिलाओं के अधिकारों के लिए उन्होंने जो संघर्ष किया वह इसी बात का प्रमाण है।

अपने जीवन में सुभद्राजी ने जो कुछ भी किया, महादेवी वर्मा ने अपने इस संस्मरण में उसके पीछे उनकी सुविचारित दृष्टि बताई है। सुभद्राजी का यह कथन इस बात का द्योतक है:

''समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बांधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिए वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। बंधन कितने ही अच्छे उद्देश्य से क्यों न नियत किये गये हों, हैं बंधन ही, और जहाँ बंधन है वहाँ असंतोष तथा क्रांति है।''

सुभद्राजी का उपर्युक्त कथन इस बात का प्रमाण है कि अपने समय और समाज के प्रति उनमें कितनी जागरूकता थी और सुविचारित दृष्टि के साथ सारी बातों को समझने की वे क्षमता रखती थीं। सुभद्राजी के व्यक्तित्व के इन पहलुओं को संस्मरण के माध्यम से महादेवी वर्मा ने जिस तरह से उजागर किया है, वह उनकी लेखकीय क्षमता का श्रेष्ठ प्रमाण है।

सुभद्रा कुमारी चौहान के असामयिक निधन के बाद सन् 1949 में जबलपुर में उनकी मूर्ति का अनावरण करते हुए महादेवी वर्मा ने कहा था, 'नदियों के जय-स्तम्भ नहीं बनाये जाते और दीपक की लौ को सोने से नहीं मढ़ा जाता ..... महादेवी की इस उक्ति में उनके संस्मरण का प्रतिपाद्य भी ढूंढा जा सकता है। नदी और दीपक की लौ से सुभद्रा के व्यक्तित्व की तुलना करके वे जैसे उनकी गतिशीलता और तेजस्विता को ही श्रद्धांजलि दे रही थीं। लेकिन उनके व्यक्तित्व के प्राकृतिक गुणों के संपूर्ण स्वीकार के बावजूद इसमें किसी प्रकार की अतिरंजना का निषेध भी शामिल हैं। 'पथ के साथी' के अन्य संस्मरणों की तरह सुभद्रा के व्यक्तित्व के भी वे आधारभूत मानवीय पक्षों पर अपने को केंद्रित करके चलती हैं। ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो महादेवी के काव्य की अपेक्षा उनके गद्य को अधिक जीवंत और यथार्थवादी मानते हैं। उनके गद्य की इस जीवंतता का कारण उनका यही यथार्थ और वास्तव के प्रति उनका लगाव है। संस्मरण के केंद्र में रखे गए व्यक्ति को वे भरपूर आदर देती हैं। आत्मीयता और अंतरंगता की झिलमिल ज्योति उस व्यक्तित्व के चारों ओर झिलमिलाती है लेकिन वास्तविकता की जमीन पर खड़ी होकर ही वे उसके गुणों का बखान करती हैं। सुभद्रा के संस्मरण में भी सुभद्रा के जीवन का यथार्थ, आर्थिक अभाव और अपनी गृहस्थी के साम्राज्य के प्रति उनकी छोटी-छोटी आकांक्षाएँ इस संस्मरण को गहरी विश्वसनीयता देता है। उनका सारा ध्यान व्यक्ति की विशिष्टताओं को पकड़ने पर केंद्रित रहता है। इस प्रक्रिया में उस केंद्रीय व्यक्तित्व की चिंता ही उनकी मुख्य रचनात्मक चिंता होती है। वे उसी का संस्मरण लिखती हैं, उसके बहाने अपना नहीं। युगीन परिवेश के विस्तार में जाकर वे केंद्रीय व्यक्तित्व की चारित्रिक रेखाओं को धूमिल नहीं करतीं। क्षुद्रताओं की अपेक्षा वे व्यक्तित्व की विराटता से साक्षात्कार को ही अपने संस्मरण का प्रस्थान बिंदु मानकर अपनी रचना-यात्रा शुरू करती हैं। संस्कृत साहित्य, भारतीय संस्कृति और दार्शनिक परंपराओं का विशाल भंडार उनके सामने होने से वे उस व्यक्तित्व का आकलन इसी सुविस्तृत फलक पर करती हैं। उनकी रचना की प्रामाणिकता का मूल स्रोत भी वस्तुतः यही है। इन सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति अपने गहरे लगाव के कारण ही वे शायद मानती हैं कि मृतात्माओं के

उज्ज्वल पक्ष का ही स्मरण किया जाना चाहिए। उन्हें स्मृति में धारण करके ही उन्हें मरण और विस्मरण से बचाया जा सकता है।

12.7 संस्मरण की भाषा-शैली

भाषा

किसी भी रचना में भाषा अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम है। रचना में भाषा की वही भूमिका होती है जो मनुष्य के शरीर में प्रवाहित रक्त की होती है। भाषा के द्वारा ही लेखक अपनी अभिव्यक्ति को सटीक और प्रभावशाली बनाता है। महादेवी वर्मा के संदर्भ में यह उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि वे मूलतः कवयित्री हैं, लेकिन विभिन्न प्रकार का गद्य भी उन्होंने लिखा है। महादेवी के विवेचनात्मक गद्य का एक प्रतिनिधि संकलन वर्षों पहले गंगा प्रसाद पाण्डेय के संपादन में प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार उन्होंने रेखाचित्रों और संस्मरणों में भी गद्य के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया है। उनके गद्य की भाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों से भरपूर होने पर भी क्लिष्ट और दुर्बोध भाषा नहीं है। उपमाओं और रूपकों के प्रयोग से बनी यह भाषा उनके मन्तव्य को संप्रेषित करने में सहायक होती है। उनकी गद्य भाषा का एक प्रतिनिधि उदाहरण प्रस्तुत है : 'शैशव की चित्रशाला के जिन चित्रों से हमारा रागात्मक संबंध गहरा होता है, उनकी रेखाएँ और रंग इतने स्पष्ट और चटकीले होते चलते हैं कि हम वार्धक्य की धुंधली आँखों से भी उन्हें प्रत्यक्ष देखते रह सकते हैं ..... बोलचाल के सामान्य शब्दों के बजाय संस्कृत मूल के तत्सम शब्दों के प्रयोग के प्रति उनकी विशेष रुचि है। चित्रकार होने के कारण उनकी भाषा में चित्र कर्म के उपकरणों का उपयोग बहुत हुआ है, उनके गद्य में एक प्रीतिकर चित्रमयता के दर्शन भी होते हैं, जिसे छायावादी काव्य के एक आधारभूत वैशिष्ट्य के रूप में रेखांकित किया गया है। महादेवी वर्मा सुभद्रा के व्यक्तित्व का रेखांकन अपनी इस प्रिय चित्र पद्धति से करती हैं '.....मझोले कद तथा उस समय की कृश देहयष्टि में ऐसा कुछ उग्र या रौद्र नहीं था जिसकी हम वीरगीतों की कवयित्री में कल्पना करते हैं। कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भृकुटियाँ, बड़ी और भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमाकर गढ़े हुए से ओठ और दृढ़तासूचक ठुड्डी .....सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का ही पता देते थे.....' संप्रेषण के लिए वे निःसंकोच संस्कृत मूल और पृष्ठभूमि वाले शब्दों का चयन तो बहुत सहज रूप में करती ही हैं -- भावस्नात, अन्वेषिका वक्र कुंचित आदि -- उपमाओं में वे संस्कृत पदावली का उपयोग भी करती हैं। सुभद्रा के व्यक्तित्व के संदर्भ में 'संचारिणी दीपशिखेव' लिखकर वे उस व्यक्तित्व की असाधारणता का संकेत देती हैं।

महादेवी की भाषा संस्कृत और मध्यकालीन हिंदी काव्य की अंतर्प्रवृत्ति की गूँज वाली भाषा है। सूर की गोचारण संस्कृत की सघन और अर्थपूर्ण पदावली का उपयोग वे सुभद्रा के बचपन की कुछ घटनाओं के प्रसंग में बेहद साभिप्राय रूप में करती हैं। कीकर और बबूल के जंगल में गायों और ग्वालों के झुंड के बीच, गोधूली बेला में गोपी बनने की साध में भटकती बच्ची के रूप में सुभद्रा की आकांक्षाओं का कुछ ऐसा ही चित्र लेखिका ने प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अपनी गृहस्थी में कभी सुभद्रा के आर्थिक अभावों के प्रसंग में वे द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा के प्रसंग को याद करती हैं - जिसमें चावल के घोल का सफेद पानी देकर दूध के नाम पर, बहलाने की किंवदंती प्रचलित है। महादेवी की गद्यभाषा संस्कृतनिष्ठ तत्सम पदावली के व्यापक उपयोग के बावजूद किसी भी स्तर पर बोझिल, भ्रमसाध्य और दुर्बोध होने का बोध नहीं जगाती है। पुष्पाभरणा, आलोकवसना, पार्थिव अवशेष, श्यामल-उज्ज्वल, नीलम फलक जैसे प्रयोग इस भाषा के सहज प्रवाह को बाधित

नहीं करते हैं। इसका एक मात्र कारण यह है कि इन शब्दों को परिश्रम-पूर्वक ढूँढकर वे भाषा में नहीं लाती हैं। यह उनकी गद्य-भाषा की सहज प्रकृति है। उसकी यह सहजता ही उसे किसी भी स्तर पर दुर्बोध होने से बचाती है।

शैली

किसी भी संस्मरण की श्रेष्ठता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें संबद्ध व्यक्ति को कितनी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया जा सका है। संस्मरण उस व्यक्ति के जीवन के ही कुछ विशिष्ट क्षणों और प्रसंगों को प्रस्तुत करता है। संस्मरण में जीवनी की तरह विस्तार और फैलाव की गुंजाइश नहीं होती। न ही वह साक्षात्कार की तरह एक के बाद एक प्रश्न प्रस्तुत करके समाप्त हो जाता है। संक्षिप्ति और सघनता संस्मरण को प्रभावी बनाते हैं। इस अर्थ में संस्मरण की तुलना प्रगीत और कहानी जैसी छोटे आकार वाली विधाओं से की जा सकती है जिनमें प्रभाव सघनता ही उनकी सफलता का सबसे बड़ा निकष होता है। संस्मरण-लेखक संबद्ध व्यक्ति के अपने परिचय से शुरू करके उसके व्यक्तित्व के आधारभूत वैशिष्ट्य का आकलन भी प्रस्तुत करता है। 'पथ के साथी' में सुभद्रा कुमारी चौहान से संबद्ध महादेवी का संस्मरण स्कूली दिनों में दोनों सखियों की निकटता से शुरू होता है। कविता के प्रति समान रुचि के आधार पर इस मैत्री को विकास का अवसर मिलता है। इस संक्षिप्त संस्मरण में महादेवी सुभद्रा को उनके संपूर्ण जीवन-फलक पर फैलाकर देखती हैं और उनके विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करती चलती हैं। दूसरी रचनाओं की तरह संस्मरण में भी संबद्ध व्यक्ति के चारित्रिक वैशिष्ट्य को उभारना लेखक का मुख्य अभिप्रेत होता है। महादेवी ने सुभद्रा का गृहिणी रूप, महिमामयी माँ, आदर्श पत्नी के साथ आर्थिक अभावों के बीच भी उनके मस्त और आनंदी स्वभाव के स्रोतों का उद्घाटन बड़े कलात्मक रूप में किया है। इसी तरह वे उनके चरित्र के विद्रोही और प्रगतिशील पक्ष पर भी सटीक टिप्पणी करती हैं - पुत्री सुधा के अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति देने के साथ ही विवाह में कन्यादान की रूढ़ि का विरोध करके। संपूर्ण जीवन में से कुछ पक्षों और प्रसंगों का यह चयन ही संस्मरण के प्रभाव का आधारभूत घटक होता है। अपने निजी प्रसंगों में भी वे सुभद्रा की ममता और अन्तरंगता के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनके द्वारा लाई ढेरों सौगातें और छोटी बहिन जैसा प्यार महादेवी गहरी कृतज्ञता के साथ याद करती हैं। कवि सम्मेलन में हुई भेंट के अवसर पर थैले में से निकाल अपने हाथ से उनका महादेवी को चूड़ी पहनाना और इस बात की चिंता कि स्वयं पहनने से महादेवी से वे टूट सकती हैं, उनकी इस गहरी आत्मीयता को ही छूना और पकड़ना है। छोटे मालूम होने वाले प्रसंगों के पीछे छिपी आत्मीयता को इस रूप में पकड़ना ही संस्मरण के प्रभाव को बढ़ाता है। अपने इस संक्षिप्त संस्मरण में महादेवी ने सुभद्रा के अहेतुक स्नेह को गहरी आत्मीयता के साथ याद किया है। आज जब उपभोक्ता संस्कृति की आँधी में जीवन का अर्थ ही बहुत कुछ बदल गया है, ऐसा अहेतुक स्नेह कृतज्ञता के साथ एक अवसाद का बोध भी जगाता है। संस्मरण में स्मृति की विशिष्ट भूमिका होती है। इन स्मृति-खंडों को सजीव और विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करने वाली भाषा महादेवी के पास है। जीवनी की तरह संस्मरण में अपने चरितनायक पर पड़ने वाले युगीन प्रभावों और परिवेश के बीच उसके विकास को अंकित करने की सुविधा नहीं होती। यहाँ छोटे-छोटे प्रसंगों के बीच ही उसके चरित्र की रेखाओं को उकेरा जाता है। इस प्रक्रिया में अंतरंगता का चमत्कारी प्रभाव होता है। इस अंतरंगता के अभाव में किसी अच्छी संस्मरण की कल्पना भी कठिन है। 'पथ के साथी' में संकलित अन्य संस्मरण की तरह सुभद्रा कुमारी चौहान संबंधी अपने संस्मरण में भी महादेवी संक्षिप्त और सघनता के संतुलन को साध पाने में सफल रही हैं।

बोध प्रश्न 3

1) सुभद्रा कुमारी चौहान के चरित्र में निम्नलिखित में से कौन सा गुण था?

   क) दृढ़ता

   ख) विद्रोही

   ग) देशभक्ति

   घ) उपर्युक्त तीनों ( )

2) संस्मरण की भाषा की कोई तीन विशेषताओं का नामोल्लेख कीजिए

.....

.....

.....

3. 'संस्मरण' की शैलीगत दो विशेषताओं का नामोल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

4. संस्मरण के आधार पर सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रमुख चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5. परिवार के संदर्भ में सुभद्राजी के विद्रोहिणी रूप के दो उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

6. संस्मरण की भाषा-शैली की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

12.8 सारांश

- इस अंतिम इकाई में आपने संस्मरण के बारे में अध्ययन किया है। संस्मरण के अध्ययन के लिए इस पाठ में आपने महादेवी वर्मा द्वारा सुभद्रा कुमारी चौहान के बारे में लिखे संस्मरण को पढ़ा। सुभद्राजी महादेवी की ही समकालीन कवयित्री थीं और अपनी वीरतापूर्ण कविताओं के लिए अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी की गहरी मित्र भी थीं। उनके बारे में इस संस्मरण के माध्यम से हमें सुभद्राजी के व्यक्तित्व की कई विशेषताओं का परिचय मिलता है। देशभक्त नारी, ममतामयी माँ, पति की मित्र और सहचर, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोही और स्नेहिल सखी का रूप हमारे सामने उजागर होता है।

- संस्मरण गद्य साहित्य की विशिष्ट विधा है। लेखक जिसके बारे में संस्मरण लिखता है उसके व्यक्तित्व का संपूर्ण चित्र वह हमारे सामने उपस्थित कर देता है, इस दृष्टि से यह संस्मरण अत्यंत प्रभावशाली है।

- महादेवी का गद्य अत्यंत भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी होता है। संक्षेप में अपनी बात पूरी गंभीरता और सघनता के साथ कहने की उनमें अद्‌भुत क्षमता है, इस दृष्टि से यह संस्मरण भी उल्लेखनीय है। संस्मरण की शैलीगत सभी विशेषताएं हमारे सामने उभरकर आती हैं।

- सुभद्रा कुमारी चौहान पर लिखे इस संस्मरण की भाषा महादेवी वर्मा के गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। उनका झुकाव संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली की ओर है। लेकिन उनकी भाषा क्लिष्ट और दुर्बोधगम्य नहीं है। अपनी बात को सहज और प्रवाहमय ढंग से कह सकने के कारण उनकी भाषा कहीं भी बाधक बनकर उपस्थित नहीं होती। शब्दों से व्यक्ति का सजीव चित्र उतार लेना उनकी इसी भाषा का कमाल है।

- इकाई के आरंभ में संस्मरण पर साहित्यिक विधा के रूप में भी विचार किया गया है और इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि वह अन्य गद्य विधाओं विशेष रूप में जीवनी, पत्र, साक्षात्कार और रेखाचित्र की विशेषताओं को अपने में किस रूप में समाहित करता है।

इस इकाई के अध्ययन से आपको संस्मरण विधा को समझने में सहायता मिली होगी।

12.9 शब्दावली

वार्धक्य	:	बुढ़ापा
सख्य	:	मित्रता
अन्वेषिका	:	खोज करने वाली
वक्रकुंचित	:	टेढ़ी-मेढ़ी
कटु-तिक्त	:	कड़वा और तीखा
गोंठिल	:	भोथरा
कृश	:	कमज़ोर
सहास	:	हँसी के साथ

संचारिणी दीपशिखेव	:	निरंतर जलने वाली दिये की लौ
देहयष्टि	:	शरीर
भावस्नात	:	भाव से सराबोर
नासिका	:	नाक
संक्रामक	:	एक से दूसरे में फैलने वाला
लकुटी	:	लाठी
कीकर	:	बबूल का पेड़
गोधूलि वेला	:	शाम का वक्त
करील-वन	:	कँटीले और बिना पत्ते वाले पेड़ों का जंगल
अनाहूत	:	बिना-बुलाया
उत्स	:	स्रोत
मधुमक्षिका	:	मधुमक्खी
रसाल	:	आम, मीठा
सम्प्रदान	:	देना
परिपाक	:	पूर्ण विकास, निपुण
महीयसी	:	महान्
ब्रह्मसूत्र	:	बादरायण कृत संस्कृत ग्रंथ जिसमें ब्रह्म संबंधी विचार दिए गए हैं।
पुष्पाभरणा	:	फूलों के आभूषण
आलोकवसना	:	प्रकाश के वस्त्र पहने हुए

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) ख

2) रेखाचित्र व्यक्ति के बाहरी रूप का चित्र होता है जिसके द्वारा उसके व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है।

3) जीवनी में व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का आकलन किया जाता है और संस्मरण में व्यक्ति के उस जीवन का ही वर्णन होता है जिससे संस्मरणकार का संबंध होता है।

बोध प्रश्न 2

1) यह प्रश्न सुभद्रा कुमारी चौहान ने महादेवी वर्मा से विद्यार्थी जीवन में किया था।

2) इस गीत की रचना सुभद्रा कुमारी चौहान ने की थी।

3) सुभद्रा कुमारी चौहान ने आजादी के आंदोलन में भाग लिया था और उसी वजह से अंग्रेज सरकार उन्हें बार-बार गिरफ्तार कर लेती थी।

बोध प्रश्न 3

1) घ)

2) क) संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली

   ख) सरल और बोधगम्य

   ग) सहज प्रवाहमयी

3) क) संक्षिप्तता

   ख) सघनता

4) सुभद्राजी की चारित्रिक विशेषताएं

   क) राष्ट्रभक्ति

   ख) आदर्श गृहिणी

   ग) ममतामयी माँ

   घ) पति की मित्र और सहचर

   ड.) रूढ़ियों के प्रति विद्रोह

शेष प्रश्नों के उत्तर इकाई पढ़कर स्वयं लिखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY